Impact Factor-8.632 (SJIF) ISSN-2278-9308

B.Aadhar

Single Blind Peer-Reviewed & Refereed Indexed

Multidisciplinary International Research Journal

December - 2023

(CDXLVI) 451

आजादी के ७५ वर्ष : हिंदी भाषा, साहित्य, एवं पत्रकारिता चिंतन और चुनौतियाँ

Chief Editor
Prof. Virag S. Gawande
Director
A. S.R. & D.T. I.
Amravati

Executive Editor
Dr. Pradeep Patil
I/C Principal

Editor
Dr. Bhagwan kadam
Dept. of Hindi,

Co-Editor
Dr. Jafar Choudhari
Hod dept.of Hindi,

Master Deenanath Mangeshkar College Aurad Shahajani
Tq.Nilanga Dist Latur,

This Journal is indexed in :
- Scientific Journal Impact Factor (SJIF)
- Cosmos Impact Factor (CIF)
- International Impact Factor Services (IIFS)

For Details Visit To : www.aadharsocial.com

Aadhar Publications

Impact Factor – (SJIF) –8.632 **ISSN – 2278-9308**

B.Aadhar

Single Blind Peer-Reviewed & Refereed Indexed

Multidisciplinary International Research Journal

December-2023

(CDXLVI) 451-B

आजादी के ७५ वर्ष : हिंदी भाषा, साहित्य, एवं पत्रकारिता चिंतन और चुनौतियाँ

Prof. Virag.S.Gawande
Chief Editor
Director
Aadhar Social Research &, Development Training Institute, Amravati.

Dr. Pradeep Patil
Executive Editor

Dr. Bhagwan Kadam
Editor

Dr. JAFAR CHOUDHARI
Co- EDITOR

Master Deenanath Mangeshkar College Aurad Shahjani Tq. Nilanga Dist Latur,

Aadhar International Publication
For Details Visit To : **www.aadharsocial.com**
© **All rights reserved with the authors & publisher**

यशवंतराव चव्हाण महाराष्ट्र मुक्त विद्यापीठ
(महाराष्ट्र शासनाने वर्ष १९८९ मध्ये स्थापिलेले)
ज्ञानगंगोत्री, गंगापूर धरणाजवळ, गोवर्धन, नाशिक- ४२२२२२
दूरध्वनी : कार्यालय (०२५३) २२३१७१४/१५, २२३०२२७, २२३०४५९, २२३००२४/२५/२७/२८

जा.क्र.पी.व्ही.सी./2023
दिनांक : १८.१२.२०२३

शुभकामनाएँ !

मास्टर दीनानाथ मंगेशकर महाविद्यालय महाराष्ट्र की सीमा पर स्थित महाविद्यालय है। महाराष्ट्र, कर्नाटक के छात्रों में शिक्षा के संस्कार तथा मूल्य स्थापित करने का कार्य महाविद्यालयद्वार किया जा रहा है। प्रस्तुत महाविद्यालयमें. ३० दिसंबर २०२३ को **"आजादी के ७५ वर्ष : हिंदी भाषा, साहित्य एवं पत्रकारिता चिंतन और चुनौतियाँ"** विषयपर राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया है। संगोष्ठी के लिए मैं बहुत-बहुत शुभकामनाएँ देता हूँ।

किसीभी राष्ट्रको मुफ्त में आजादी नहीं मिलती, अपने सामर्थ्य के बलपर प्राप्त करनी होती है। साहित्य जनमानसके मनमें चेतना प्रज्वलित करता है। स्वाधीनता आंदोलन के समय साहित्यकारों ने जनमानस के मन में चेतना प्रज्वलित की। आजादी का अमृत महोत्सव संपन्न हुआ इस अवसर पर आयोजित यह संगोष्ठी सार्थक सिध्द होगी। प्रस्तुत संगोष्ठी में संसाधन महानुभाव तथा आलेख वाचकोंद्वारा दिए गए सुझाव समाज तथा राष्ट्र के लिए लाभदायक सिध्द होंगे यह विश्वास है।

मैं पुनश्च संस्था की प्रबंधन समिति, प्रधानाचार्य, संयोजक तथा हिंदी विभाग को हृदय से साधुवाद देता हूँ।

भवतु सब्ब मंगलम्।

(डॉ. जोगेंद्रसिंह बिसेन)
प्र- कुलगुरू

शुभेच्छा संदेश

मुझे यह जानकर अति प्रसन्नता हुई है कि मास्टर दीनानाथ मंगेशकर महाविद्यालय, औराद (शाहजनी) जिला लातूर , महाराष्ट्र के हिंदी विभाग और भारतीय सामाजिक शास्त्र अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान में "आजादी के 75 वर्ष : हिंदी भाषा, साहित्य एवं पत्रकारिता चिंतन और चुनौतियाँ" इस विषय पर एक दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा हैं। मुझे यह जान कर और भी हर्ष हो रहा है कि इस अवसर पर संगोष्ठी में प्राप्त शोध आलेखों का प्रकाशन स्मरणिका के रूप में आयोजकों द्वारा किया जा रहा हैं। इस स्मरणिका में संकलित सभी लेख विद्यार्थियों, शोधार्थियों तथा प्राध्यापकों के लिए उपयोगी होंगे, समय की चुनौतियों पर तो खरे उतरेंगे ही, शोधार्थियों के मार्गदर्शन के लिए भी मील का पत्थर साबित होंगे। इसके लिए मैं अपनी शुभकामनाएं प्रेषित करता हूं। महाविद्यालय के सभी प्राध्यापक गण का भी आभार व्यक्त करता हूं कि जिन्होंने मुझे इस यादगार संगोष्ठी में बीज वक्ता के रूप में आमंत्रित किया।

सादर

रत्नकुमार साभारया
C-137, महेश नगर
जयपुर, राजस्थान
संपर्क: 9636053497

शुभेच्छा संदेश...

हमारे मास्टर दीनानाथ मंगेशकर महाविद्यालय के हिंदी विभाग और भारतीय समाजशास्त्र अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान में होने जा रही "आजादी के 75 वर्ष : हिंदी भाषा, साहित्य एवं पत्रकारिता चिंतन और चुनौतियां " इस राष्ट्रीय संगोष्ठी को मैं हार्दिक बधाई देता हूं। प्रस्तुत संगोष्ठी एक महत्वपूर्ण शैक्षिक उपक्रम है। इस संगोष्ठी में अनेक राज्य के विभिन्न विश्वविद्यालय से आने वाले शिक्षाविद, साहित्यकार,प्राध्यापक और शोधार्थी हिंदी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता पर अपना मौलिक चिंतन शोध पत्र के रूप में प्रस्तुत करेंगे।

इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में विविध विषयों पर गहन तथा सार्थक चर्चा होगी ।जो हिंदी भाषा और साहित्य की श्री वृद्धि के लिए भी लाभदायक सिद्ध होगी ऐसा मुझे विश्वास है। इस अवसर पर प्राप्त शोधालेखों का का प्रकाशन करने की जो योजना बनाई है। वह अत्यंत प्रशंसनीय है। अतः संगोष्ठी के आयोजक, प्राचार्य और हिंदी विभाग के सभी प्राध्यापक गण और संपादक मंडल का मैं अभिनंदन करता हूं। और इस एकदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के आयोजन में जुड़े सभी को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं देते हुए, संगोष्ठी की सफलता के लिए शुभकामनाएं देता हूं।

मा.श्री बस्वराज विश्वनाथराव वलांडे
अध्यक्ष,
शारदोपासक शिक्षण संस्था,
औराद, शहाजनी ता निलंगा, जिल्हा लातूर, महाराष्ट्र

शुभेच्छा संदेश ...

हमारे महाविद्यालय के हिंदी विभाग और भारतीय समाजशास्त्र अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के द्वारा तिथि 30 दिसंबर 2023 को आयोजित एकदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी से संबंधित हमारे महाविद्यालय के प्रभारी प्राचार्य ,हिंदी विभाग के प्राध्यापक तथा महाविद्यालय के सभी कर्मचारियों को मैं हार्दिक बधाई देता हूं।

इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में हिंदी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता पर अपने विचार व्यक्त करने वाले, देश के अलग-अलग शहरों से पधारे साहित्यकार, शिक्षाविद, प्राध्यापक और शोधार्थियों का मैं हार्दिक स्वागत करता हूं। शारदोपासक शिक्षण संस्था की ओर से मै इस राष्ट्रीय संगोष्ठी के सफल आयोजन और ग्रंथ प्रकाशन के लिए अपनी ओर से अग्रिम शुभेच्छा देता हूं।

मा. श्री रमेश बगदुरे
सचिव
शारदोपासक शिक्षण संस्था, औराद शहाजनी

प्राचार्य जी का संदेश

'तमसो मा ज्योतिर्गमय' यह ब्रीद लेकर श्रद्धेय स्व. मुकुंददास जी बियाणी, स्व. विश्वनाथराव वलांडे गुरूजी, स्व.बसवणप्पाजी आग्रे, स्व.दौलतगीर महाराज, और किशनलाल शर्मा आदि महानुभावों ने इ.स.1956 में शारदोपासक शिक्षण संस्था की स्थापना कर महाराष्ट्र और कर्नाटक की सीमा पर स्थित देहाती छात्रों को शिक्षा के प्रवाह में लाने के लिए के.जी. से लेकर पी.जी. तक के शिक्षा की व्यवस्था औराद शहाजानी इस सीमांतक गांव में कियी। इस क्षेत्र के ग्रामीण गरीब और होनहार छात्र उच्च शिक्षा से दूर ना रहे इसीलिए संस्थान 1970 में महान कलाकार 'मास्टर दीनानाथ मंगेशकर' 'जी के नाम से मास्टर दीनानाथ मंगेशकर महाविद्यालय का प्रारंभ किया। शरदोपासक शिक्षण संस्था के अंतर्गत हमारे महाविद्यालय के साथ ही एक प्राथमिक, एक माध्यमिक और एक तंत्रज्ञान महाविद्यालय इस ग्रामीण इलाके में ज्ञान दान का कार्य लगन और मेहनत से कर रहे हैं।

हमारा महाविद्यालय स्वामी रामानंद तीर्थ मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, नांदेड़ से संलग्न है। जो ग्रामीण क्षेत्र में कार्यरत एक नामांकित महाविद्यालय के रूप में अपनी पहचान विश्वविद्यालय स्तर पर बन चुका है। नॅक समिति बेंगलुरु द्वारा महाविद्यालय का अब तक मूल्यांकन तथा पुनर्मूल्यांकन हो चुका है। दूसरे पुनर्मूल्यांकन में महाविद्यालय को बी+ (सी.जी.पी.ए.2.74) श्रेणी प्राप्त हुई है। शैक्षिक वर्ष 2016-17 में हमारे महाविद्यालय को ग्रामीण क्षेत्र का 'उत्कृष्ट महाविद्यालय' यह पुरस्कार देकर स्वामी रामानंद तीर्थ मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, नांदेड़ द्वारा पुरस्कृत किया गया है। सन 2022-23 इस शैक्षिक वर्ष में महाविद्यालय की दो छात्राओं ने विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में सर्वोच्च अंक हासिल कर महाविद्यालय की परंपरा को बरकार रखा है। महाविद्यालय में बी.ए., बी.कॉम., बी.सी.ए. इन स्नातक स्तरीय शिक्षा के साथ-साथ एम.ए., एम.कॉम, और एम.एस.सी.एस.ई. तक की स्नातकोत्तर शिक्षा की भी व्यवस्था उपलब्ध है। महाविद्यालय हर साल राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय संगोष्टियां,कार्यशालाएं और व्याख्यान मालाओं का सफलतापूर्वक आयोजन करता आया है।

महाविद्यालय के हिंदी विभाग द्वारा आयोजित इस एकदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में " आजादी के 75 वर्ष : हिंदी भाषा, साहित्य एवं पत्रकारिता चिंतन और चुनौतियां" इस महत्वपूर्ण विषय पर गहन चर्चा तथा विचार विमर्श हो इस उद्देश्य को लेकर संगोष्ठी का आयोजन किया गया है। इस संगोष्ठी में देश के अलग-अलग हिस्से से आमंत्रित शोध आलेखों का प्रकाशन नामांकित पत्रिका में होने जा रहा हैं। जिसकी सराहना करते हुए मैं संगोष्ठी के सहसंयोजक और संयोजन को संगोष्ठी की सफलता और पत्रिका के प्रकाशन के लिए अपनी ओर से हार्दिक शुभकामनाएं देता हूं।

डॉ. प्रदीप पाटील
प्रभारी प्राचार्य
मास्टर दीनानाथ मंगेशकर महाविद्यालय, औराद शहाजानी

संपादकीय भूमिका

"आजादी के 75 वर्ष : हिंदी भाषा, साहित्य एवं पत्रकारिता चिंतन और चुनौतियां" इस विषय पर 30 दिसंबर 2023 को आयोजित एकदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी संयोजक के नाते संगोष्ठी में प्राप्त शोध पत्रों के प्रकाशन की भूमिका लिखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ, यह मेरे लिए अत्यंत हर्ष की बात हैं। प्रस्तुत संगोष्ठी हमारे मास्टर दीनानाथ मंगेशकर महाविद्यालय के हिंदी विभाग और भारतीय समाजिक शास्त्र अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित की गयी हैं।

देश को आजाद होकर 75 वर्ष पुरे होने के उपलक्ष्य में संपूर्ण देश में आजादी का अमृत महोत्सव बड़े ही हर्ष उल्लास के साथ मनाया जा रहा है। आजादी के इन 75 वर्ष के आईने में जब हम हिंदी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता पर नजर डालते हैं तो, हमें दिखता है कि, दिल्ली और मेरठ के बीच जन सामान्य द्वारा बोली जाने वाली खड़ी बोली हिंदी आज देश की राजभाषा, राष्ट्रभाषा और प्रमुख संपर्क भाषा का दायित्व सफलतापूर्वक निभाकर विश्व भाषा बन गई है। जो वर्तमान समय में सूरीनाम, मॉरीशस, इंग्लैंड और अमेरिका आदि कई राष्ट्रों में हिंदी भाषा में केवल अध्ययन-अध्यापन ही नहीं हो रहा है, तो उच्च कोटि का साहित्य निर्माण भी हो रहा हैं। तो दूसरी ओर हिंदी साहित्य हजारों सालों से वंचित, अपेक्षित,बेजुबान,दलित, स्त्री, आदिवासी, किन्नर, अल्पसंख्यक, विकलांग, किसान, वृद्ध, और बालक समाज को वाणी देकर उनके प्रश्न ,समस्या और शोषण को व्यक्त कर , उन्हें समाज के मुख्य धारा में लाने का कार्य पूरी शिद्दत के साथ कर रहा है। तीसरी ओर हिंदी पत्रकारिता ने भी अपना आरंभिक स्वरूप छोड़कर आज वैश्विक स्वरूप धारण किया है। हिंदी पत्रकारिता आज प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और सोशल मीडिया इन तीन रूपों में संपूर्ण विश्व में पहुंच गया हैं। इन 75 सालों में हिंदी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता का सफर कैसे रहा ? ,वर्तमान में इसकी अवस्था क्या है ?और भविष्य में हिंदी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता के सामने कौन-कौन सी चुनौतियां खड़ी हैं ? और उसका समाधान कैसे संभव होगा ?। इस पर एक सार्थक बहस हो, इस महत्वपूर्ण उद्देश्य को लेकर इस एकदिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया हैं।

आजादी के इन 75 सालों में हमारे देश ने अनेक चुनौतियों का सामना कर अपने सशक्तता और सामर्थ्य का परिचय पूरी दुनिया को दिया है। यहां के महान साहित्यकारों ने यहां की भाषा, समाज, धर्म, परंपरा, संस्कृति और प्राकृतिक विविधता में भी सबल एकता का चिंतन प्रस्तुत किया है। समग्र भारत को एकता और अखंडता के सूत्र में समां रखा हैं। तो दूसरी ओर विश्व बंधुता और विश्व मानवता का चिंतन भी विश्व को देकर संपूर्ण विश्व में शांति और अहिंसा बनी रहे इसलिए निरंतर प्रयास भी किया हैं। इस कार्य में देश की आजादी से लेकर वर्तमान अमृत महोत्सवीं वर्ष तक हिंदी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता ने भी अपनी एक ठोस भूमिका निभाई हैं। इन 75 वर्षों में भारत और भारतीय समाज के सामने उपस्थित विभिन्न चुनौतियों का चिंतन हिंदी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता में किस प्रकार और किस रूप में अभिव्यक्त हुआ हैं। इस पर गहन चिंतन,मनन और विश्लेषण इस पत्रिकाओं में प्रकाशित शोध पत्रों में हुआ हैं। जो हिंदी भाषा और साहित्य के अध्येताओं के लिए अत्यंत लाभदायक सिद्ध होगा ऐसा मुझे पूरा विश्वास हैं।

इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में प्रस्तुत शोध पत्रों को संपादित कर उसे पत्रिका में प्रकाशित करने के लिए शारदोपासक शिक्षण संस्था के अध्यक्ष मा. श्री बस्वराज वलांडे, सचिव मा.श्री रमेश बगदुरे, और महाविद्यालय के प्रभारी प्राचार्य डॉ प्रदीप पाटील जी ने हमें प्रेरित किया। सह-संपादक डॉ. जाफर चौधरी (अध्यक्ष, हिंदी विभाग) और संपादक मंडल के सदस्य प्रा. गंगाप्रसाद तोटावार जी ने अत्यंत निष्ठा से कार्य किया। हमारे महाविद्यालय के सभी सहकर्मियों का इस कार्य में अमूल्य योगदान रहा। प्रस्तुत पत्रिका का प्रकाशन कार्य श्री विराग गावंडे ने समय पर जिस सटीकता के साथ किया है । वह अत्यंत सराहनीय है। इसलिए इन सभी के प्रति मैं ऋण व्यक्त करता हूं।

डॉ भगवान रामकिशन कदम
संयोजक तथा संपादक
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
मास्टर दीनानाथ मंगेशकर महाविद्यालय, औराद (शहा)
ता निलंगा, जिल्हा - लातूर(महाराष्ट्र)

Editorial Board

Chief Editor -
Prof.Virag S.Gawande,
Director,
Aadhar Social Research &,
Development Training Institute, Amravati. **[M.S.] INDIA**

Executive-Editors -

- **Dr.Dinesh W.Nichit** - Principal, Sant Gadge Maharaj Art's Comm,Sci Collage, **Walgaon.Dist. Amravati.**
- **Dr.Sanjay J. Kothari** - Head, Deptt. of Economics, G.S.Tompe Arts Comm,Sci Collage Chandur Bazar Dist. Amravati

Advisory Board -

- **Dr. Dhnyaneshwar Yawale** - Principal, Sarswati Kala Mahavidyalaya , Dahihanda, Tq-Akola**.**
- **Prof.Dr. Shabab Rizvi ,**Pillai's College of Arts, Comm. & Sci., New Panvel, Navi Mumbai
- **Dr. Udaysinh R. Manepatil** ,Smt. A. R. Patil Kanya Mahavidyalaya, Ichalkaranji,
- **Dr. Sou. Parvati Bhagwan Patil** , Principal, C.S. Shindure College Hupri, Dist Kolhapur
- **Dr.Usha Sinha** , Principal ,G.D.M. Mahavidyalay,Patna Magadh University.Bodhgay Bihar

Review Committee -

- **Dr. D. R. Panzade,** Assistant Pro. Yeshwantrao Chavan College, Sillod. Dist. Aurangabad (MS)
- **Dr.Suhas R.Patil** ,Principal ,Government College Of Education, Bhandara, Maharashtra
- Dr. **Kundan Ajabrao Alone** ,Ramkrushna Mahavidyalaya, Darapur Tal-Daryapur, Dist-Amravati.
- **DR. Gajanan P. Wader** Principal , Pillai College of Arts, Commerce & Science, Panvel
- **Dr. Bhagyashree A. Deshpande**, Professor Dr. P. D. College of Law, Amravati]
- **Dr. Sandip B. Kale,** Head, Dept. of Pol. Sci., Yeshwant Mahavidyalaya, Seloo, Dist. Wardha.
- **Dr. Hrushikesh Dalai** , Asstt. Professor K.K. Sanskrit University, Ramtek

Our Editors have reviewed paper with experts' committee, and they have checked the papers on their level best to stop furtive literature. Except it, the respective authors of the papers are responicible for originality of the papers and intensive thoughts in the papers.

- **Executive Editor**

Published by -
Prof.Virag Gawande
Aadhar Publication ,Aadhar Social Research & Development Training Institute, New Hanuman Nagar, In Front Of Pathyapustak Mandal, Behind V.M.V. College,Amravati
(M.S) India Pin- 444604 **Email :** aadharpublication@gmail.com
Website : www.aadharsocial.com **Mobile :** 9595560278 /

INDEX-B

No.	Title of the Paper — Authors' Name	Page No.
1	शरणकुमार लिंबाले के साहित्य में दलित अस्मिता एवं चिंतन — **डॉ.लामतुरे वसंत हिरामण**	1
2	हिंदी भाषा चिंतन और चुनौतियाँ: एक परिचयात्मक अध्ययन — **डॉ. मणियार अखिल बाबूसाब**	5
3	असग़र वज़ाहत कृत... 'सात आसमान' उपन्यास में व्यक्त अल्पसंख्यक विमर्श, चिंतन एवं चुनौतियाँ — **शेख हुसैन मैनोद्दीन**	8
4	मोहन राकेश की कहानियों मे दाम्पत्य जीवन — **प्रा.डॉ. आहेर संगिता एकनाथराव**	14
5	इक्कीसवीं सदी की सृजनात्मक हिंदी कविता में स्त्री चिंतन — **डॉ. सुधीर गणेशराव वाघ**	18
6	स्वाधीनता आन्दोलन की नींव और ग़दर पार्टी — **सन्तोष कुमार मंडल**	23
7	स्वाधीनता के 75 वर्ष और स्त्री — **मनदीप**	27
8	आज बाजार बंद है ! उपेक्षित नारी का दस्तावेज — **डॉ.मा.ना.गायकवाड**	30
9	भारत की राजभाषा के रूप में हिंदी का स्थान — **प्रणिता प्रभाकरराव जहागीरदार**	35
10	गीतांजलि श्री के उपन्यासों में अकेलापन और अजनबीपन — **शिंदे संतोष सखाराम**	39
11	इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता चिंतन और चुनौतियाँ — **डॉ. शहनाज़ ज़फ़र बसमेह , ललिता गोपाल सिंहराय**	42
12	"आज की हिंदी कहानी और चुनौतियां" — **प्रा. डॉ. पावर आर. एस.**	46
13	'अंधा युग' में युद्ध की भयावहता पर चिंता और चिंतन की अभिव्यक्ति — **प्रा. सूर्यकांत रामचंद्र चव्हाण**	49
14	बेटन कहानी में बाल विमर्श की चुनौतियाँ — **डॉ. पुष्पा गोविंद गायकवाड**	54
15	कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श — **डॉ.जी.बी.उषमवार**	57
16	राजभाषा हिंदी चिंतन और चुनौतियाँ — **डॉ. देविदास भिमराव जाधव**	62
17	स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी पत्रकारिता — **प्रा. डॉ. सुभाष क्षीरसागर**	66
18	इक्कीसवीं सदी की हिंदी उपन्यास साहित्य में व्यक्त आदिवासी विमर्श, अस्मिता एवं चुनौतियाँ — **सिनगरवार पांडूरंग गिरजप्पा**	70
19	हिंदी उपन्यासों में कृषक विमर्श : एक चिंतन — **डॉ. प्रीती यादव**	78
20	संवैधानिक मूल्य और दलित साहित्य — **सहा.प्रा. योगेश्वर रामजी कु-हाडे**	82

21	वर्तमान समय में प्रयोजनमूलक हिंदी की स्थिति: एक चिंतन **सागर यादव**	85
22	भूमंडलीकरण और हिन्दी पत्रकारिता **श्री. हंबीर राजू मारोती**	88
23	'मशाल जलती रहे' एकांकी में राजनीतिक चेतना **प्रा.हिरा तुकाराम पोटकुले**	91
24	राष्ट्रीय शिक्षा निति के अनुसार हिंदी साहित्यएवं मनोविज्ञान में अन्तः संबंध का अध्ययन **डॉ. अजय कुमार चतुर्वेदी , डॉ. राजेश**	94
25	हिंदी की साहित्यिक रचनाओं की सामाजिक उपादेयता **डॉ. महेंद्र कुमार चौरसिया , डॉ. राजेश**	98
26	बाल विकास एवं हिंदी कविताएँ **डॉ. राजेश**	101
27	भारतीय समाज एवं साहित्य में किन्नरों की सामाजिक स्थिति **रबिता कुमारी,डॉ. राजेश**	104
28	राष्ट्रीय विकास मेंअवरोधकभ्रष्टाचार **डॉ. राजकुमार यादव ,डॉ. राजेश**	109
29	लार्ड मैकाले के राजनैतिक निर्णय हिंदी भाषा का विकास **डॉ. रामसिंह यादव, डॉ. राजेश**	114
30	मीडिया की भाषा का सांस्कृति पर प्रभाव **डॉ. रश्मि द्विवेदी , डॉ. राजेश**	118
31	स्वाधीनता संग्राम पर हिंदी का मनोवैज्ञानिक प्रभाव **डॉ. शालू देवी, डॉ. राजेश**	120
32	आदिवासी समाज केचिंतन और चुनौतियों कादहकता दस्तावेज संजीव काउपन्यास साहित्य **डॉ. भगवान रामकिशन कदम**	124
33	आज़ादी के 75 वर्ष : स्त्री साहित्य : चिंतन एवं चुनौतियां **डॉ.प्रकाश भगवान शिंदे, डॉ गोविंद गुंडप्पा शिवशेट्टे**	127
34	दलित विमर्श : चिंतन और चुनौतियाँ (हिंदी दलित कविता के विशेष संदर्भ में) **डॉ. संजीवकुमार नरवाडे**	135
35	भारतीय नवजागरण और **डॉ. वी. गोविंद**	141
36	नासिरा शर्मा के उपन्यासों का सामाजिक चिंतन **डॉ. नागनाथ एस. वारले**	144
37	राजभाषा हिंदी की चुनौतियां **डॉ. (प्रोफेसर) शुभदा पांडेय**	147
38	संजीव के कथा साहित्य का कथ्य: एक चिंतन **प्रा.दया शंकर यादव**	151
39	साहित्य एवं मनोविज्ञान में वैचारिक समानता का मूल्याङ्कन **डॉ.आशा कुमारी, डॉ. राजेश**	155
40	निर्मल वर्मा के उपन्यासों में मानवीय संबंधों की टूटन **प्रा. डॉ. मुखत्यार शेखवहाब , प्रो.संतोष कुमार यशवंतकर**	158

41	प्रेमचंद की आलोचना परंपरा और डॉ.सूर्यनारायणन रणसुभे का चिंतन। **प्रा. डॉ.जयराम सूर्यवंशी**	**160**
42	हिंदी का भूत, वर्तमान और भविष्य:चिंतन और चुनौतियां **डॉ. दुर्गेश कुमार शर्मा**	**163**
43	वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी साहित्य **डॉ. पांडुरंग चिलगर**	**166**
44	दलित विमर्श चिंतन और चुनौतियां **राधा देवहंस , प्रो. डॉ. श्री संजय नरवाडे**	**175**
45	भारतीय आजादी आंदोलन और हिंदी कविताएं **प्रा. डॉ. अमोल रमेश इंगले**	**178**

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-B

ISSN : 2278-9308 December, 2023

शरणकुमार लिंबाले के साहित्य में दलित अस्मिता एवं चिंतन

डॉ.लामतुरे वसंत हिरामण

शोधछात्र हिंदी विभाग महाराष्ट्र उदयगिरी महाविद्यालय, उदगीर

प्रास्तावना:

समाज, सामाजिक संबंधों का जाल है, जहाँ व्यक्ति एक दूसरे पर निर्भर होता है, चूंकि साहित्य समाज का दर्पण है, जो कि व्यक्ति की मनोदशा से प्रभावित होता है तथा व्यक्ति की मनः स्थितियाँ समाज और उसके परिवेश से प्रभावित होती हैं, इसीलिये किसी भी समाज की संवेदना उसके साहित्य में अभिव्यक्त होती है।

भारत एक हिन्दुत्व प्रधान देश है, यहाँ समाज वर्ण-व्यवस्था पर आधारित है, वर्ण व्यवस्था से ही जाति की उत्पत्ति हुई, यही कारण है कि भारतीय समाज व्यवस्था में व्यक्ति की पहचान का आधार नाम के साथ-साथ जाति भी है और इस जाति आधारित समाज व्यवस्था में चौथे वर्ण की स्थिति अत्यंत दयनीय रही है, निम्न स्तर का होने के कारण सवर्ण समाज द्वारा उन्हें "वर्णसंकर, शूद्र, अछूत आदि कहकर समाज के लिए आवश्यक नाना कर्मों में नियुक्त करके नाना प्रकार के प्रपंचो का जाल रच कर उनका मनमाना शोषण, दोहन, दलन और उत्पीड़न किया गया।"1 उन पर घोर अत्याचार और यातनाएँ दी गई, उन्हें सारे अधिकारों से वंचित रखा गया, यहाँ तक कि गाँव से बाहर रहने को विवश किया गया। यही उनकी अस्मिता बन गई।

मराठी लेखक शरण कुमार लिंबाले ने अपनी लेखन और चितंन क्षमता के बल पर दलित साहित्य अस्मिता एवं चिंतन को आगे बढ़ाने में सराहनीय योगदान दिया है। शरणकुमार लिंबाले का जन्म ई.सन् 1 जून, 1956 को हुआ। एक मराठी भाषा के लेखक, कवि और साहित्यिक आलोचक हैं। उन्होंने 40 से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। उनका सबसे प्रसिद्ध काम 1984 में प्रकाशित उनकी आत्मकथा 'अक्करमाशी' है। 'अक्करमाशी' का कई अन्य भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी में अनुवाद किया गया है। अंग्रेजी अनुवाद ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा 'द आउटकास्ट' शीर्षक से प्रकाशित किया गया है। उनका आलोचनात्मक कार्य 'टुवर्ड्स एन एस्थेटिक्स ऑफ दलित लिटरेचर' (2004) को दलित साहित्य पर सबसे महत्वपूर्ण कार्यों में से एक माना जाता है। यह चर्चा करता है कि दलित अनुभवों को अनुमान अटकलबाजी पर कैसे प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

जब शरण कुमार लिंबाले ने ई. सन् 1984 में अपनी महान रचना 'अक्करमाशी (द आउटकास्ट) प्रकाशित की, तो इसने आत्मसंतुष्ट भारतीय साहित्यिक संवेदना को झकझोर कर दिया और जातीय विमर्श को हमेशा के लिए बदल दिया। उनका यह विचार है कि दलितों का अस्तित्व केवल भारत के क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि क्षेत्रीय और राष्ट्रीय सीमाओं के पार लोगों की संवेदनशीलता में व्याप्त है। यह वस्तुतः एक वैश्विक मुद्दा है। उनके लेखन ने न केवल दलित समुदाय बल्कि उच्च जाति के लोगों को भी प्रभावित किया है। उच्च जाति के पाठकों ने की सराहना की है और स्वीकार किया है कि उनकी 'अक्करमाशी' आत्मकथा ने हमारे द्वारा बसाए गए सड़े-गले समाज को सामने ला दिया है। उनमें से कई ने जातिगत भेदभाव को कायम रखने वाली व्यवस्था को बदलने की आवश्यकता पर जोर दिया है। उनके अनुसार दलित आंदोलन मूलतः विरोध के साधन के रूप में अहिंसा में निहित है। यह दलित मुद्दों को हल करने के लिए अहिंसक तरीकों की वकालत करता है। यह दृढ़ विश्वास के साथ लड़ता है लेकिन बंदूकों के बिना। यह आंदोलन हमेशा 'बौद्ध' में विश्वास करता है न कि 'युद्ध' में। यह गौतम बुद्ध के सिद्धांतों में विश्वास करता है।

शरणकुमार का मानना है कि जब तक लोग जाति, धर्म, पंथ और राजनीतिक परिवारों या राजवंशों से स्थायी रूप से ऊपर नहीं उठेंगे, लोकतंत्र को खतरा बना रहेगा। लिंबाले लोकतंत्र प्रेमी हैं। वह लोकतंत्र, न्याय,

बंधुत्व, सामाजिक स्वतंत्रता और समानता की वकालत करते हैं। वह टैगोर से प्रेरित होते हुए यह कहते हैं हममें से प्रत्येक इंसान को संकीर्ण घरेलू दीवारों के बिना एक नए राष्ट्र का सपना देखना चाहिए।

दलित समाज के हित में बात करते हुए शरण कुमार लिम्बाले कहते हैं कि,"दलित जीवन ने बीती सदियों में जो कुछ झेला है और जो अब भी झेल रहा है, उसके मुक़ाबले यह प्रतिदान बूंद भर भी नहीं है, कि दलित सम्मान और बराबरी की लड़ाई अभी लंबी चलनी है और जितनी समाज में चलनी है उससे ज़्यादा दिलों के भीतर कई परतों में चलनी है।"2

दलित साहित्यकार शरण कुमार लिम्बाले ने दलित चिंतन साहित्य पर अपने विचार साझा करते हुए अपने एक वक्तव्य में बताया कि, हिन्दू समाज प्रचीन काल से जातिवादी समाज रहा है, लेकिन इसमें सभी वर्गों और मतों को लेकर बग़ावत भी होती रही है। दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य, स्त्री विमर्श की बग़ावत से पहले बहुत से लोगों ने बग़ावत की थी। शरण कुमार लिंबाले सामाज के जातिगत वर्गों की तो बात की ही साथ ही उन्होंने चार्वाक दर्शन, बुद्ध दर्शन, जैन दर्शन के में सामाजिक समरसता की बात की और कई महान धर्म प्रचारकों की मान्याओं को उल्लेख भी किया। साथ ही यह भी बताया कि किस प्रकार मध्यकाल में संतो ने भी जातिगत भेदभावों के विरूद्ध समाज के हित में महत्वपूर्ण काम किया।

शरण कुमार लिंबाले एक ऐसे विरले दलित साहित्यकार जो मध्यकाल से चली आव रही संतों परिपाटी को लेकर, उनकी मान्यताओं को लेकर आगे बड़े हैं। शरण कुमार लिंबाले ने अपने साहित्यक योगदान से समाजसुधारक का काम किया है।

अतः प्रगतिशील लेखक, समाज सुधारक शरण कुमार लिम्बाले पुरखों के समय से चली आ रही हजारों साल पुरानी रूढ़िवादी मानसिकता का विरोध करता हैं और कहते है कि जो हमारे पुरखों ने अत्याचार सहन किया वह आज के समय की में सहन करना कदापि उचित नहीं है। इसलिए वे वर्तमान समय में एक योद्धा बन कर नवजागरण की परम्परा और दलित साहित्य को आगे बढ़ाने में सराहनीय योगदान देने के लिए सामने आए हैं, अमानवीय व्यवस्था के ख़िलाफ़ बोलना शरण कुमार लिम्बाले अपना हक़ में मानते हैं।

शरण कुमार लिम्बाले की बहुचर्चित रचनाओं में- सनातन, नरवानर, रामराज्य, हिंदू, दलित ब्राह्मण आदि उपन्यास, देवता आदमी (कहानी संग्रह) और दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र जैसी आलोचना पुस्तक शामिल हैं। वास्तव में देखा जाए तो, दलित साहित्यकार शरण कुमार लिम्बाले ने अपने लेखन से दलित अस्मिता एवं दलित चिंतन साहित्य को समृद्ध किया है।

शरण कुमार लिम्बाले मराठी भाषा के प्रसिद्ध लेखक, चिंतक और मराठी दलित साहित्य आन्दोलन के पुरोधा हैं। उनकी आत्मकथा 'अक्करमाशी' बहुचर्चित है। दलित साहित्य के विकास में शरण कुमार लिम्बाले एक प्रगतिशील लेखक बनकर उभरे हैं। साथ ही वे प्रगतिशील समाज के योगदान की सराहना भी करते हैं। वे कहते हैं कि, प्रगतिशील समाज ने हमारा स्वागत किया और उसका प्रभाव मुझ पर और मेरे लेखन पर हमेशा रहा है। शरण कुमार लिम्बाले संवयं को संबोधित करते हुए कहते हैं कि, "शरण कुमार लिम्बाले बहुत अच्छा लिखता है। ये गालियां देता है, विद्रोह करता है, ज़ोर से बोलता है तो इसका अधिकार है।"3

'अक्करमाशी' शरण कुमार लिंबाले की आत्मकथा ही नहीं बल्कि यह भारतीय समाज और संस्कृति की सबसे बड़ी विडम्बना है। संपूर्ण सच्चाईयों का पर्दाफाश करने वाली यह आत्मकथा सवालों की झड़ी लगा देती है और समाज के लोग अनुत्तरित रह जाते हैं। लेखक अपने अस्तित्व की रक्षा के लिये नीग्रो के सम्मुख प्रश्न करता है "मैं कौन हूं?"4 और इसके उत्तर में जो शब्द निर्मित होते हैं वह भी सवाल बनकर रह जाता है। "मेरे पिता लिंगायत हैं। मेरी माँ महार अर्थात दलित है।"5 व्यक्ति अकेला कुछ नहीं होता, माता-पिता, सगे-संबंधी और सामाजिक संबंधो के साथ उसकी नैतिक-अनैतिक स्वीकृति ही उसकी अस्मिता और पहचान है। ऐसी स्थिति में वह कौन है? क्या है? अछूत या सवर्ण, मनुष्य या अमानुष। सवर्ण तो हो नहीं सकता, क्योंकि वह अछूत है, लेकिन

अछूत होकर भी वह तिरस्कृत क्यों है? ऐसे ही अनेक सवालों का उद्गार करती यह आत्मकथा जाति-भेद, वर्ण-व्यवस्था, अस्पृश्यता, मानवीय संबंध, नैतिकता और मानवाधिकारों को परत-दर-परत उकेरती आगे ब लिये लेखक अपने जीवन को कुष्ठ रोग की भाँति छिपाये रखता है। लेखक का स्वकथन है-"कोलने पड़ते हैं? यह इस कथन से चरितार्थ होती है-"मैं यहाँ जाति चुराकर रहता हूं, दलितों को यहाँ किराए से जगह नहीं मिलती है। लोगों को यदि मेरी सही जाति मालूम हो गयी, तो मुझे जान से मार डालेंगे, मुझे यहाँ डर लगता है। आपके आने के बाद मेरी असलियत खुलने का डर लगता है।"6

भारतीय समाजशास्त्रियों ने अस्पृश्यता को तीन मान्यताओं पर आधारित माना है- 1. खान-पान संबंधी, 2. विवाह संबंधी, 3. धार्मिक उत्सव संबंधी अछूत के साथ भोजन करना तो दूर, उसके स्पर्श मात्र से सवर्ण हिन्दू शरीर को अशुद्ध मानते हैं। लिंबाले की कहानी 'युद्ध' में सवर्ण व्यक्ति देशमुख एक दलित पात्र भगवान से कहता है, "देख बेटा मुझे कानून मत पे? अजी पंत जी, संभल के आ जाइये, छूत लग जायेगी। इसे पहचाना नहीं आपने? यह अपने सदाशिव का बेटा है। फौजी है"6..... भगवान ने जब उनकी टूटी हुई प्याली में चाय पीने से मना कर दिया, तो उस पर छींटाकशी की गई "महारों को भी मस्ती आ गयी है।"7

भगवान इज्जत और सम्मान से जीना चाहता था, लेकिन उसे हर पल यही अहसास कराया जाता है कि वह अछूत है और अछूतों का एकमात्र धर्म उच्च वर्ण की सेवा करना है, इस व्यवस्था का विरोध करने पर उसके पूरे परिवार को ही समाप्त कर दिया गया। दलितों को प्रताड़ित करने के लिये सवर्ण अनेक यत्न करते थे, कभी मरे हुए जानवरों को उठाने के लिये विवश किया जाता था, तो कभी उनके कुएॅं में मृत पशुओं को डाल दिया जाता थां ऐसी व्यवस्था जाति, धर्म, वर्ण की दीवार को और मजबूत करती है। जातिवाद के जहर से अशिक्षित और गरीब तो पीड़ित हैं ही, शिक्षित और तथाकथित प्रगतिशील लोग भी इससे मुक्त नहीं हो पाए हैं।

आधुनिक संभ्रान्त वर्ग बेटी-रोटी का संबंध एस. सी. या एस. टी. के अतिरिक्त अन्य किसी भी जाति से बनाने को तैयार हैं। लिंबाले ने अपनी कहानी 'अंधेरे का गर्भ' में ऐसे ही सवर्ण सरपंच को चित्रित किया है, जो अपने गृह की ग्रह बाधा शांति के लिये एक गर्भवती दलित स्त्री को जमीन में जिन्दा गाड़ देता है। मुखियाँ और सरपंच जैसे लोगों के माध्यम से समाज का दोगलापन दिखाया गया है, जो अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये अमानवीय कृत्य करने से भी परहेज नहीं करते। 'हरिजन मास्टर' (देवता आदमी) कहानी में भी सवर्ण समाज की ऐसी ही मानसिकता को लेखक ने उजागर किया है, जिसमें शिक्षा देने का पवित्र कार्य करने वाले दलित मास्टर के गाँव में आ जाने से लोगों में बेचैनी भर जाती है। गाँव वाले यह सोचकर बहुत परेशान होते हैं कि वह दलित मास्टर कहाँ रहेगा? वह किस प्रकार अपने बच्चों को उस मास्टर के पास पढ़ाई-लिखाई के कारण सामाजिक और राजनैतिक दांव-पेंच को जानने समझने लगता है, लेकिन जब इसी हक और अधिकार के कारण वह चुनाव में आरक्षित सीट पर अपना पर्चा दाखिल करता है।

संदर्भ

1. बद्रीनारायण, दलित वैचारिकी की दिशाएँ, प्रथम संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2008, पृ. 75

2. शरण कुमार लिंबाले, अक्करमाशी, प्रथम संस्करण, वाणी प्रकाशन दिल्ली, 2009, पृ. 24

3. वही, पृ. 17

4. वही, पृ. 22

5. शरण कुमार लिंबाले, झुण्ड, प्रथम संस्करण, वाणी प्रकाशन दिल्ली, 2012, पृ. 30

6. शरण कुमार लिंबाले, दलित ब्राम्हण, तृतीय संस्करण, वाणी प्रकाशन दिल्ली, 2008, पृ. 98

7. वही, पृ. 99

B.Aadhar International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-B

ISSN : 2278-9308 December, 2023

हिंदी भाषा चिंतन और चुनौतियाँ: एक परिचयात्मक अध्ययन

डॉ. मणियार अखिल बाबूसाब

शोधछात्र हिंदी विभाग महाराष्ट्र उदयगिरी महाविद्यालय, उदगीर

प्रास्तावना:

भाषा वह माध्यम है जिसके द्वारा हम अपनी भावनाओं और विचारों को किसी दूसरे के समक्ष अभिव्यक्त करते हैं और दूसरे की भावनाओं और विचारों को समझते हैं। इससे अलग भाषा की कोई और परिभाषा हो ही नहीं सकती। भाषा का सम्बंध मनुष्य और समाज से है। भाषा कोई व्यक्तित या विशेष समूहगत सम्पत्ति नहीं बल्कि वह एक सामाजिक निधि है। इसलिए सामाजिक सरोकारों से परे कोई भाषा हो ही नहीं सकती।

किसी भी देश में राष्ट्र भाषा का सम्मान उस भाषा को ही प्राप्त होता है जो देश विशेष में सर्वाधिक लोगों द्वारा बोली जाती है। निश्चित तौर पर भारत देश का एक बहुत बड़ा जनमानस हिंदी भाषा से परिचित है। इसलिए यह प्रस्तावित किया गया कि भारत में राष्ट्रभाषा का अधिकारी होने का सम्मान हिंदी भाषा को प्रदान दिया जाए। जैसे ही किसी को कोई भी अधिकार प्रदान किया जाता हैं, कर्तव्य स्वयं ही निर्दिष्ट हो जाते हैं। और कर्त्तव्य पुनः अधिकारों का सृजन करते हैं। अतः इन दोनों का एक-दूसरे से पूरक सम्बंध है।

किसी भी भाषा के राष्ट्रभाषा के रूप में चिन्हित होते ही उसके दायित्वों में वृद्धि हो जाती है। अब यह भाषा केवल संवाद का माध्यम नहीं रह जाती बल्कि वह समूचे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व विश्व के समक्ष करती है। कभी भी भाषा का सम्बंध केवभाषा का कार्य क्षेत्र बहुत विशाल होता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को अभिव्यक्त करने के लिए भाषा को सदैव चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। जीवन को संचालित करने के लिए अनुभव और ज्ञान के संतुलन की आवश्यकता होती है। और अनुभव तथा ज्ञान नामक ये दोनों ही पक्ष अपने विकास के लिए भाषा की अतुलनीय समृद्धि की माँग करते हैं।

हिन्दी की लोकप्रियता आज़ कितनी बढ़ गई है, इसका आकलन इस तथ्य से ही किया जा सकता है कि दक्षिण भारत जो कभी इसका विरोधी था वहाँ आज़ लगभग प्रत्येक विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग आरंभ हो चुके हैं। इतना ही नहीं तेलगु, तमिल, कन्नड़ व मलयाली साहित्य का बड़ी तेज़ी से हिंदी में अनुवाद हो रहा है। दक्षिण भाषी हिंदी अध्यापक बहुत बड़ी संख्या में इन विश्वविद्यालयों में कार्य कर रहे हैं। इतना ही नहीं अभी हाल ही में अमेरिका जैसे देश ने भी एशियाई देशों की राष्ट्रभाषा सीखने हेतु अपने अकादमिक जगत को निर्देशित किया है, जिसमें हिंदी को प्रमुख स्थान दिया है। जहाँ तक साहित्यिक पक्ष का प्रश्न है निःसंदेह हिंदी भाषा की रचनात्मक क्षमता अपनी पूरी ऊर्जा के साथ यहां प्रकट होती है। अधिसंख्य लोग यह संदेह प्रकट करते हैं कि अब पाठक वर्ग बहुत कम रह गया है, तो प्रश्न यह भी है कि हिंदी की कितनी पत्रिकाएं लगातार प्रकाशित हो रही हैं। एक बड़ी संख्या में घरेलू, मनोरंजनपरक पत्रिकाएं हमारे समक्ष हैं और कितनी साहित्यिक पत्रिकाएं। फिर भी लगातार ही कुछ नई पत्रिकाएं जन्म लेती जा रही हैं। अभी वर्तमान वर्ष से ही आरंभ होने वाली पत्रिकाएं हैं शब्द योग, लोकायत, शिखर, सृजन पथ, पाठ आदि।

हिंदी की पत्रिकाएं न केवल हिंदी भाषी क्षेत्रों से बल्कि कुछ विदेशी प्रयास भी इस दिशा में लगातार हो रहे हैं। दुबई में रहने वाले कृष्ण कुमार के प्रयास से अमेरिका और भारत दोनों के संयुक्त तत्वावधान में 'अन्यथा' जैसी महत्त्वपूर्ण साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन चंडीगढ़ से हो रहा है। इसके अतिरिक्त 'स्पैन' नामक हिन्दी भाषी पत्रिका का प्रकाशन अमेरिका कर रहा है, जो साहित्यिक के अतिरिक्त सामाजिक पक्षों पर भी चिंतन प्रस्तुत कर रही है। विज्ञान के क्षेत्र में भी 'विज्ञान प्रसार' जैसी पत्रिका का यह प्रयास सार्थक है कि यह पत्रिका एक साथ हिंदी और अंग्रेज़ी दोनों ही भाषाओं में प्रकाशित होती है। चाहे यह प्रयास बहुत छोटे स्तर का ही क्यों न हो, प्रयास सराहनीय है। इसके अतिरिक्त हिंदी की वेब पत्रिकाएं भी आरंभ हो चुकी हैं। मनीषा कुलश्रेष्ठ की वेब पत्रिका हिंदी

जगत् में अपना स्थान बना चुकी है। ज्ञात हुआ है कि इस दिशा में 'बीबीसी' रेडियो प्रसारण अब एक और महत्त्वपूर्ण कदम उठाने हेतु प्रयासरत है। ऐसा प्रयास हिंदी जगत् के भावी परिदृश्य को सकारात्मक भाव-बोध से भरता है। कहने मतलब यह कि जब इतने सारे स्तरों पर साहित्यिक जगत् हिंदी की स्थापना हेतु प्रयास कर रहा है तो फिर क्या कारण हैं कि हिंदी को उसका निर्धारित स्थान प्राप्त करने में इतना अधिक समय लग रहा है।

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में भी भारत के दक्षिणी भाग से संवाददाता के रूप में सूचना प्रदान करने वाले दक्षिण भारतीय हिंदी बोलते ही दिखाई देते हैं। हिंदी भाषा ने व्यावसायिकता के आधार पर जो सम्मानित दशा प्राप्त की है, उसे अभी और आगे जाने की आवश्यकता है। ज्ञान को भाषा से जोड़ना जहां भाषाहीनता से बचने का महत्त्वपूर्ण हल है वहीं ज्ञान से जुड़ते ही हमारा परिचय नई शब्दावली से होता है। अंग्रेज़ी भाषा आधुनिक ज्ञान की प्रबल संवाहक है इसलिए ज्ञानात्मक क्षेत्र में उसका विस्तार है। बावजूद इसके अंग्रेज़ी भाषा लगभग 250 नये शब्द प्रतिवर्ष अपने शब्दकोष में जोड़ती है। समय के विकास के साथ-साथ भाषा के अपने प्रतिमान और पारिभाषिक शब्दावलियां पुरानी और भोथरी होती चली जाती है। नये शब्दों का जुड़ाव यानी नये ज्ञान से परिचय यानी संवेदना में विस्तार। प्रत्येक समय की अपनी मांग होती है। इस मांग के अनुसार भाषा का चोला होता है। सूचना तकनीकि के मकड़जाल में अपने अस्तित्त्व की रक्षा अपने ज्ञान के माध्यम से हो सकती है। सूचना तकनीकि को अपनी शब्दावलियां लेने को बाध्य करने वाली भाषा भाषाहीनता की स्थिति मे नहीं हो सकती।

ज्ञान मनुष्य के समक्ष नई चुनौतियां पैदा करता है। नई चुनौतियां -नई परेशानियां, नई परेशानियां -नया भाव-संसार, नया भाव-संसार- नई संवेदना। अब इस संवेदना के विस्तार के लिए नया भाषा संसार भी चाहिये अर्थात् नयी शब्दावलियां भी। नई शब्दावली भाषा के स्वरूप को परिवर्तित करती है। प्रारंभ से वर्तमान की हिंदी तक का विकास इसके सामाजिक सरोकारों को दर्शाता है किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् जब से हिंदी को संरक्षित किया गया है, इस अर्द्धशती में हिंदी से नया ज्ञान दूर हुआ है। राष्ट्रभाषा महासंघ के मुंबई में सन् 1999 को राष्ट्रीय सम्मेलन में यह प्रस्ताव पारित किया गया था कि हिंदी न केवल संस्कृत से बल्कि लोक भाषाओं से भी प्रमुखतः अपनी शब्दावली समृद्ध करेगी।

हमें हिंदी भाषा को केवल साहित्य के साथ नहीं बल्कि ज्ञान के साथ अनिवार्यतः जोड़ना होगा तभी हिंदी को अपेक्षित सम्मानित स्थान प्रदान किया जा सकेगा। चिकित्सा का क्षेत्र हो या अभियांत्रिकी का, निजी व्यवसाय का क्षेत्र हो या सरकारी एवं अर्द्ध सरकारी संस्थानों का, कला का क्षेत्र हो या विज्ञान का हमें सारे क्षेत्रों की मांग के अनुसार हिन्दी भाषा को समृद्ध करने का अवसर नहीं चुकना चाहिए। हिन्दी दिवस (14 सितम्बर) को हम यह संकल्प लेते हैं कि हम भारत के सम्पूर्ण विकास के लिए आवश्यक समस्त क्षेत्रों के अनुसार हिंदी भाषा को समृद्ध करने का प्रयास करें। यह हमारी सच्ची राष्ट्रभक्ति होगी।

निष्कर्ष:

भारत एक ऐसा देश है जिसकी बाईस भाषाओं को भाषा व कार्यभाषा का दर्जा प्राप्त है लेकिन इसके बावजूद देश में अधिकांश प्रशासनिक कार्य अंग्रेजी में होते है। देश के भीतर भाषा के स्तर पर हीनता बोध का ही प्रभाव है कि आज शिक्षा, विज्ञान, तकनीक और रोजगार की भाषा अंग्रेजी बन गई है।

आज के समय की स्थिति यह कि छात्र हिंदी के प्रति गर्व तो करते हैं लेकिन उसे आत्मविश्वास के साथ परीक्षा का माध्यम बनाने से डर रहे हैं। उनके भीतर का यह डर अंग्रेजी के बढ़ते वर्चस्व से उत्पन्न हुआ है जिसने हिंदी के साथ ही उसकी अन्य भाषाओं को कमजोर और हीन बना दिया है।

वर्तमान समय में हिंदी विश्व बाजार की भाषा बन गई है। वैश्विक फलक पर इसे पढ़ाया तक जाने लगा है किंतु देश के भीतर ही यह दयनीय स्थिति तक पहुंच गई। जहाँ इसका अपना अस्तित्व संकट में देखा जा सकता है।

आज जर्मन, जापान, चीन, अमेरिका आदि ने अंग्रेजी को नकार कर अपनी-अपनी भाषा में अपने-अपने देशों की प्रगति हर क्षेत्र में कर ली है तो हम हिंदुस्तानी क्यों नहीं कर सकते? हिंदी सबसे प्रभावी संचार माध्यम होनी चाहिए। हिन्दी भाषा अन्य भाषाओं की तुलना में आसान है।

संक्षेप में, हिन्दी वर्तमान में शिक्षा क्षेत्र में फिसलती जा रही हैं, राष्ट्र का इत्रोवेशन इंडेक्स गिरता जा रहा है, लोगों की भागीदारी कम हो रही है। हिन्दी भाषा की पुस्तकों में विज्ञान परक पाठ बहुत कम होते हैं। शब्द व्यत्यŸ◌ि◌ा

का ज्ञान नहीं कराया जा रहा। अर्थगत संकल्पनाओं का भेद नहीं बताया जाता। हिन्दी में रचनात्मक लेखन पर बल नहीं दिया जाता। उच्च शिक्षा में सामाजिक कार्य, केस स्टडीज, फील्ड प्रोजेक्ट लोकभाषा में नहीं होते। गूंगे ज्ञानी से समाज का कितना लाभ होगा।

संदर्भ

1. राजभाषा हिन्दी प्रशिक्षण, डॉ विनयकुमार पाठक
2. हिन्दी भाषा व देवनागरी लिपि, डॉ बृजेश सिंह, राष्ट्रभाषा पत्रिका अंक मार्च-अप्रैल 2008, पृ. 7
3. संचार बुलेटिन - पत्रिका
4. आठवाँ विश्व हिन्दी सम्मेलन, न्यूयार्क, अमेरिका सम्मेलन समाचार
5. सन्मार्ग समाचार पत्रिका - 14 सितंबर 2012, कलकत्ता।
6. हिन्दी भाषा के विकास में आधुनिक जनसंचार माध्यम की भूमिका - संगोष्ठी स्मरणिका
7. आदर्श हिन्दी निबंध - भुवनेश्वरी चरण सक्सेना

असग़र वज़ाहत कृत... 'सात आसमान' उपन्यास में व्यक्त अल्पसंख्यक विमर्श, चिंतन एवं चुनौतियाँ

शेख हुसैन मैनोद्दीन

शोधछात्र मु.पो. हाळी, ता. उदगीर, जि. लातुर महाराष्ट्र-४१३५१८

शोधसार :

विमर्श शब्द सोच विचार, विचार विनिमय, चिन्तन मनन, परामर्श, विवेचना, आलोचना, वितर्क, अनुसंधान, अधीरता को द्योतित करता है। साहित्य के सन्दर्भ में विमर्श की संकल्पना आधुनिक काल की देन है। विगत दो दशकों से विमर्श की संकल्पना साहित्य मीमांसा में प्रयुक्त हो रही है। हिन्दी उपन्यास साहित्य के इतिहास में असग़र वज़ाहत का चुनौती मय कदम है। जिसमें बाह्यजगत् व अन्तर्जगत् की कथा अन्तर्गुंथित प्रतिबिम्बित होती है। असग़र वज़ाहत ने 'सात आसमान' उपन्यास में अल्पसंख्यक विमर्श की मीमांसा की है। इस उपन्यास के अन्तर्गत विघटन विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, सत्ता विमर्श, शिक्षा विमर्श का प्रभावशाली चिन्तन किया है। असग़र वज़ाहत यह 'सात आसमान' उपन्यास लगातार बदल रहे जीवन और इसकी तीव्र परिवर्तनशीलता का अक्स है 'सात आसमान', अपने आप में चार सौ सालों की कहानी समेटे है। यह कहानी है एक ही मुस्लिम परिवार की। यह कहानी है जीवन के करवट बदलने की क्षमता की। विभिन्न काल-खंडों में जीवन विभिन्न साँचों में किस तरह ढ़लता जाता है उसे दर्शाते हुए 'सात आसमान' भारत के कई युगों को उद्घाटित करता है।

प्रास्तावना :

साहित्य के सन्दर्भ में विमर्श की संकल्पना आधुनिक काल की देन है। साहित्य में १९६० के बाद विमर्श की अवधारणा दृष्टिगत होती है। वर्तमान में जब साहित्य परिचर्चा होती है तो ''विमर्श' शब्द स्वतः बहस के केन्द्र में आ जाता है। शब्द प्रयोग की दृष्टि से 'विमर्श' शब्द अत्यन्त प्राचीन है। 'विमर्श' का अर्थ है-सोच विचार कर तथ्य या वास्तविकता का पता लगाना, किसी बात या विषय पर कुछ सोचना, समझना, विचार करना, गुण-दोष आदि की आलोचना या मीमांसा करना, जांचना और परखना, कसी से परामर्श या सलाह करना, ज्ञान।''[१]

विमर्श' शब्द अत्यंत व्यापक है, जिसकी उत्पत्ति मृश् धातु में वि-उपसर्ग तथा घञ् प्रत्यय लगाकर हुई है। अतः 'विमर्श' शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ विचार-विमर्श, सोचना, समझना, आलोचना करना है। नालन्दा विशाल शब्द सागर में विमर्श को, ''किसी बात का विचार या विवेचन, आलोचना, समीक्षा, परीक्षा, परखने का काम परामर्श, सलाह, अधीरता, असंतोष।''[२] के अर्थ में लिखा गया है। मानक अंग्रेजी हिन्दी कोश में 'डेलीबरेट' का अर्थ, ''सुचिंतित, जानबूझकर किया गया, इरादे के साथ, विचारपूर्वक सोद्देश्य, निश्चित और सुचिंतित बताए गये इसके अन्य अर्थ सचेत, चौंकना, सावधान, विवेकशील, सोच-समझकर फैसला करने वाला, बताए है।''[३] अर्थात, विमर्श का अर्थ सलाह करना, बहस करना, विचार-विमर्श, सोच-विचार, सलाह-मंत्रणा, वाद-विवाद, धीरता सतर्कता है।

विमर्श शब्द सोच विचार, विचार विनिमय, चिन्तन मनन, परामर्श, विवेचना, आलोचना, वितर्क, अनुसंधान, अधीरता को द्योतित करता है। वास्तव में किसी विषय विशेष के सन्दर्भ में गंभीरता से चिन्तन, मनन , विवेचन, विचार विनिमय व सोच विचार करना विमर्श कहलाता है। विमर्श ही समकालीन उपन्यासों की शक्ति है। विगत दो दशकों से विमर्श की संकल्पना साहित्य मीमांसा में प्रयुक्त हो रही है। विविध विमर्शमूलक विचारों का अंकन हिन्दी के समकालीन उपन्यासों में विस्तार से हुआ है। आधुनिक काल में विमर्शवादी अवधारणा के अन्तर्गत दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, किन्नर विमर्श, किसान विमर्श, पर्यावरण विमर्श, वृध्द विमर्श, शिक्षा विमर्श, आदि का समकालीन कथासाहित्य में विश्लेषण किया गया है। अब विमर्श का दूसरा दौर चल रहा है जिसमें झुग्गी झोंपड़ी विमर्श, विघटन विमर्श, विखंडन विमर्श, सेक्स विमर्श, श्रमिक विमर्श, बाज़ार विमर्श, सत्ता विमर्श, अपने अनुभवों, आंखों देखी घटनाओं के माध्यम से सड़ी गली सामाजिक व्यवस्था पर चोट करने का प्रयास साहित्य में किया जा रहा है। जिन्होंने अपने रचना संसार को विविध रूप रंग से सुसज्जित किया है।

अल्पसंख्यक विमर्श आधुनिक काल के चिन्तन का विषय है। अल्पसंख्यक विमर्श की स्थितियां इसी कालखण्ड का सूचक हैं। वस्तुतः जो संख्या में कम हो या अल्प हो वही अल्पसंख्यक है। अल्पसंख्यक की संकल्पना उस समुदाय के लिए प्रयुक्त होती है जिसकी संख्या कम होती है। स्वाधीनता की प्राप्ति के समय मुस्लिम संख्या देश में हिन्दुओं की तुलना में अल्प थी। इस विषय के सन्दर्भ में 'अल्पसंख्यक विमर्श' से हमारा आशय मुस्लिम जीवन विषयक विचार चिन्तन से है। हिन्दी उपन्यासों में अल्पसंख्यक विमर्श के रूप में मुस्लिम समाज का अंकन अत्यन्त यथार्थता के साथ व ईमानदारी से हुआ है। साम्प्रदायिक दंगों व फसादों ने हिन्दू और मुस्लिम दोनों को क्षति पहुंचाई है। जिनमें असग़र वज़ाहत अल्पसंख्यक विमर्श साहित्य लेखन में प्रमुख हस्ताक्षर रहे है।

असग़र वज़ाहत का जन्म ५ जुलाई, १९४६ ई. सन् को फतेहपुर, उत्तर प्रदेश, में हुआ था। उन्होंने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम.ए. तक की पढ़ाई की एवं वहीं से पी-एच.डी. की उपाधि भी पायी। पोस्ट डहक्टोरल रिसर्च जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, दिल्ली से किया। १९७१ से जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली के हिंदी विभाग में अध्यापन किया है।

मूलतः असग़र वज़ाहत कहानीकार हैं। कहानी के बाद उन्होंने गद्य साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लेखन किया और अपने लिए हमेशा नए प्रतिमान बनाए। अपने लिए जिस भी विधा को उन्होंने चुना वहाँ हमेशा पहले दर्जे की रचना संभव हुई। असग़र वज़ाहत के लेखन में अनेक कहानी संग्रह, पाँच उपन्यास, आठ नाटक और कई अन्य रचनाएँ शामिल हैं। इनकी पहली कहानी १९६४ के आसपास छपी थी तथा पहला कहानी संग्रह 'अंधेरे से' १९७६ ई. सन् में आपातकाल के दौरान पंकज बिष्ट के साथ (संयुक्त रूप से) छपा था। इनकी कहानियों के अनुवाद अंग्रेजी, इतालवी, रूसी, फ्रेंच, ईरानी, उज्बेक, हंगेरियन, पोलिश आदि भाषाओं में हो चुके हैं।

असग़र वज़ाहत का पहला नाटक 'फिरंगी लौट आये' १८५७ ई. सन् की पृष्ठभूमि पर आधारित था। आपातकाल के दौरान 'फरमान' नाम से इसे टेलीफिल्म के रूप में फिल्माया गया तथा इसके प्रसारण भी हुए थे। इनके नाटकों का देश भर में मंचन और प्रदर्शन हुआ है। इनके नाटकों का निर्देशन हबीब तनवीर, एम के रैना, दिनेश ठाकुर, राजेंद्र गुप्ता, वामन केंद्रे, शहीम किरमानी तथा टाम आल्टर जैसे निर्देशकों ने किया है। 'जिस लाहौर नई देख्या ओ जम्याइ नई' ने देश एवं देश के बाहर भी लोकप्रियता के नये मानदंड कायम किये। हबीब तनवीर ने इस नाटक का पहला शो ई. सन् २७ सितंबर, १९९० को किया था। इसके बाद यह नाटक इतनी चर्चा में आ गया कि इसके प्रदर्शन कराची, दुबई, वाशिंगटन डीसी, सिडनी, लाहौर तथा अन्य शहरों में हुए। भारत की कई भाषाओं में इसके अनुवाद किये गये और इसका मंचन हुआ। हबीब तनवीर के अतिरिक्त इस नाटक को ख़ालिद अहमद, उमेश अग्निहोत्री, दिनेश ठाकुर, कुमुद मीरानी आदि निर्देशकों ने किया। इस नाटक के बीस वर्ष पूरे होने पर एक अंतर्राष्ट्रीय आयोजन हुआ जिसके तहत विश्व के कई नगरों में इसके मंचन तथा गोष्ठियां आयोजित की गयीं।

असग़र वज़ाहत नियमित रूप से अखबारों और पत्रिकाओं के लिए भी लिखते रहे हैं। २००७ में उन्होंने अतिथि संपादक के रूप में बी.बी.सी. वेब पत्रिका का संपादन किया था। सुप्रसिद्ध हिंदी पत्रिका 'हंस' के 'भारतीय मुसलमान : वर्तमान और भविष्य' विशेषांक का संपादन भी उन्होंने किया था।

असग़र वज़ाहत उन लेखकों में परिगणित किये जाते हैं जिन्होंने भोगे हुए क्षणों को समाज के समक्ष बेबाकी से प्रस्तुत करते हुए अपने 'सात आसमान' उपन्यास के माध्यम से जीवन का तूफ़ान, तूफ़ान का सैलाब, भावनाओं की सघनता, तनावों के कसाव को वाणी देने का सातत्य प्रयास किया है। 'सात आसमानान' हिन्दी औपन्यासिक साहित्य के इतिहास में असगर वज़ाहत जी का चुनौती मय कदम है जिसमें बाह्यजगत् व अन्तर्जगत् की कथा अन्तर्गुत्थित प्रतिबिम्बित होती है। निश्चय ही हिन्दी साहित्य के इतिहास में असग़र वज़ाहत ने लोकप्रियता अर्जित की है। भावनाओं के साधम्मर्य में साहित्य-प्रेमियों को असग़र वज़ाहत के साहित्य अल्पसंख्यक विमर्श की चिंतन एवं चुनौती है।

'सात आसमान' अपने अनूठे शिल्प के कारण हिंदी उपन्यास साहित्य में चर्चित है। आत्मकथात्मक शैली में लिखे इस उपन्यास में एक कथा के साथ अनेक गौण कथाओं और घटनाओं का समावेश हुआ है। घटना वैविध्य और पात्रों की अधिकता के कारण उपन्यास में बिखराव आया है लेकिन इसके कारण कथा की समृद्धता में कोई बाधा नहीं आई है। हुमायूँ के आगमन की घटना से शुरू होनेवाला यह उपन्यास सन १९६० तक के भारतीय मुस्लिम परिवार और उसके सामाजिक परिवर्तीत होती जा रही घटनाओं का जीवंत दस्तावेज प्रस्तुत करता है।

लेखक एक घटना का वर्णन करते हुए पात्रों का परिचय देने लगता है और कथा आगे बढ़ने लगती है। मुस्लिम समाज-जीवन का चित्रण लेखक ने आत्मीयता से किया है। उपन्यास के सारे पात्र लेखक के अपने रिश्तेदारों में से हैं, लेकिन यह अपनापन उपन्यासकार पर हावी नहीं हुआ है।

असग़र वज़ाहत यह 'सात आसमान' उपन्यास लगातार बदल रहे जीवन और इसकी तीव्र परिवर्तनशीलता का अक्स है 'सात आसमान', अपने आप में चार सौ सालों की कहानी समेटे है। यह कहानी है एक ही मुस्लिम परिवार की। यह कहानी है जीवन के करवट बदलने की क्षमता की। विभिन्न काल-खंडों में जीवन विभिन्न साँचों में किस तरह ढ़लता जाता है उसे दर्शाते हुए 'सात आसमान' भारत के कई युगों को उद्घाटित करता है।

प्रत्येक युग के सरोकारों को समझते-समझाते हुए यह उपन्यास अपने सम्पूर्ण विस्तार में न तो किसी को गौरवान्ति करता है और न ही किसी के पतन पर अट्टहास करता है। चार सौ सालों की दास्तान कहनेवाले इस उपन्यास में अतीत के सम्मोहन से मुक्त लेखक द्रष्टा भाव से जिसे जहाँ जैसा देखता है उसे वहाँ वैसा ही चित्रित करता है। उपन्यास के तमाम ज्ञात और मान्य रचना-प्रक्रिया से अलग शिल्प और शैली का अनूठापन लेकर उपस्थित हुआ है। 'सात आसमान' उपन्यास में पात्रों को गति देने के लिए लेखक ने जहाँ निजी अनुभवों का सहारा लिया है वहीं इतिहास से जुड़ने में भी कोई गुरेज नहीं किया है। जिसके कारण यह उपन्यास दृष्टि-सम्पन्न होकर पाठकों के सामने आया है। यह यथार्थ को उसकी समग्रता और गतिशीलता के साथ पकड़ता है और अल्पसंख्यक विकास के बिन्दुओं से ठमकता हुआ बढ़ता है। ऐसे कि बरक्स इसकी सराहना के स्वर मुखर हो जाते हैं।

उपन्यास में कुछ रचनागत कमियाँ भी परिलक्षित होती हैं। जिन लोगों का कथा में आगे संबंध नहीं है उनका भी लेखक ने वर्णन किया है। अंतिम खंड में मुंशीजी का चित्रण हद से ज्यादा हुआ हैं जिससे लगता है कि कथा में जान-बूझकर बिखराव लाया जा रहा है। मुंशीजी के अति चित्रण के अंत में स्वयं लेखक ने ''बहरहाल, यहाँ मकसद मुंशीजी का जीवन-चरित्र लिखना नहीं है।''[४]

कहकर अपनी गलती को सुधरा है। यही बात प्रसंगों के विश्वसनीय बनाने के संबंध में

है। शुजा आगा का पाखाने जाने के लिए किए जानेवाली तैयारी का चित्रण अतिशयोक्तिपूर्ण तथा काल्पनिक लगता है। उपन्यास में हर जगह आनेवाले छोटे-से-छोटे पात्र का भी परिचय दिया है, जिसके लिए अनेक पृष्ठ इस्तमाल हुए हैं। 'सात आसमान' उपन्यास की कथावस्तु इस तरह से है। जो कि अल्पसंख्यक विमर्श की दास्तान सुनाता है।

उपन्यास में दो खानदान की अनेक पीढ़ियों का मोहक चित्र उभरकर आया है। कथा-नायक अपने अम्माँ और अब्बा के साथ छुट्टियों में ननिहाल जाते थे, जो अम्माँ का मैका है। उस खानदान के वारिस मौतमुद्दौलला अठरवीं शती के आसपास अवध के दबार में वजीर थे। वह नवाब सयादत अली खाँ को शराब और सुंदरियों में डुबोकर सारी सत्ता के सरोताज बन गए थे। नवाब को भांग और शराब के नशे से महिनों होश न आता था। होश में आते और पूछते कि शासन का इंतिजाम कैसा चल रहा है तो मौतमुद्दौला शराब का जाम हाथ में लेकर कहते थे ''हुजूर, ये जामे-सेहत नौश कर ले तो बंदा अर्ज करे ।''[५] कंपनी बहादुर और रेजिडेंसी पर भी उन्होंने अपनी पकड़ मजबूत की थी। बर्मा की लड़ाई में मौतमुद्दौला कंपनी से इस शर्त के साथ एक करोड़ रुपए मदद स्वरूप देते हैं कि ''कंपनी बहादुर मौतमुद्दौला की जान, माल और इज्जत की हिफाजत का जिम्मा लेती है।''[६] यहाँ पर उनकी दूरदर्शी वृत्ति का परिचय मिलता है, जिसके कारण उन्हें अंत में जीवदान मिलता है।

नवाब के पश्चात्य उनके एकलौते शहजादे नसीरूद्दौला को मौतमुद्दौला अपने हाथ की कठपुतली समझते थे। उन्होंने यह सोचा कि ''शहजादे अगर बादशाह भी बन जाते हैं, तो उनकी गिरफ्त में उसी तरह होंगे जैसे पिंजड़े में चिड़िया होती है।''[७] लेकिन जब शहजादे और बेगमों ने अपनी सारी सत्ता और जायदाद मौतमुद्दौला के हाथ में जाते देखा तो किसी तरह लाट साहब से कहर उन्हें कैद करवाते हैं। शहजादे उनकी सारी संपत्ति जब्त करके फाँसी पर चढ़ा देने का आदेश देते हैं। इस वक्तव मौतमुद्दौला लाट साहब को उस शर्त की याद दिलाते हैं, जो उन्होंने बर्मा की लड़ाई में कबूल की थी। अंत में फैसला यह हुआ कि मौतमुद्दौला कुछ जुर्माना भरकर लखनऊ छोड़कर चले जाए। जाते वक्त वह अपनी सारी संपत्ति ले जा सकते हैं। इस आदेश के अनुसार बीस साल तक एक तरह से अवध शासन के बादशाह ही बन बैठे और संपत्ति को ईश्वर माननेवाले मौतमुद्दौला के पास जाते वक्तन अमाप संपत्ति थी। छः महीने इसी सोच में निकल गए कि इतनी सारी संपत्ति को कहाँ और कैसे ले जाया जाए। सैकड़ों छकड़े, हजारों घोड़े, कँट और हाथियों के मदद से तथा हजारों लोगों, गाड़ियों, पालकियों और सारी

संपत्ति के साथ वह ननिहाल में बस गए। मौतमुद्दौला ने आते ही दस एकड़ क्षेत्र में स्थित सेठ रामनारायण की सफेद कोठी खरीदी और अपनी बेटी और दामाद के लिए महल बनवाकर अनेक जमीनें खरीदी। सैकड़ों सालों बाद कथानायक की अम्माँ के रिश्तेदार उसी. सफेद कोठी और महल में रहते हैं जो उन्हें विरासतस्वरूप मिल गए हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि आज महल और सफेद कोठी की दयनीयता देखने लायक बन गई है। दस एकड़ बाग एक गुंजान मोहल्ले में बदल चुका है तो सफेद कोठी और महल की विड़ंबना को देखकर पुरखों की आत्मा तड़प रही होगी द्य ऐयाशी के लिए पैसे खर्च करना उन लोगों की आदत बन गई है। पैसा न होता है तो जमीन का एक टुकड़ा या कोई कीमती चीज बेच डाली जाती है। इस तरह लेखक ने इस खानदान के इतिहास के साथ इतिहास की वर्तमान यातना को ब-खूबी के साथ चित्रित किया है द्य यही पर एक खानदान की कथा समाप्त हो जाती है।

प्रस्तुत उपन्यास में कथानायक के खानदान के गौरवशाली इतिहास का भी चित्रण हुआ है। कथानायक के खानदान के पहले वारिस सैयद इकरामुद्दीन मुगल बादशाह हुमायूँ के साथ ईरान से हिंदुस्तान आए थे। वह सूफी थे और जंग में जब तलवार चलाते थे तो लगता था कि सैकड़ों तलवारे चल रही हो अंत में हज की यात्रा करते वक्त उनकी मृत्यु हो जाती है। इकरामुद्दीन के बाद उनके बेटे अलीकुली खाँ और बहादुर खाँ ने दरबार में अपने लिए जगह बनाई थी। अलीकुली खाँ की दो पीढ़ियों ने चौन से जीवन व्यतीत किया, लेकिन उनके परपोते मुहम्मद तकी खाँ औरंगजेब के जमाने में दरबारी शिया और सुन्नीत दुश्मनी से तंग आकर दिल्ली से दूर जाकर अपनी बाकी जिंदगी बीता देते हैं। औरंगजेब के मरने के बाद दिल्लीत के हालात इतने बिगड़े की सिपाही तलवारें और ढालें बेचकर जीवनयापन करने लगे। रोजगार मिलना कठीन हो गया था। उस वक्तह सभी लोगों की तरह मुहम्मद तकी खाँ के बेटे जैनुल आब्दीन खाँ भी लखनऊ गए द्य वहाँ पर नवाब असिफुद्दौला का राज था। जैनुल आब्दीन खाँ की सादगीपूर्ण वृत्ती के कारण नवाब ने उन्हें अनेक पदों का अधिकारी बना दिया। जैनुल आब्दीन खाँ हलाल की कमाई के अलावा एक छदाम भी गवारा न करते थे और उन्होंने अपनी ब्याही औरत के अलावा किसी और के साथ कभी हमबिस्तरी नहीं की जैनुल आब्दीन खाँ के दस लड़के थे द्य उनके दो लड़के यानी सबसे बड़े अली खा और सबसे छोटे बेटे मुहम्मद खाँ ने अपने बाप की जायदाद को संभाला था। बाकी बेटे इधर-उधर चले गए थे।

बक्सर की लड़ाई में नवाब कंपनी से हार गया और उसके दंड़स्वरूप यह इलाका उसे कंपनी को देना पड़ा, लेकिन वहाँ के चकलेदार अली खाँ ही रहे। अली खाँ को कोई बेटा नहीं था। उन्होंने अपने छोटे बेटे मुहम्मद खाँ को गोद ले लिया। ''मुहम्मद खाँ सीधे-साधे आदमी थे और जिंदगी के दिन सुकून से काट देने पर विश्वास करते थे द्य! पर उस वक्तक मेरठ के बागी फौजियों ने दिल्लीथ के ऊपर कब्जा कर अंग्रेजों की हत्याएँ की। कानपुर और इलाहाबाद में भी बगावत हो गई लेकिन अंग्रेजों के सामने किसी का क्या कुछ चल सकता है ? अंग्रेजों की नियोजनबद्ध फौज ने नाना साहब पेशवा की फौज को हराकर इलांहाबाद के किले पर फिर से कब्जा किया और बागियों को फाँसी पर लटकाकर सारा शहर ध्वस्त कर दिया। मुहम्मद खाँ अपनी सारी जायदाद और किला छोड़कर जमुना के किनारे जहाँ उनकी जागीर का आखरी गाँव था वहाँ चले गए। चार महिने लौटने के बाद उन्होंने वापस आकर देखा कि "फिरंगियों ने किले को तोपों से उड़ा दिया है । किला पूरी तरह मिसमार हो चुका था। फिरंगी फौजे जो नहीं लूट सकी थी, वो गाँव देहात के लुटेरों ने लुट लिया था।''[६]

मुहम्मद खाँ ने ध्वस्त किले के जगह पर दो खपरैले और एक छप्पर डालकर जीवनयापन शुरू किया। मुहम्मद खाँ के बेटे अहमद हुसैन खाँ ऐयाश थे किंतु उनके बेटे रजी हुसैन खाँ बहुत समझदार थे। उन्होंने जायदाद अपने हाथ में आते ही उसका विकास किया। उन्हें तीन बेटे थे। उसमें से बड़े बेटे पागल थे, जिन्हें जायदाद के कारण जहर देकर मार दिया जाता है। दूसरे बेटे जत्तन मियाँ घुड़सवारी और पंजा लड़ाने के शौक में डूब गए थे तो उनके तीसरे बेटे अब्बा मियाँ जो कथानायक के दादाजी हैं, सोच-समझकर चलनेवाले आदमी थे। कुछ दिनों में वह इलाके के जाने-माने जमींदार रईसों में गिने जाते हैं। वह जमाना स्वाधीनता का नशा लिए हुए था, लेकिन जमींदार लोगों के लिए यह बहुत बड़ा सदमा था। स्वतंत्रता के बाद जमींदारी प्रथा खत्म होती है। अब्बा मियाँ के लिए जमींदारी ही सब कुछ थी ''वही सैकड़ों सालों से पुरखों की बची-खुची जायदाद थी। उसी से उनका सम्मान था। उसी से उनका नाम था।''[६]

जमींदारी चली जाने के बाद सारे नौकर-चाकर निकाले जाते हैं। जो घर कभी हर वक्त चहल-पहल से गूँज उठता था वही घर खंडहर जैसा बन जाता है। इस बदलाव को अब्बा मियाँ सहन न कर पाते हैं और उनकी

मृत्यु हो जाती हैद्य अब्बा मियाँ के मृत्यु के बाद सारी जिम्मेदारी अब्बा पर आती है। अब्बा ने जमीन कसने के लिए अनेक योजनाएँ पानी की तरह पैसा बहाकर मंजूर करवाई किंतु किसी का साथ न होने और सारे लोगों से धोखा खाने की मजबूरी में वह हर काम में असफल होते हैं ।

पढ़ाई पूरी होने के बाद कथानायक को बंबई में और उनके छोटे भाई को दिल्ली में नौकरी लगती है। वह बीवी-बच्चों के साथ शहरों में रहने लगते हैं। अब्बा की यह आकांक्षा है कि दोनों में से एक लड़का उनके पास रहे ताकि परंपरा का निर्वाह होगा और घर उजड़ने से बच जाएगा। लेकिन कथानायक और उनके भाई शहर की अनेक संभावनाओं से भरी जिंदगी छोड़कर घर आना पसंद नहीं करते द्य इसी बीच अम्माँ को कैंन्सर की बीमारी होती है द्य बीमारी का सही वक्तन पर इलाज न होने की वजह से अम्माँ की मृत्यु होती है। उस वक्तह अब्बा बिलकुल अकेले पड़ जाते हैं। उनकी अपने बेटों के पास रहने की इच्छा अंत तक अपूर्ण ही रहती है। अंत में पत्नी की मृत्यु के गम में डूबे, अपने बेटों से नाउम्मीद होकर और इतिहास की गौरवशाली परंपरा का निर्वाह करनेवाले अपने खानदान को छिन्न-विछिन्न डोते देखकर अब्बा की मृत्यु होती है। इस तरह से कथावस्तु है।

असग़र वज़ाहत के 'सात आसमान' उपन्यास में भारतीय मुसलमानों को अधिक ईमानदार व सभ्य बताया है। प्रस्तुत उपन्यास में दादी के मौत के बाद वसीयत के अनुसार अब्बां मियां लाश को दफनाने के लिए इराक ले जाते हैं। यह यात्रा अब्बांमियां के लिए दर्दनाक प्रतिभासित होती है जैसे,''अब्बां मियां जब वापिस आए थे तो अरबों के बारे में उनकी अच्छी राय न थी। वे उन्हें जाहिल, बुद्दू व लुटेरे किस्म के लोग कहते थे। वे ये भी बताते थे कि अरबों का ईमान उतना पक्का नहीं होता जितना हिन्दुस्तानी मुसलमानों का होता है।''[१०] इस कथन से स्पष्ट होता है कि भारतीय परिवेश में मुसलमानों को अपने वतन से प्रेम है परन्तु उन्हें दंगे फसाद से कुछ लेना देना नहीं।

वर्तमान माहौल में जीवन को आधुनिक बनाने के लिए नए-नए आविष्कार प्रदान किये गए हैं। भारतीय मुस्लिम समाज बाहरी परम्पराओं से परित्यक्त नहीं हो सका। मुस्लिम स्त्री को पुरुष, परिवार, समाज तथा धर्म का दवाब हमेशा रहता है। असगर वज़ाहत के 'सात आसमान' उपन्यास में मुस्लिम स्त्री की इसी स्थिति का प्रभावशाली अंकन किया गया है।

इस उपन्यास के रजी हुसैन खां के तीन बच्चों में से बड़े बच्चे जतन मियां की शादी अच्छे खानदान में धोखे से करवा दी जाती है। इस स्थिति के सम्बन्ध में लेखक स्वयं स्पष्ट करते हैं-''ब्याहकर जो बहू आई उसे जल्दी ही पता चल गया कि उसका मियां दीवाना है।बहू ने उफ तक न की। न तो उसने यह बात अपने घर वालों को बताई न अपने ससुराल वाला पर कोई इल्जाम धरा।''[११] इस उपन्यास की बहू का व्यवहार मुस्लिम समाज के पारम्परिक प्रभाव व दबाव का ही प्रतिफल है।

धार्मिक कट्टरता के संस्कार बचपन से ही मिलते हैं और धर्म सम्बन्धी मान्यताएं उनके समक्ष अंतिम हो जाती हैं। इस उपन्यास के जतन मियां जब चौथी कक्षा में थे तब से उनके मन में मुस्लिम धर्म विरोधी लोगों के बारे में क्रोध का भाव था।इस प्रवृति का चित्रण असगर वज़ाहत जी ने इस प्रकार किया है, ''जतन मियां जब चौथी कलास में थे तो किसी ईसाई मास्टर की क्लास में रसूले खुदा की शान में कोई ऐसी वैसी बात कह दी। इसके जवाब में जतन मियां ने उसे क्लास के अन्दर ही उठाकर पटक दिया और उसका एक हाथ भी तोड़ दिया।''[१२] जतन मियां के बचपन के व्यवहार में धार्मिक वैचारिकता की अपेक्षा धार्मिक भावात्मकता का भाव परिलक्षित होता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति ने देश के विभाजन को एक ऐसा उपहार दिया जिसके परिणामस्वरूप भारत के मुसलमान पाकिस्तान जरूर गये परन्तु वे न तो पाकिस्तान को जानते थे। अपितु वे पाकिस्तान जाने से इन्कार भी करते रहे। असगर वज़ाहत के 'सात आसमान' उपन्यास में अब्बां मियाँ के माध्यम से सही सच उद्घाटित होता है, ''अब्बां मियाँ ने एक बार किसी ने कहा कि आप पाकिस्तान क्यों नहीं चले जाते तो उन्होंने उनसे पूछा 'जनाब, ये पाकिस्तान है किस चिड़िया का नाम।''[१३] इस कथन से स्पष्ट होता है कि आजादी से पूर्व आम मुसलमानों को पाकिस्तान बनाने का आग्रह नहीं था।

निष्कर्ष :

असग़र वज़ाहत के 'सात आसमान' उपन्यास में विभिन्न वर्ग, समाज, विषय, विचार चिन्तन व स्थिति को केन्द्र बिन्दु में रखकर विमर्शमूलक वैचारिकता का उद्घाटन किया गया है। असगर वज़ाहत जी ने 'सात आसमान'

उपन्यास में विघटन विमर्श, सत्ता विमर्श, शिक्षा विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श की अवधारणा ने विभिन्न पहलुओं को रेखांकित किया है जिससे स्पष्ट होता है कि इस उपन्यास में विमर्शमूलक मीमांसा की संकल्पना सहज रूप में मिलती है। निश्चय ही 'सात आसमान' हिन्दी औपन्यासिक साहित्य के इतिहास में असगर वज़ाहत का चिंतन एवं चुनौती मय कदम है। जिसमें बाह्यजगत् के साथ-साथ अन्तर्जगत् की कथा प्रतिबिम्बित होती है जिसके कारण असगर वज़ाहत ने लोकप्रियता अर्जित की है। उनके उपन्यास में अल्पसंख्यक विमर्शमूलक वैचारिक मीमांसा से वैयक्तिक, सामाजिक, वैश्विक उन्नयन की दिशाएं स्पष्ट होकर समकालीन समाजों को पहचान कर संवेदनशील पाठक सामाजिक समस्याओं के हल प्राप्त करके जीवन विकास की दिशाओं के माध्यम से उत्कर्ष का रास्ता खोज सकता है।

संदर्भ

१. रामचंद्र वर्मा, मानक हिन्दी कोश, पृ.७७
२. नवल जी, नालन्दा विशाल शब्द सागर, पृ.१२७६
३. सत्य प्रकाश, बलभद्र प्रकाश, मानक हिन्दी अंग्रेजी कोश, पृ.३५५
४. असग़र वज़ाहत, सात आसमान, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण १९९६, पृ. २
५. वही पृ. ३६
६. वही पृ. ५७
७. वही पृ. ५५
८. वही पृ. ५९
९. वही पृ. ६२
१०. वही पृ. २०
११. वही पृ. ११३
१२. वही पृ. १७६
१३. वही पृ. ३९

मोहन राकेश की कहानियों मे दाम्पत्य जीवन

प्रा.डॉ. आहेर संगिता एकनाथराव
महिला महाविद्यालय, गेवराई |

आधुनिक काल की हिन्दी कहानी ने आम आदमी के जीवन से जुड़ने की बात कही है | उसका जीवन-संघर्ष, सफलता, असफलता यथार्थता से अभिव्यक्त हुआ है | अनेकों विषयों को लेकर यह कहानी आगे बढ़ती है | आधुनिक काल की समस्याएँ, यथार्थवाद को वह बेझिझक प्रस्तुत कर समाज व्यवस्था में आये परिवर्तन को स्पष्ट करती है | अत: हिन्दी कहानी साहित्य अत्यन्त वृहत और विशालकाय बन पड़ा है | समकालीन कहानीकारों ने स्त्री-पुरूष के पारम्पारिक सम्बन्धों में होनेवाले परिवर्तनों को विशाल फलक दिया है | परम्परागत स्त्री-पुरूषों के सम्बन्धों में आये परिवर्तन के साथ-साथ नये सम्बन्धों के बनने की प्रक्रिया और स्थापना को कहानी का आधार बनाया है |

मोहन राकेश बहुआयामी प्रतिभा के धनी थे | साहित्य की विविध विधाओं में उनका बहुमोल योगदान रहा है | नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी, जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र, निबन्ध और अनुवाद लेखन में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान रहा है | लगभग सभी विधाओं पर राकेश लिखा है और सफलता भी हासिल की है | गद्य की विविध विधाओ को लेकर राकेश ने श्रेष्ठ् कृतित्व का सृजन किया है |

मोहन राकेश एक सजग, सचेत और प्रतिभासंपन्न कहानीकार के रूप में हिन्दी जगत में प्रसिध्द है | हिन्दी कहानी साहित्य को उन्होंने एक निश्चित दिशा और दशा दी है | एक अन्वेषक कथाकार है मोहन राकेश | कहानी साहित्य को एक गौरवपूर्ण स्थान उन्होंने दिया है | आधुनिक जीवनबोध और विडंबना के साथ दाम्पत्य जीवन के सम्बधों की तलाश उनकी कहानियों में सर्वत्र दिखाई देती है | जीवन के हर अणू-रेणू में वे कहानी के बीज खोजते है और उसकी अपूर्णता एवं संपूर्णता के अनेकों प्रसंगों को अपने कहानीनुमा गमले में सजाकर पूर्णता प्रदान करते हैं | खुद वे कहते है, "हमारे चारों ओर जीवन का हर अणु इन्हीं प्रभावों से चलित हो रहा है | हम उन प्रभावों को पहचान सके तो हर अणु की अपनी एक हानी है |"[1]

मोहन राकेश की कहानियों में दाम्पत्य जीवन सुखी और खुशहाल न होकर तणावग्रस्त, संत्रासपूर्ण, अकेलेपन की पीड़ा एवं कुण्ठा तथा अहं से ग्रस्त दिखाई देता है | पति-पत्नी का वैवाहिक जीवन आपसी तालमेल, समझौता और प्रेम के अभाव में गोते खाता हुआ भटकन और अधूरेपन से खोखला बना हुआ है | दाम्पत्य जीवन की गहरी तलाश उनकी कहानियों की विशेषता है | पति-पत्नी के बीच अनमेल सम्बन्ध उनके रिश्ते को पनपने नहीं देता और इसी कारणवश घुटनभरी जिन्दगी से दाम्पत्य- जीवन नीरस बन जाता है |

'अपरिचित' कहानी की नायिका नलिनी अपने पति को इंग्लैण्ड के लिए जहाज से रवाना करके अपने घर लौट रही है | यात्रा के दौरान सहयात्री नायक से वह खुलकर बातचीत करती है | एक अपरिचित सहयात्री से परिचित होने का खुलापन अपने आप में महसूस करती है और अपनी व्यथा कह देती है | अपरिचित के सामने अभिव्यक्त होना, खुलकर मन की बात करना यह बदलते दाम्पत्य जीवन की तलाश लगती है | क्योंकि पति-पत्नी परिचित होते हुए भी अपरिचित रह जाते है और अपरिचित पहले से परिचित लगता है | भिन्न विचार, पसंद-नापंसद एवं अहं के कारण दूरियाँ बढ़ती है | नलिनी के पति दीशी को आधुनिक जीवन और कृत्रिमता से लगाव है

तो नलिनी को पुराने संस्कार, सरल जीवन एवं नैसर्गिक सौंदर्य भाता है | इस रूची भिन्नता के कारण दोनों में दूरियाँ पैदा होती है | "मेरी मन होता है कि चाँदनी रात में खेतों में घूमूँ या नदी में पैर डालकर घण्टों बैठी रहूँ, मगर ये कहते हैं कि ये सब आइडल मन की वृत्तियाँ हैं | इन्हें क्लब, संगीत, सभाएँ और डिनर-पार्टियाँ अच्छी लगती हैं | मैं वहाँ जाती हूँ तो मेरा दम घुटने लगता है | मुझे वहाँ जरा अपनापन महसूस नहीं होता |"[2]

नलिनी अपनी सारी व्यथाओं को झेलकर दीशी के साथ समझोता करने का प्रयास करती है परन्तु उसके अर्न्तभावों को दीशी समझ नहीं पाता हैं | उसे क्लब, डिनर पार्टियाँ भाती है, वह इन सबसे लुत्फ् उठाना चाहता है और नलिनी का इन सबसे दम घुटने लगता है |

दाम्पत्य जीवन की नीरसता और कटुता ही इस कहानी में अभिव्यक्त होती है | रूचि-भिन्नता के कारण सम्बन्धों में अलगाव पैदा होता है | पति-पत्नी दोनों के व्यक्तित्व में टकराव होता है, एक-दुसरे की कमियाँ और खामियाँ ढूँढते रहने से अपनापन और सम्बन्धों में भावार्थ ही कहीं गुम होता-सा नजर आता है |

राकेश की कहानी दाम्पत्य जीवन की तलाश करती हुई भिन्न-भिन्न स्तर पर प्रताड़ित होते पात्रों की जटिलता को अभिव्यक्त करती है | दाम्पत्य जीवन के संत्रास एवं पीड़ा को झेलने के लिए कभी पुरूष विवश करता है तो कभी स्त्री | 'एक और जिन्दगी' भी राकेश की वैवाहिक जीवन में अहं के टकराव की और दाम्पत्य जीवन में बिखराव की कहानी है | भलेही यहाँ अहं का भाव पत्नी में अधिक पनपता है, परन्तु बिखराव तो दोनों की जिन्दगी में आता है | रथ के पहियों का विरूध्द दिशा में दौड़ना आखिर रथ को रोक ही लेता है |

'एक और जिन्दगी' कहानी में दाम्पत्य जीवन में अहंभाव ही तणाव का कारण बनता है | यही टकराव प्रकाश और बीना को अलग कर देता है | यह कहानी दाम्पत्य जीवन के सम्बन्धों का सूक्ष्म विवेचन करती है | यह असफल दाम्पत्य जीवन की कहानी है | बीना प्रकाश के बराबर पढ़ी-लिखी थी, वह अकेली हर चीज का सामना कर सकती है यह भाव प्रकाश के पत्नी के रूप में ऐसी नारी की चाह जो उसे पूरी तरह से सँभाल सके तहस-नहस कर देता है | प्रकाश और बीना को 'पलाश' नामक एक लड़का भी है परन्तू वह भी इन दोनों के बीच सेतू नहीं बन पाता है | दोनों में तलाक हो जाता है | बच्चे के जन्म दिन पर मामूलीसी बात को लेकर दरार पड़ जाती है जो बढ़ती ही जाती है | दोनों अपने-अपने अधिकार चाहते है, प्रकाश पति और पिता का अधिकार चाहता है तो बीना अपना अहं, स्वाभिमान और आत्मनिर्भरता सँभाले हुए है, समर्पण कोई नहीं चाहता हैं | 'मैं' की वजह से ही इनका दाम्पत्य् जीवन ध्वस्त होता है | बीना को लगता है उसकी मर्जी से सबकुछ होना चाहिए, वह कहती है, आपके पास पिता का दिल होता तो आप पार्टी में न आ जाते? यह तो एक आकस्मिक घटना ही है कि आप इसके पिता है |[3]

प्रकाश नये सिरे से अपनी जिन्दगी शुरू करना चाहता है, बीते दिनों की दु:ख की रेखा को मिटाकर खुशहाल जीवन बिताना चाहता है, क्योंकि वह सोचता है, "आखिर आदमी के पास एक ही तो जिन्दगी होती है – प्रयोग के लिए भी और जीने के लिए भी | तो क्यों आदमी एक प्रयोग की असफलता को जिन्दगी की असफलता मान ले?[4]

प्रकाश की यही चाह उसे एक और जिन्दगी की ओर ले जाती है | बीना और प्रकाश में तलाक हो जाने के बाद समझौते की सारी हदें समाप्त हो जाती है, दाम्पत्य की उत्कट चाह से अपने दोस्त की बहन निर्मला से प्रकाश शादी कर लेता है | परन्तु उसकी यह दूसरी जिन्दगी भी असफल साबित होती है, क्योंकि निर्मला का मानसिक संतुलन ठीक नहीं है, वह विक्षिप्त स्त्री थी | प्रकाश को बेहद अफसोस होता है, अपने ऊपर ही उसे गुस्सा आता है | इस दुसरे प्रयोग की असफलता के कारण वह छुट्टियाँ मनाने पहाड़ पर जाता है, जहाँ संयोगवश उसे बीना और पलाश मिलते है और फिर एक बार बीते जीवन की यादें ताजा होती है | पलाश मिलते है और फिर एक बार बीते

जीवन की यादें ताजा होती है | पलाश अपने पिता को पहचान लेता है और खून का रिश्ता जुड़ने की कोशिश करता है | परन्तु इन दानों में अहं इतना चरम पर पहुँचा था की तलाक के समय में भी जानते हुए भी अनजान बने रहते पलाश के सम्बन्ध् में | "कोर्ट में कागज पर हस्ताक्षर करते समय छत के पंखे से टकराकर एक चिड़िया का बच्चा नीचे आ गिरा, तब हम पति-पत्नी दोनों ने कागज पर हस्ताक्षर कर दिये थे | बच्चा पलाश उस समय कोर्ट के अहाते में कौओं के पीछे भागता हुआ किलकारियाँ भर रहा था |[5]

दाम्पत्य् जीवन को प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त किया है | पति-पत्नी के सम्बन्ध् विच्छेद का दु:ख बेवजह बच्चे को झेलना पड़ता है | पति-पत्नी के बीच **द्वन्द्व** के कारण निर्माण समस्या को बच्चे को भी झेलना पड़ता है | नये सिरे से जिन्दगी शुरू करने की कोशिश भी जब असफल होती है तब प्रकाश अकेलापन महसूस करता है |

अकेलेपन की यह त्रासदी उसे न जीने देती है न मरने देती है | वह फिर एकबार बीना और प्रकाश की और लौटना चाहता है, परन्तु बीना का अहं उसे यह करने नहीं देता है | प्रकाश बीना और निर्मला के बीच घिसा जा रहा है, और इससे उत्पन्न पीड़ा, कटुता और घुटन उसे तोड़कर रख देती है | कटु दाम्पत्य जीवन में एक और जिन्दगी का प्रयोग भी असफल होता है, कहानी का यह शीर्षक बिल्कुल सार्थक लगता है |

दाम्पत्य जीवन के बिगड़ते सम्बन्धों पर आधारित 'गुंझल' कहानी भी मानसिक उलझन और **द्वन्द्व** को उद्घाटित करती है | दाम्पत्य जीवन में आये कटुता को प्रतीकात्मक रूप में विविध स्तरों पर कहानी अभिव्यक्त करती है | 'अपरिचित' कहानी में रूची भिन्नता से उत्पन्न नलिनी का अकेलापन, एक और जिन्दगी में 'अहं' भाव की अधिकता से सम्बन्ध-विच्छेद से दाम्पत्य जीवन बिगड़ता और बिखरता है तो 'गुंझल' में किसी तीसरे के वजह से दाम्पत्य –जीवन ध्वस्त होता है | पति-पत्नी के तनावपूर्ण सम्बन्धों को पूरे परिवेश के साथ राकेशधजी ने अभिव्यक्त किया है |

'गुंझल' राकेश की एक महत्वपूर्ण दाम्पत्य –जीवन पर आधारित कहानी है | दाम्पत्य जीवन में आये, अकेलेपन, नीरसता, घुटन, बिखराव का सूक्ष्म वर्णन इस कहानी में राकेश ने किया है | यह बहुत बड़ा कड़वा सच है कि एक –दूसरे को न समझ् पाने के कारण संम्बन्ध टूटते है | पति-पत्नी के साथ रहते हुए भी अलगाव, उदासी और अकेलेपन की पीड़ा का अनुभव विवाह संस्था की नींव को हिला रहा है | कहानी की नायिका गुंझल और नायक चन्द्र के जीवन में जड़ता आयी है, सम्बन्धों में ठहराव आया है जो दिन-ब-दिन पुख्ता बन रहा है | पति-पत्नी दोनों यात्रा कर रहे है, साथ है पर साथ होकर भी लगता है इनके मन कहीं दूर जा रहे है | पूरे दिन बस में यात्रा करते हुए केवल औपचारिक वाक्यों का आदान-प्रदान दोनों में होता है | मानों कोई अपरिचित सहयात्री हो | चन्दन और कुन्तल दाम्पत्य का यह सफर घुटनभरा, उबाऊ और निरर्थक लगता है | दोनों ऐसे जड़वत है कोई भी आगे नहीं आना चाहता है, समझौता करना नहीं चाहता है |

"वे दोनों बस से उतरकर बिजली के खम्भे के पास खड़े हो गये और कुछ देर तक बिना बाते किये, बिना एक दूसरे की तरफ देखे, इस तरह खड़े रहे, जैसे वे पति-पत्नी न होकर दो ऐसे यात्री हो, जिनका अभी तक आपस में परिचय न हुआ है |"[6] (राकेश –वारिस-गुंझल-178)

'गुंझल' कहानी निराशा और अवसाद की कहानी है | इसमें जीवन संघर्ष पराजित हुए दंपत्ति कुन्तल और चंदन है | पराजित मानसिकता को लेकर जीने की विवशता से उनका अकेलापन बढ़ता जाता है | एक अजीब उलझन है दोनों के रिश्ते में और इसी उलझन में जिन्दगी हाथों से फिसलती जा रही थी | दोनों बेबस थे और समझ नहीं पा रहे थे हल कैसे निकाले | "मन की वह जड़ता, जड़ता थी या जड़ता जैसी अस्थिरता | उस जड़ता या अस्थिरता का अनुभव उसे पहले भी कितनी ही बार हुआ था, जब कि विचारों के छोटे-छोटे खंड आपस में उलझ

जाते उन्हें सुलझाकर देखने के प्रयत्न में हर चीज गहरे गुंझल में उलझने लगती थी | परन्तु उस गुंझल में एक चीज फिर स्पष्ट रहती थी एक दर्द या एक प्रश्न – कि वह सब ऐसे क्यों था?..... उस गुंझल में ही जिन्दगी हाथों से फिसलती जा रही थी और वह उस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कर पा रहा था | यह सब ऐसे क्यों था?[7]

दोनों के बीच यह गुत्थी उलझती जाती है, ना उसका कोई हल मिलता है न ही प्रश्न मिटता है | आपसी सम्बन्धों का हल निकालने के लिए किसी तीसरे व्यक्ति की मदत कुन्तल नहीं चाहती है इसीलिए वह चन्दन से स्पष्ट कहती है, "हमें किसी के सामने कोई बात नहीं है | ...हम लोग बच्चे तो है नहीं जो किसी तीसरे आदमी के साथ बैठकर बात करेंगे |"[8] (गुंझल-183)

कुन्तल विवश है चन्दन के साथ जीवन बिताने के लिए क्योंकि उसका अन्तरिक **द्वन्द्व** उसे छटपटाहट व्यक्त करता है | शादी के पश्चात एक रिक्तता उनके बीच आती है जो समाप्त ही नहीं होती | कुन्तल अपने आपको चाहकर भी इन हालातों से जोड़ नहीं पाती है | जो उत्साह, उमंग और आशा उसे शादी के पहले थी वह आज समाप्त हुई है | बस, जीवन का बोझ वह ढो रही है | कहानी में चन्द्र और कुन्तल मानसिक **द्वन्द्व** से गुजरते है | बीते दिनों की उमंग और आज की घिसी-पीटी जिन्दगी की वह तुलना करती है और आत्मपीड़ा एवं ग्लानि में छटपटाती है, "कहाँ आज की यह घिसटती-छटपटाती जिन्दगी | क्या उसके अर्न्त**द्वन्द्व** को उसके अतिरिक्त और कोई समझ सकता था?[9] कुन्तल की तरह ही चन्दन भी निराश था | पूरी कहानी में कुन्तल की व्यथा, पीड़ा और संवेदना को लेखक ने मार्मिकता व्यक्त किया है | दाम्पत्य जीवन को समाप्त करना इतना सरल नहीं होता है, और यही विवशता दोनों को आपसी सम्बन्धों का बोझ ढोने में मजबूर करती है |

निष्कर्षत: हम कह सकते है कि राकेश की दाम्पत्य जीवन की कहानियों में बिगड़ते सम्बन्धों, अर्न्त **द्वन्द्व**, अकेलापन, अहं भाव त्रासदी और पीड़ा का वर्णन हुआ है | दाम्पत्य जीवन की आस्था, विश्वास और आशा के अभाव के कारण कुण्ठाग्रस्त जीवन बोझ बन जाता है और इस उलझन का कोई हल नहीं है | राकेश की कहानियों में सुखी गृहस्थी नहीं है, बल्कि दाम्पत्य जीवन के सम्बन्धों की तलाश है | उनकी कहानियों में दाम्पत्य जीवन का बड़ा ही सूक्ष्म, मार्मिक और यथार्थ चित्रण हुआ है |

संदर्भ सूची :

1) मोहन राकेश-साहित्यिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि 05
2) वही – (अपरिचित) 50
3) वही – (वारिस) एक और जिन्दगी 17
4) वही- वही 18
5) वही- वही 18
6) वही- (गुंझल) 178
7) वही – वही 181
8) वही – वही 183
9) वही – वही 184

इक्कीसवीं सदी की सृजनात्मक हिंदी कविता में स्त्री चिंतन

डॉ. सुधीर गणेशराव वाघ

प्राध्यापक हिन्दी विभागाध्यक्ष शिवाजी महाविद्यालय, हिंगोली. जिला हिंगोली. महाराष्ट्र

इक्कीसवीं सदी अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण मानव जीवन के उच्चतम शिखरों तक पंहुची है जहां मनुष्य की कल्पना को पंहुचने में भी अधिक समय लग जाता है। सामाजिक जीवन के विविध आयामो में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन देणे का श्रेय इस सदी दिया जा सकता है । आज इस इक्कीसवीं सदी में जहा आम आदमी के सामने अनेक प्रकार की विसंगतिया वहीं समस्या के रुप में अनेक प्रश्न भी उठ रह है। वर्तमान समय में दलित, आदिवासी और स्त्री विमर्श जैसे महत्वपूर्ण मुद्दे उपस्थित हो रहे है। स्त्री विमर्श का प्रश्न इसलिए भी साहित्य का अहंम प्रश्न बन जाता है कि विश्व की आधी अबादी आदिकाल लेकर आजतक पुरूष वर्चस्व के अर्तगत शोषण का शिकार हुई है। समाज मे सभी वर्ग की स्त्रीया पुरूष की अहंमवादी मानसिकता का शिकार हो रही है जिसके कारण पुरुष के समान कभी भी स्त्री को सामाजिक आधिकार प्राप्त नही हुए। आज के दौर में स्त्रि विमर्श का मुद्दा साहित्य की मुख्य धारा में प्रवाहीत हो रहा है। किंतू आज भी इस देश में स्त्री अबादी एक बहुत बडा हिस्सा पुरुष वर्ग की अधीनता के अर्तगत जीवन निर्वाह कर रही है । वर्तमान सदी में स्त्री सामाजिक जीवन मे पुरूष के साथ हर क्षेत्र मे कंदे से कंदा मिलाकार अपना हस्तक्षेप दर्ज कर रही है। भले ही यह प्रतिशत अभि बहूत कम है लेकीन कुछ क्षेत्र ऐसे है जहा स्त्री ने अपनी पहचान पुरूष से अधिक कराई है। इस वर्तमान सदी की स्त्री लेखिका अपने युग के संस्कृति का वह इतिहास घढने जा रही है जहा अधि अबादी की उपेक्षा संभव नही होगी । स्त्री पुरूष संबंधो की बराबरी तथा सहभागिता ही पक्षधर होने साथ वह पुरूष प्रधान संस्कृति की अलोचना करती हुई एक ऐसै समाज के निर्माण का स्वप्न देख रही है जहॉ लिंग के आधारपर कोई भेद भाव नहीं होगा।

हिंदी काव्य का विकास आदिकाल से आरंभ होता है | आदिकाल में वीरकाव्य की अधिक प्रधानता रही है साथ ही काव्य इस काल में लिखा गया है | आदिकाल के उपरांत भक्तिकाल का आरंभ हुआ जिसमें कबीर, सूर, जायसी और तुलसी जी ने समाज को अपने काव्य के माध्यम से उपदेश देने का सफल कार्य किया है | रीतिकाल में श्रृंगारिकता एवं आश्रयदाताओं की प्रशंसा परक काव्य ही विपुल मात्रा में लिखा गया | आधुनिक काल में भारतेंदु युग में राष्ट्रीय भावना एवं देशभक्ति पर अधिक बल दिया गया | व्दिवेदी युग में इतिवृत्तातमकता एवं उपदेशात्मकता तो छायावाद में प्रेम, प्रकृति, सौंदर्यभावना, विराहानुभूति, रहस्यवादी भावना को प्रधानता देते हुए नारी को श्रध्दा के पात्र माना है | हालावाद में तज्जन बेहोशी, प्रगतिवादी में पूँजीपतियों का विरोध, प्रयोगवाद में प्रयोग की नवीनता और आज के वर्तमान संदर्भ में गुजरनेवाली समकालीन कविता है |

इक्कीसवीं सदी क्रांति और प्रगति की सदी है। इसी क्रांति के फलस्वरूप समाज प्रगति की और अग्रसर हो रह है। साहित्य समाज का दर्पन है तो साहित्य इस क्रांति से कैसे अछूता रहा सकता है? समाज में जो परिवर्तन आए उसे साहित्यकारों ने अपने सृजन का हिस्सा बनाया। एक समय ऐसा आया जब हाशिए पर रही स्त्री की मुक्ति का मुद्दा उभरकर आया क्योंकि सभी जानते है कि महिलाओं को सभी अधिकार सिर्फ संविधान द्वारा लिखित रूप में प्राप्त हुए पर वास्तविकता उसकी पीडा, तडप, संत्रास, रोष और उनकी स्थिति को उनसे बेहतर कौन समझ सकता है? 'जिसका दर्द वही जाने' के अनुसार साहित्य-जगत में महिलाओं के दुष्कर जीवन और उनके अधिकारों

की चर्चा महिल साहत्यकारों द्वारा जोरों से शुरू हुई। लगभग सभी श्रेष्ठ कवित्रिओं ने इस धारा को आगे बढाने का प्रयास किया और उन्हे काफी हद तक सफलता मिली है।

इक्कसवीं सदी की महिला कवित्रियों ने समस्त विषयों को छुआ किंतु स्त्री-संवेदना और स्त्री-जीवन उनके सृजन के केंद्र में रहा । साहित्य मानवीय संवेदना के चिंतन की उत्तम अभिव्यक्ति है। स्त्री तो संवदना का मूर्त रूप है अर्थात कोई भी साहित्य स्त्री बिना पूर्ण नहीं है। इसलिए स्त्री और साहत्य का संबंध अखंड है। स्त्री ने सामाजिक, नैतिक एंव सांस्कृतिक रूप में भी साहित्य को अपूर्ण योगदान प्रदान किया है। आधुनिककालीन साहित्य में स्त्री को लेकर इतना कुछ सृजन किया गया कि स्त्री- विमर्श का दौर ही प्रारंभ हो गया। जहाँ अन्य श्रेत्रों की तरह साहित्य में भी पुरूषों का वर्चस्व था, वहाँ महिलाओं ने बडी तेजी से साहत्य में इस तरह से कदम रखा कि वह छा ही गयी। इन महिला साहित्यकारों ने स्त्री जीवन के विविध पहलुओं, परिस्थितिओं को पूरी जिम्मेदारी के साथ उकेरा। कृष्णा खत्री के अनुसार "सबसे बडी बात, भोगनेवाली भी स्त्री और अभिव्यक्ति करनेवाली भी स्त्री। यह भोगा सच उपभोगता की जबानी अभिव्यक्त हुआ तो साहित्य में नएपन का, ताजगी का और प्रखरता का पदार्पण हुआ और एक जीती जागती क्रांति ने जन्म ले लिया। "[1] इक्कीसवीं सदी की बदलती राष्ट्रीय, सामाजिक व आर्थक स्थितियों तथा शिक्षा के प्रचार-प्रसार ने स्त्री जीवन को अत्याधिक प्रभावित किया है। इसलिए स्त्री-विमर्श चिंतन ने साहत्य में विशेष स्थान प्राप्त किया है।

भारतीय समाज में जहाँ भी दमन है, शोषण है, अत्याचार है स्त्री साहित्य उसके विरोध में खडा हुआ। अब दो तरीके से स्त्रीवादी साहित्य सजृन किया जा रहा है- एक सामाजिक शोषण के खिलाफ और दुसरा देह-भोग के खिलाफ। "आज का सृजन नारीवादी सृजन नही, नारी केंद्रित सवालों को बडे आशयों में लानेवाला नारी की मुक्ति को साधारण जन की सार्वदेशिक मुक्ति से जोडनेवाला, पर बेहतर मानवीय और तर्कसंगत सामाजिक संरचना में नारी को उसकी सही हैसयित के साथ प्रतिष्ठा देने की कोशिश में लगा नारी अस्मिता का प्रामाणिक सृजन है"।[2] इतना निश्चित है कि इक्कीसवीं सदी के महिला साहित्यकारों ने अपने समय और सामाज की नब्ज को गहरी संदवेदना के साथ पकडा है।

आदिकाल, मध्यकाल एवं आधुनिककाल के कवि- कवित्रियों के स्त्री-चिंतन से प्रेरित होकर इक्कीसवीं सदी के कवि अपनी सशक्त लेखनी चला रहे हैं। सविता सिंह, रेखा मैत्र, आशा प्रभात, सुनीता जोशी, सुधा काशिव, निर्मला गर्ग, सुशिला टाकभोरे निर्मला पुतुल, मधु गुप्ता, रमणिका गुप्ता आदि कवयित्रियों ने स्त्री काव्य सृजन की अलग पहचान बनायी है। इनका लेखन आक्रमक, तीखा और पितृक समाज की कडी आलोचना से परिपूर्ण है। यह परिवर्तन इक्कीसवी सदी में सर्वाधिक दृष्टिगत हुआ।

सदियों से आज तक पुरूष की स्त्री की ओर देखने की दृष्टि नहीं बदली। इक्कीसबी सदी की हिंदी कवयित्री इस पुरूषी मनासिकता का प्रखर विरोध करती है। आज की लडकी पढ-लिखकर आपनी योग्यता सिध्द करना चाहती है। अपना खुद का अस्तित्व बनाने की जद्दोजहद करनेवाली लडकी की विडंबना यह है कि उसमें कितनी भी काबिलियत हो लेकीन हर बार उसकी देह आड आती है। उसकी देह ही उसकी पहचान मनी जा रही है। वह जहाँ भी जाती है पुरूष की वासनालोलुप आँखे उस पर फिसलती रहती है जिससे उसे उसका वजूद बचाना मुश्किल हो गया है। आशा प्रभात 'लडकी, देह और खयाल' कविता में एक लडकी की संवदनशील मनोव्यथा को चित्रित करते हुए लिखती हैं-

"क्यो उपस्थित हो जाती है
उसी देह हर जगह

जबकि दिखाना चाहती है वह वहाँ
अपना हुनर, अपनी काबिलियत
लेकिन, हमेशा आडे आ जाती है
उसकी देह.....
सब गौण हो जाता है
इस कमब्ख्त देह के आगे.....
सोचती है लडकी
किस अदृश्य नकाब के पीछे
छिपाए वह इस देह को। "[3]

स्त्री को समाज में हमेशा से शोषित रहना पडा है। विषमताओं के साथ जीवन जीना जैसे उसकी नियति बन गई है। पारिवारिक और सामाजिक धरातल पर अनेक समस्याओं सें घिरी हुई स्त्री को पुरूष ने बंधनों की शृंखला में इतनी मजबूती से जकड दिया है कि उससे मुक्त होने की छटपटाहट निरंतर शुरू है। स्त्री जीवन के सामाजिक विषमता से इक्कीसवीं सदी की कविता प्रेरित है। स्त्री की इस अवस्था से हिंदी कवयित्रियाँ चिंतित खिादई देती है। शोषित स्त्री के विविध रूपों का चित्रण करते हुए उसके जिंदा रहने की मजबुरी को दर्ज करती हुई सुनीता जोशी ने सृजन किया है-

"एक औरत जो सवाल-जवाब , स्वीकृति-अस्वीकृति की,
बेहयायी पर होंढ रखकर सीख लेती है गुलाबी होना,
दुसरो के भीतर पैटकर अपने वजूद को तलाशती
हमारी जिद्दी जरूरतों को पूरा करने के लिए
अक्सर अनिच्छा से हमारे-तुम्हारे बीच जिंदा रहती है। "[4]

मधु गुप्ता द्वरा कृत 'यथार्थ का धरातल' काव्य संग्रह में नारी संवेदना तथा सामाजिक सरोकारों की तीक्ष्णता उद्घाटित हुई है। उनकी 'नारी उडान' कविता में संघर्षशील भारतीय स्त्री की जीवंत छवि चित्रित हुई है। स्त्री को जीवनभर संघर्ष करना पडता है। आधुनिकता के दौर में स्त्री ने प्रत्येक क्षेत्र में अपना वर्चस्व स्थापित किया है। चेतित हो उठी स्त्री प्रबल विरोधों के बावजूद अब रूकना नहीं चाहती। चाँद पर परचम लहराने की कामना खनेवाली उसकी उडान को वाणी देते हुए मधु गुप्ता की सृजनात्मकता यह है-

"चल पडी है नारी अब न रूकेगी,
आज उठी है नारी, अब न झ्ुकेगी,
चाँद पर पहुँचकर परचम लहराया,
अपना वर्चस्व सबको बताया,
कौन कहता है नारी, पीछे है नर से?
वो आगे हैा हर परचम से।"[5]

कवियित्री निर्मला गर्ग स्त्री को दुय्यम दर्जा देनेवाली मानसिकता का विरोध करती है। सदियों से शाशिए पर रही स्त्री को बराबर का दर्जा देने की बात करते हुए वे लिखती है-

"स्त्रियों में बराबर दर्जा दूँ,
यानी ठीक अपनी ही तरह समझूँ,

यह कितना मुश्किल है, ऐसे में कैसे कर पाऊंगा,
मुझमें ढेर सी दया है उनके लिए,
करूणा है अगाध, उसका क्या करुँ।"[6]

वैश्वीकरण और बाजारीकरण के माहौल ने सारे विश्व को भौतिकवाद की चपेट में लाकर खडा कर दिया है। मानवीय भावनाएँ जैसे लुप्त होने लगी है । अपना देश, आपनी मिट्टी की सुगंध अब किसी को आकृष्ट नही करती । किंतु भारत की भूमी से दूर अमेरिका में रहनेवाली भारतीय नारी के कोमल ह्रदय पटल पर भारत की गलियों की किलकारियाँ एवं देशप्रेम की सुगंध लहराती है। अर्चना पंडा 'अमेरिका' कविता के माध्यम से अपने देश के प्रति असक्ति जताते हुए कहती हैं-

"जब आना इस ओर तो थोडी माँ की खुशबू ले आना,
बांध सको तो गली मुहल्लों की आवाजें ले आना,
संस्कृति इतनी लाना कि आखरी वक्त तक साथ रहे,
हो पाए तो देशप्रेम भी मुट्ठी भर तुम ले आना।"[7]

इक्कीसवीं सदी की दलित कवयित्रियों ने समाज की दृष्ट प्रवृत्तियें के खिलाफ अपनी कविता को अथियार बताया है। रमणिका गुप्ता की कविता में वर्ण-वर्ण के आधारपर दलितों का जोश शोषण हो रहा है उससे मुक्त होने की ब्याकुलता दिखाई देती है। इस कविता में चित्रित बदगद शोषण का प्रतीक है जो छोटे-छोटे पौंधों को अपने आसपास पनपने नही देता उसके हिस्से की धूप, पान, खनिज स्वयं चूसता है और स्वयं बढकर अपनी जडे मजबूत बना लेता है। शोषण का प्रतिकात्मक चित्रण करते हु कवयित्री कहती है-

"बरगद के नीचे, हम छोटे-छोटे पौंधे,
पैदा होते ही जाते हैं मर।
बट की जडे मिट्टी के अंदर घुसकर,
हडप लेती है, हमारे हिस्से का पानी।"[8]

हिंदी कविता में अभिव्यक्त आदिवासी विमर्श इस युग की कवियित्रियों द्वारा और अधिक गहराई के साथ चित्रित हुआ। आदिवासी कवियित्रियाँ आदिवासियो के दु:ख-दर्द को हरसंभव समेटने की कोशिश कर रही है। किसी भी समाज की स्त्री-चाहे वह आदिवासी ही क्यों न हो, पुरूषों के बनाए ढाँचे का प्रतिरोध करती है तो वह लांछित होती है। निर्मला पुतुल आदिवासी स्त्री के दु:ख-दर्द के संपूर्ण व्याकरण को समेटे हुए पंरपरागत दृष्टि का विरोध करते हुए कहती है-

"क्या तुम जानते हो
एक स्त्री के समस्त रिश्ते का व्याकरण?
बता सकते हो तुम, एक स्त्री को स्त्री-दृष्टि से देखने
उसके स्त्रीत्व की परिभाषा?
अगर नही, तो फिर क्या जानते हो तुम
रसोई और बिस्तर के गणित से परे
एक स्त्री के बारे में .....।"[9]

इक्कीसवीं सदी के स्त्री कवयित्रियों ने कुछ तीखे, ज्वलंत प्रश्नों, अंतविरोधों और विरोधाभासों को अपनी कविता में प्रस्तुत किया है जिससे स्त्री-सृजन की एक अलग पहचान बनने लगी है। इनकी रचनाओं में स्त्री के

अधिकारों के प्रति सजगता के साथ-साथ समाज की अन्य समस्याएँ भी उद्घाटीत हुई दिखाई देती है। इनकी सृजनात्मकता आक्रमक, तीखा और पितृक समाज की कडी आलोचना से परिपूर्ण है। यह परिवर्तन इक्कीसवी सदी में सर्वाधिक दृष्टित हुआ। जो स्त्री-लेखन सिर्फ घर, परिवार, बच्चे, स्त्री-पुरूष बिखराव तक सीमित था उस स्त्री-लेखन की आंतरिक और बाहरी दुनिया में इस सदी में काफी बदलाव आया है।

अत: कहना होगा कि भारतीय स्वतंत्रता के पचत्तर वर्ष के उपरांत आज भी समाज के हर एक क्षेत्र में बदलाव के साथ समष्याएँ दिखाई देती है। इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता वैश्वीकरण से प्रभावित है। इक्कीसवीं सदी का हिंदी काव्य पुर्ववर्ती काव्य से बिल्कुल भिन्न है | इक्कीसवीं सदी के पूर्व जहाँ काव्य में देशप्रेम, राष्ट्रभक्ति, वीरता, इतिवृत्तात्मकता, उपदेशात्मकता, प्रेम, सौंदर्य, प्रकृति, वेदना, नये प्रयोग के यथार्थ के स्थान पर आधुनिक जीवन बोध, प्रेम और मृत्यु के बीच के समय को खेाजना और पाना, अतीत की सापेक्षिता का चित्रण, अनुभूति और अभिव्यक्ति की संवेदना में नयापन, मानवीयता का विकास, मूल्यों का नवीनीकरण, निरंतर नये होते जाने की वृत्ति और वर्तमानता का बोध, बाजारवादी संस्कृति, अस्तित्ववादी विचार, कुण्ठा, अनास्था आदि के साथ-साथ नारी, दलित और आदिवासी जीवन को इक्कीसवीं सदी के कवियों ने अपने काव्य का विषय बनाया है |

संदर्भ ग्रंथ :-

1.संपा. रतनकुमार पांडेय- 'अनभै', स्त्री विशेषांक, जुलाई-दिसंबर, 2010

2. संपा. मीरा गौतम-अंतिम दो दशकों का हिंदी साहित्य

3. संपा. विजयबहादुर सिंह- 'वागर्थ'

4. संपा. विजयबहादुर सिंह- 'वागर्थ'

5. मधु गुप्ता-नारी उडान (यथार्थ का घरातल-काव्य -संग्रह)

6. निर्मला गर्ग - 'कबाडी का तराजू'

7. अचना पंडा- अमेरिका

8. रमणिका गुप्ता- 'बरगदा'

9. निर्मला पुतुल-'नगाडे की तरह बजते हैा शब्द'

B.Aadhar International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-B

ISSN : 2278-9308 December, 2023

स्वाधीनता आन्दोलन की नींव और ग़दर पार्टी

सन्तोष कुमार मंडल

पी-एच.डी. शोधार्थी, हिंदी विभाग हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला

स्वाधीनता संग्राम की नींव तैयार करने में सबसे बड़ी भूमिका उन भारतीय शहीदों की हैं जो शहीद भगत सिंह के तीन पीढ़ी पहले से ब्रिटिश शासक के खिलाफ भारत की स्वाधीनता के लिए संघर्षरत रहे थे। वे अपनी संपत्ति भी कुरबान कर दिए। जिन्होंने अपने बसे-बसाये घर-बार की चिंता किये बिना, अपने जानों की आहुति दे दी। ब्रिटिश भारत को स्वाधीन कराने के लिए हर तरह की यातनाएँ झेलने को मजबूर हुए। ग़दर पार्टी बनने तक एक पीढ़ी भारत की स्वाधीनता के लिए पूरी तरह खप चुकी थी। ये लोग मूलतः पश्चिमी पंजाब मूल के थे। उन क्रांतिकारियों ने पंजाब के पैतृक घर-बार बेंचकर अमेरिका, कनाडा आदि देशों में जा बसें। जब उन्हें पता चला कि भारत देश भी गुलाम है।

भारत को स्वाधीन कराने के लिए विदेश के घर-बार को बेंचकर स्वाधीनता की लड़ाई में खुद पड़े। इतनी क़ुरबानी के बावजूद भी उन्हें याद करने वाला कोई नहीं है। वर्तमान और आने वाली पीढ़ी को कैसे पता चलेगा कि जिस स्वाधीन भारत में हम साँस ले रहे हैं। इसके लिए कितनी क़ुरबानी देनी पड़ी है। इससे वर्तमान और आने वाली पीढ़ी का दायित्व और बढ़ जाता है। और वे स्वाधीन भारत को और बेहतर करने के लिए प्रतिबद्ध हो सकते हैं। अधिकार और कर्त्तव्य के सामंजस्य से बेहतर भारत की ओर बढ़ सकते हैं।

जिन्हें आज तक पाठ्य-पुस्तकों में जगह नहीं दी गई। बात उन दिनों की हैं जब ब्रिटिश ने भारत के अधिकांश भूभागों पर अपना राजनीतिक आधिपत्य कायम कर लिया था। आधिपत्य स्थापित करने के बाद भारतीयों पर टैक्स लगाना शुरू कर दिया। टैक्स की अधिकता के कारण, अधिकांश पश्चिमी पंजाब प्रान्त के लोग अपने जीवन स्तर की बेहतरी के लिए अवसर की तलाश में कनाडा, अमेरिका, जापान व अन्य देशों में चले गए। वहां कठिन परिश्रम के द्वारा बहुत ही कम समय में, विदेशी धरती में अपने को स्थापित कर लिया। कनाडा, अमेरिका व अन्य देशों में जाने के लिए कई ऐसे लोग थे जिन्होंने अपनी सारी संपत्ति बेंचकर भारत छोड़कर विदेशों में बस गए। ब्रिटिश भारत की शिक्षा का स्तर किस तरह का होगा कि भारत के पढ़े-लिखे लोगों को भी यह ज्ञात नहीं था कि हमारा देश गुलाम है ? स्वाधीनता से पूर्व और स्वाधीनता के पश्चात् भी, भारत में, जिस तरह जातीय हिंसा आम बात थी ठीक उसी तरह उन दिनों अमेरिका में नस्लीय हिंसा आम बात थी। अमेरिका में वाइट और ब्लैक में भेदभाव का बहुत लम्बा इतिहास रहा है। अमेरिका में कमाई और जीवन स्तर के मामले में दुनिया के अन्य देशों से बेहतर विकल्प रहा है। आधुनिकता की शुरुआत से ही, जीवन में अच्छे अवसर की तलाश के लिए हमेशा से अमेरिका दुनिया के विभिन्न देशों की पहली पसंद रही है। कई बार अमेरिकी एथनिक समूह के लोगों ने बाहरी लोगों पर सामूहिक हमला किया करते थे। जिसके कारण अत्यधिक जानमाल की क्षति होती थी। कई बार जब मूल रूप से अमेरिकी लोगों द्वारा जापानी मोहल्ले में नस्लीय हमला होते थे तो जापान की सरकार, अपने देश के नागरिकों के हित की रक्षा के लिए अमेरिका की सरकार से बातचीत कर तात्कालिक समाधान के रूप में, उन पीड़ित लोगों को मुआवजे दिला दिए जाते थे। जब वही नस्लीय हमला भारत के लोगों पर हुए तो उनको किसी तरह की सहायता नहीं मिलती थी। जब इसकी छानबीन की गई तो भारत के लोगों को पहली बार ज्ञात हुआ कि वे **ब्रिटिश के गुलाम** हैं। भारत में भारत के लोग ब्रिटिश के गुलाम हैं। गुलामों के लिए कौन आवाज उठता है ? इस तरह के हमलों से ब्रिटिश शासक को कोई फर्क नहीं पड़ता था। भारतीय गुलामों का जितना शोषण-दमन भारत में होता था उसके अपेक्षा दुनिया अन्य देशों में कम शोषण होता था। ब्रिटिश शासक के द्वारा बनाया गया शोषण-दमन तंत्र इतना मजबूत था कि कोई उसे भेदने की कोशिश भी करें तो उनका जीवित रहना संभव नहीं था। हर गाँव में ब्रिटिश शासकों द्वारा टैक्स वसूल करने के लिए भारत के लोगों को आर्थिक लोभ लालच देकर चापलूसों के रूप में तैयार किया था। जिसका मुख्य उद्देश्य था आर्थिक शोषण को धार देना। और अधिक से अधिक टैक्स वसूल कर ब्रिटिश शासक तक पहुँचाना।

आज तक उन भारत भूमि के सपूतों के बलिदान को किसी भी विद्यालय, महाविद्यालय या विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में शामिल नहीं किया गया है। जो अपनी कमाई की सारी संपत्ति को बेंचकर स्वाधीनता आन्दोलन के लिए अपने जानों की आहुति तक दे दी। उनके लिए बोलने वाला कोई नहीं है।

ब्रिटिश भारत में भारतीय लोग जीविकोपार्जन के लिए दुनिया के विभिन्न देशों में कैसे पलायन करने को विवश हुए। इसी तथ्य को रेखांकित करते हुए लेखक लिखते हैं -"19वीं सदी के आखिरी और 20वीं सदी के शुरू के सालों में हजारों बूढ़े और नौजवान सिख किसान जीविका की तलाश में विदेशों को निकल गए थे उनके पास जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े थे उनसे जीविका जुटाना बड़ा ही कठिन हो गया था इसलिए देश को छोड़कर उन्होंने दूर-दूर के देशों की यात्राएँ कीं। "[1]

हजारों वर्षों से जमीन आम जनता की थी। उस जमीन को जोतकर फसल उगाने के लिए पहले जमींदारों, राजा, महाराजाओं को टैक्स देना पड़ता था। ब्रिटिश शासक का आधिपत्य स्थापित होने के बाद वही टैक्स ब्रिटिश शासक को देना पड़ता था। जमीन हमारी और टैक्स ब्रिटिश शासक को ! यह कितना अन्यायपूर्ण था ! कोई विरोध नहीं ! जब अज्ञानता की चादर हटी तो भारतीय, ब्रिटिश शासक का विरोध करने लगे। ब्रिटिश शासक इतना जुल्म ढाने वाला था कि भगत सिंह जैसे लाखों स्वाधीनता सेनानियों को फाँसी पर चढ़ा दिए गए। जबकि उन स्वाधीनता सेनानियों का कोई दोष नहीं था।

लगातार टैक्स का बढ़ना और भारतीय लोगों को परेशान करना ब्रिटिश शासकों का मुख्य कार्य हो गया था। जिससे तंग आकर हजारो लाखों भारतीय अपने जन्मभूमि को छोड़कर दुनिया के अन्य देशों में चले गए। हजारों मुसीबतों से तंग आकर किस तरह भारत के लोग अन्य देशों में जा बसे। इस तथ्य की पुष्टि करते हुए लेखक लिखते हैं-"हताश होकर केन्द्रीय पंजाब के साहसी किसान बाहर निकल पड़े। हजारों ने अपनी जमीने रेहन रख दी, पशु और अन्य औजारों को बेंच दिया, या क़र्ज़ लिया और अपनी जन्मभूमि से विदा हुए। " [2]

जब भारतीय लोग एक दो वर्षों के बाद अपने वतन लौट आये और अपनी खुशहाली का समाचार अपने सगे-संबंधियों से चर्चा की तो और लोगों ने विदेश जाने में दिलचस्पी दिखायी। इस ऐतिहासिक तथ्य को रेखांकित करते हुए लेखक लिखते हैं-"बीसवीं सदी ज्यों-ज्यों आगे बढ़ी ऐसे लोगों की संख्या भी बढती गई। वे वर्मा, मलाया, सिंगापुर, हांगकांग, शंघाई और चीन के अन्य भागों तथा ऑस्ट्रेलिया तक पहुँच गए। हष्ट-पुष्ट थी ही, पुलिस या चोकीदारी का काम आसानी से मिल जाता था ; कुछ लोग व्यापारी और ठेकेदारी का काम करने लगे। देश में जितना कमाते थे उससे ज्यादा कमाने लगे। इसलिए संतोष भी वहां अनुभव करने लगे। पर इन देशों के निवासी इन लोगों को विदेशी दमन और शोषण की मशीन का ही एक अंग समझते थे। इसलिए घृणा करते थे। "[3]

उस समय भारत की तुलना में अमेरिका में अधिक वेतन मिलते थे। किसी भी कार्य के लिए जातिगत शोषण की भावना वहां नहीं थी। वहां के शासन सत्ता के नजर में किसी तरह का भेदभाव का शिकार नहीं होना पड़ता था। लेकिन नस्लीय भेदभाव अमेरिका में सब दिन रहा है। वर्तमान में भी भेदभाव समाप्त नहीं हुआ है।

भारत से लगातार बढती पलायन को लेखक इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं- "समाचार मिला कि अमेरिका में और अच्छी तनख्वाहें मिलती हैं, और वहां और अधिक कमाया जा सकता है। जो सौभाग्यशाली लोग वहां पहले पहुँच गए थे , उन्होंने अपने रिश्तेदारों और दोस्तों को लिखा। विदेशों की ओर जाने वाली यह जनधारा पूर्व की ओर और दूर बढ़ी। प्रथम महायुद्ध के आरम्भ होने के पहले अमेरिका और कनाडा में पंद्रह हजार से अधिक भारतीय जा बसें। ज्यादातर तादाद इनमें सिखों की ही थी। अमेरिका में मिल-मालिक और किसान अच्छी मजदूरी देते थे। "[4]

अमेरिका में मजदूरों की दो कोटियाँ थीं। एक आजाद मुल्क के और दूसरा गुलाम मुल्क के। उस समय आजाद मुल्क के रहने वाले मजदूरों का हित की रक्षा उनके अपने देश की सरकार करती थी। लेकिन जो गुलाम मुल्क के मजदूर थे उनके हित की रक्षा कोई नहीं करता।

आजाद मुल्क के मजदूर और गुलाम मुल्क के मजदूरों की विवशताओं को रेखांकित करते हुए लेखक लिखते हैं-"यह बात नहीं थी कि अमेरिकन मजदूर सिर्फ हिन्दुस्तानियों से ही नाराज़ थी। उतने ही नाराज़ वे यूरोपियन और एशियाई देशों के प्रवासियों से भी थी। पर ये दूसरे लोग आजाद देशों के रहने वाले थे। उनकी सरकारें, उनके हितों की रक्षा करती थी। कैलीफोर्निया निवासी जब जापानियों की बस्ती में जब एक बार लूट-पाट हुई, तो जापानी सरकार के प्रतिनिधि ने अपने नागरिको को एक डॉलर के नुकसान के एबज में दस डॉलर दिलवाए थे। पर

हिन्दुस्तानियों के मामले में ब्रिटिश प्रतिनिधि और राजदूत किसी प्रकार की भी मदद देने को तैयार नहीं थे। इस बात को देखकर वहां के हिन्दुस्तानियों में पहली बार यह ख्याल जागा कि वे गुलाम हैं। "[5]

जब भारतीय लोगों को गुलामी का एहसास हुआ तो अमेरिकी नागरिकों के सामने पग-पग पर अपमान सहना पड़ता था। इससे मुक्ति के लिए भारत वासियों ने गुलामी से बाहर निकलने के लिए किस तरह स्वाधीनता के लिए अग्रसर हुए। इस तथ्य को रेखांकित करते हुए लेखक लिखते हैं- गुलाम देश में पैदा होने की वजह से उन्हें पग-पग पर अपमान उठाना पड़ रहा था। अमरीकन प्रजातंत्र में उन्होंने राजनीतिक समानता देखी कि आम लोगों के अधिकारों की वहाँ इज्जत की जाती है। लोग काफी आजादी से रहते हैं।"[6]

भारतीय मूल के लोग विदेशी धरती में खुशहाली से जीवन यापन करते हुए अपने बच्चों को पढ़ाने का संकल्प लिया और देश दुनिया में हो रहे गुलामी के प्रति विद्रोह से अवगत होने लगे। भारतीय लोग शिक्षा चेतना के कारण एकजुट होने लगे। भिन्न-भिन्न देशों में रह रहे भारतीय, भारत की आजादी के लिए एकजुट होने लगे। जैसे जैसे चेतना का विकास होता गया। लोगों को यह बात खलने लगी कि देश हमारा और शासन ब्रिटिश का। यह घोर अन्याय है। जो लोग उस समय चेतना सम्पन्न थे। वे अन्य लोगों को एकजुट करने लगे। यह भारतीय इतिहास के लिए बहुत महत्वपूर्ण कार्य साबित हुआ। आगे चलकर वे लोग 'ग़दर पार्टी' की स्थापना की नींव डाली। दुनिया के विभिन्न देशों में रहते हुए भी भारत की स्वाधीनता के लिए संघर्ष करने के लिए हर तरह से तब तक प्रयासरत रहे जब तक कि 'ग़दर पार्टी' की स्थापना नहीं हो गई। भारत की स्वाधीनता के लिए अनेक बुद्धिजीवी क्रन्तिकारी किस तरह अपना योगदान दे रहे थे। उसी तथ्य को उजागर करते हुए लेखक लिखते हैं-"उन्होंने अपने चारों ओर के देशों में ख़ास तौर से आयरलैंड, चीन, मिश्र और टर्की में उठते हुए नए-नए राष्ट्रीय आंदोलनों को देखा। हरदयाल और बरकत उल्लाह ऐसे बुद्धिजीवी क्रांतिकारी अलग-अलग छिटपुट ढंग से काम करते थे।"[7]

शिक्षा जागरूकता के कारण अमेरिका के विभिन्न शहरों में रह रहे भारतीय एकजुट होकर ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह कर दिया। लोगों में अपने देश के प्रति जो भावनाएं शिक्षा के कमी के कारण दबी हुई थी। शिक्षा चेतना के कारण सोयी हुई चेतना जाग गई। और ब्रिटिश शासन के खिलाफ भारतीयों ने जानों की बाजी लग दी। इस घटना को अभिव्यक्त करते हुए लेखक लिखते हैं- "कैलिफोर्निया के खेतो में,ओटोमन और वाशिंगटन के फैक्ट्रियों में, तथा सैकड़ों मील की दूरी पर बिखरी हुई भारतीय बस्तियों में एक नई भावना का जन्म हुआ। इस भावना का नाम था ब्रिटिश शासन के खिलाफ विद्रोह!"[8]

भारतीय लोगों में जागरूकता बढाने के लिए 'ग़दर' नाम की पत्रिका कई भाषाओं में निकाली गई। इस पत्रिका के अस्तित्व में आने के कारण भारतीय लोगों में और जोश जुनून के साथ चेतना का विस्तार हुआ। जिसके कारण आगे चलकर उसी पत्रिका के नाम से ग़दर पार्टी की स्थापना हुई। इसे लेखक इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं- "1857 के ग़दर की स्मृति में सभा का ग़दर नाम का पत्र हिंदी, उर्दू, मराठी, गुरुमुखी में प्रकाशित किया जाए। बाद में इसी पत्र के नाम के कारण सभा का सुप्रसिद्ध नाम 'ग़दर पार्टी' पड़ा।" [9]

ग़दर पार्टी के संस्थापकों में अधिकांश लोग पंजाब प्रान्त के थे। जिन्होंने देश को स्वाधीन कराने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ी थी। उनमें से अधिकांश क्रांतिकारियों को ब्रिटिश शासक ने समाप्त कर दिया। 'ग़दर पार्टी' के संस्थापकों में शामिल आधिकांश क्रांतिकारियों के बलिदानों को लेखक इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं - "ग़दर पार्टी के संस्थापकों में प्रधान थे बाबा सोहनसिंह भखना, बाबा ज्वालासिंह, बाबा वसखासिं, बाबा संतोखसिंह, बाबा कर्त्तारसिंह सराबा, केसरसिंह, पृथ्वीसिंह, बाबा करमसिंह चीना, भानसिंह कनैडियन, शेरसिंह लालसिंह, उधमसिंह कसैल, संतसिंह गोविंद और हरनाम सिंह टुंडी लाट आदि।इन नामों को लेते ही देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ी गई अनेक लडाइयों और अलौकिक बलिदानों की गाथाएँ स्मरण हो आती हैं।" [10]

'ग़दर पार्टी' के संस्थापक सदस्यों का यह उद्देश्य था कि जिस सिद्धांत के द्वारा पार्टी की स्थापना की गई थी। उसी सिद्धांत के तहत ब्रिटिश साम्राज्य को सदा के लिए समाप्त करना और भारत को पूर्ण रूप से स्वाधीन करना। और नस्लीय हिंसा उन्होंने अमेरिका में देखी थी। इसलिए भारत में इस तरह की दिक्कत नहीं रह जाए। इसका पूरा ध्यान रखा गया था। स्वाधीन भारत कैसा होना चाहिए शहीद भगत सिंह ने अपनी 'जेल की डायरी' में लिखा है। किसी भी तरह की विषमता का कोई स्थान नहीं। एक ऐसा समतामूलक समाज जहाँ किसी तरह का भेदभाव का कोई स्थान नहीं हो। स्वाधीन भारत की यूटोपिया को अभिव्यक्त करते हुए लेखक लिखते हैं-"जिस प्रस्ताव के द्वारा ग़दर पार्टी की नीवं डाली गई थी, उसी प्रस्ताव के द्वारा यह भी निश्चित किया गया था कि ब्रिटिश साम्राज्य को उखाड़ कर उसकी जगह पूर्ण समानता और स्वतंत्रता के आधार पर एक राष्ट्रीय प्रजातंत्र की स्थापना ही इस पार्टी का उद्देश्य है।"[11]

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि ग़दर पार्टी के उदेश्य को हम 75 वर्षों के स्वाधीनता के बाद भी प्राप्त नहीं कर पाए हैं। आज भी धर्म, जाति के नाम पर भेदभाव देखने को मिलते हैं। जिसे दूर कर एक अच्छा लोकतांत्रिक, मानवाधिकार, समानता व बंधुत्व पर आधारित समाज बना सकते हैं। उन महान भारतीय क्रांतिकारियों का, स्वाधीन भारतीय समाज के लिए यही परिकल्पना थी । सच्चे अर्थों में तभी उनके बलिदान को आदरांजलि होगी।

संदर्भ ग्रन्थ

1. ग़दर पार्टी के इंकलाबी – रणधीर सिंह, स्वर्ण जयंती, दिल्ली पृष्ठ-17
2. वही, पृष्ठ-18
3. वही, पृष्ठ-18
4. वही, पृष्ठ-19
5. वही, पृष्ठ-20
6. वही, पृष्ठ-22
7. वही, पृष्ठ-22
8. वही, पृष्ठ-22
9. वही, पृष्ठ-23
10. वही, पृष्ठ-24
11. वही, पृष्ठ-24

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-B

ISSN : 2278-9308 December, 2023

स्वाधीनता के 75 वर्ष और स्त्री

मनदीप

शोधार्थी पी-एच.डी. (हिंदी) हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

दुनिया में हर समाज के नियामक बौद्धिक वर्ग होते हैं। जिनके अच्छे और बुरे कार्यों से सामाजिक मूल्य बनते हैं। वही सामाजिक मूल्य समाज को दिशा देने और वर्तमान दशा के लिए जिम्मेदार होते हैं। किसी भी समाज के बौद्धिक वर्ग जितना समतामूलक होगा वह समाज उतना ही बौद्धिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक रूप से समृद्ध होगा। सदियों तक जिन लोगों को हमने बौद्धिक वर्ग समझकर उनके बौद्धिक स्तर को बिना परखे अनुगामी बने रहे, वे हमें सदियों से कुटिल मानसिकता के द्वारा शोषित करते रहे। उन बौद्धिक वर्गों ने स्त्रियों को शिक्षा व कई सामाजिक अधिकारों से वंचित रखा। स्त्रियों पर कई तरह के सामाजिक प्रतिबंध लगाए गए। सदियों से वंचित, शोषित, दमित, लांछित, पीड़ित हाशिए के मनुष्य के मानवीय अधिकार और लोकतान्त्रिक व्यवस्था के अंतर्गत स्त्री के अन्य अधिकारों से जुड़े प्रश्नों पर बहुत कम विचार किए गए। इतिहास में उन पर हुए अत्याचार और दमन से संबंधित प्रश्नों को प्रगतिवादी कविता में किस तरह उठाया गया है ? और उन सारे अमानवीय अत्याचारों से मुक्ति के लिए प्रगतिवादी आलोचकों ने समय-समय पर रास्ता भी दिखाया है। लोकतंत्र और मानवाधिकार को अपने पुस्तकों में स्थान देने वाले प्रसिद्ध प्राध्यापक, आलोचक व लेखक प्रो. जगदीश्वर चतुर्वेदी स्त्री और पितृसत्ता के अंतर-संबंध को चिन्हित करते हुए लिखते हैं-"पितृसत्ताक दृष्टिकोण का गहरा संबंध स्वार्थांधता से है। पितृसत्ता नजरिए के कारण स्त्री क्रमशः अधिकारहीन हुई, भोग की वस्तु बनी, इसी भोगवादी दृष्टि का साहित्य में भी जयघोष हुआ। साहित्य में स्त्री को भोग की वस्तु के रूप में देखा गया उसकी उन तमाम क्रियाओं को रूपायित किया गया जिनसे भोगवाद या सुखवाद को विस्तार मिले। दूसरी ओर भोगवाद के विकल्प के तौर पर सन्यासवाद या वैराग्य को रूपायित किया गया। " [1]

प्रगतिवाद मूलतः मार्क्सवादी सिद्धांत पर आधारित है। मार्क्सवाद ने सिर्फ दो तरह के लोगों को चिन्हित किया है। पहला शोषित और दूसरा शोषक। जबकि पुरुषों में जो शोषित है वह भी किसी न किसी माध्यम से स्त्री का शोषण करता रहा है। आर्थिक, सामाजिक और शैक्षणिक रूप से कमजोर होने के कारण स्त्रियों का शोषण होता रहा है। पितृसत्ता और स्त्री-शोषण के अंतर-संबंध के आधार के रूप में लिंग भेद है। जहाँ पुरुषों को सदियों से स्त्रियों का शोषण-दमन करने का सामाजिक अधिकार प्राप्त है। इस तरह के सामाजिक अधिकार को संरक्षण देना बौद्धिक वर्गों का कार्य रहा है। सदियों तक स्त्रियों के शोषण को कर्त्तव्य से जोड़ा गया। जब से स्त्रीवादी विमर्श अस्तित्व में आया है। तब से स्त्री के अधिकारों के प्रति सजगता बढ़ी है। अन्यथा स्त्री शोषण को कभी शोषण माना ही नहीं गया। विश्व की आधी आबादी स्त्रियों की है।भारत में स्त्रियों के लिए आज भी तेतीस प्रतिशत आरक्षण की बात होती है। आज भी स्त्रियों के हिस्से का सत्रह प्रतिशत आरक्षण पुरुष अपने कब्जे में रखा है। यह भी एक तरह से स्त्रियों के अधिकारों का शोषण है।

लिंग भेद को मार्क्सवाद से जोड़ते हुए लेखक लिखते हैं- "मार्क्सीय दृष्टिकोण से लिंगीय प्रश्न वर्गीय प्रश्न है और लिंगीय शोषण वर्गीय शोषण है। लिंगीय वैषम्य और असमानता से मुक्ति तभी संभव है जब लिंगीय एक वर्गीय अंतर्विरोध का समाधान कर लिया जाए। बुर्जुआ समाज में, यहां तक कि लंबे समय तक समाजवादी समाज में लिंगीय अंतर्विरोध बने रहते हैं। अत: लिंगीय वैषम्य के खिलाफ संघर्ष दीर्घकालिक संघर्ष की मांग करता है।"[2]

और वे हमारे अधिकारों को छिनकर अपना अधिकार समझते रहे। लेकिन अब समय आ गया है जब हमें दमन और तिरस्कार की जिंदगी को छोड़कर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना होगा। अगर ऐसा वर्तमान पीढ़ी के शोषित वंचित स्त्रियाँ नहीं कर पाई तो आगे आने वाली पीढ़ियों के लिए भ्रामक व्यवस्था पैदा होगी। और उसके लिए वर्तमान व्यवस्था और शिक्षित शोषित स्त्रियाँ जिम्मेदार होगीं। साहित्यिक लेखन में अभी तक सबसे ज्यादा शोषित वंचितों के अधिकारों के साथ प्रगतिशील लेखक संघ का उद्देश्य धरातल पर उतारने को लेकर जोरदार अभियान रहा है, ऐसा प्रगतिशील लेखक संघ के शुरूआती घोषणा और उद्देश्य से ज्ञात होता है। फिर भी भारत जैसे विशाल लोकतान्त्रिक देश में कौन सी बाधा या व्यवधान आ गई ? जिसके कारण आज भी हमें वह सफलता नहीं मिल पाई जो हमें मिलनी चाहिए थी। एंगेल्स ने यह भी लिखा है -"पितृसत्ता का सबसे अधिक

पहला प्रभाव परिवार में पड़ा। एकनिष्ठ परिवार का उदय हुआ। यह एकनिष्ठ परिवार असमान-संबंध बनाए रखता है। लिंगभेद बनाए रखता है। यह केवल नारी के लिए एकनिष्ठ है, पुरुष के लिए नहीं। और आज तक उसका यही स्वरूप चला आया है।"[3]

भारतीय समाज में सदियों से स्त्रियों की दयनीय स्थिति रही हैं। जिस समाज में ऊँच-नीच, छुआछूत जैसी अनेक ऐसे भेदभाव करने के नियम बौद्धिक वर्गों द्वारा बनाये गए थे। जिसमें मनुष्य को मनुष्य नहीं समझा जाता था। स्त्रियों की क्या स्थिति होगी ? जहाँ स्त्रियों पर अनेक तरह की बंदिशे थीं। जहाँ समाज स्त्रियों को बाहर आने-जाने पर कई तरह पाबंदियां थीं। और यह उस समय ही नहीं आज भी हमारा समाज स्त्रियों के बाहर जाने पर उनके लिए सैकड़ों प्रश्न लेकर खड़ा रहता है। जब तक स्त्रियों को धर्म व संस्कृति के नाम पर तरह-तरह नियम बने हैं। तब तक हमारा समाज आगे नहीं बढ़ सकता। जिसके बारे में "स्वामी विवेकानन्द ने भी लिखा है-"हमारे सामने खतरा यह है कि हमारा धर्म रसोईघर में न बन्द हो जाए।....हम केवल 'हमें मत छुओं के समर्थक हैं। हमारा ईश्वर भोजन के बर्तन में है और हमारा धर्म यह है कि 'हम पवित्र हैं, हमें छूना मत'। अगर यही सब एक शताब्दी और चलता रहा तो हममें से हर एक व्यक्ति पागलखाने में होगा।"[4]

किस हद तक शोषित, दमित, लांछित स्त्रियों के लिए प्रगतिवादी लेखकों ने अपने लेखन में उनसे सम्बंधित प्रश्नों को उठाया ? हमें यह प्रश्न को बहुत ही बृहत् स्तर पर परखना होगा कि समय के साथ प्रगतिवादी लेखक कहीं समय के कुचक्र में फंस कर अवसरवादी तो नहीं हो गए ?

अपने शुरूआती उद्देश्यों को भुला तो नहीं दिया ? समाज में स्त्रियों की स्थिति में सकारात्मक बदलाव के पीछे प्रगतिवादी लेखकों, चिंतकों का कितना योगदान है ? सामाजिक बदलाव की स्थिति बहुत ही समयोचित नहीं कहा जा सकता। क्योंकि पहली दुनिया, दूसरी दुनिया के अपेक्षा आज भी भारत जैसे विशाल देशों में स्त्रियों को उनके अधिकारों से वंचित रखना, एक लोकतान्त्रिक देश के नागरिक होने के नाते, यह न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता। प्रगतिवादी लेखक संघ की साहित्यिक के साथ-साथ सांस्कृतिक गति-विधि को भी विशेष रूप से प्रश्नांकित करना होगा। हासिये के समाज के लोगों को सबसे ज्यादा प्रगतिवादी लेखकों से ही आशा थी कि वे उनके अधिकारों के लिए उन्हें अवगत कराते हुए सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक कई स्तरों पर संघर्ष कर वंचितों के अधिकारों को दिलाते हुए एक सम्मानपूर्ण जीवन देने में सक्षम होगा, परन्तु यह जमीन पर कुछ और ही है ? लगता है अधिकांश प्रगतिवादी लेखक सैयद सज्जाद की वो उद्देश्यपूर्ण घोषणा को भूल गए है ? स्त्रियों की दासता और वर्तमान में चल रही शोषण व्यवस्था को चिन्हित करना होगा। स्त्रियों की धार्मिकता के पीछे उनकी मानसिकता को बनाने वाले आधारभूत सोच को चिन्हित करना होगा। धार्मिक रीतिरिवाज़ अधिकांशतः स्त्रियों के लिए ही क्यों है ? पुरुषों के लिए अनिवार्य क्यों नहीं ?

महान समाज सुधारक राजा राममोहन राय के चिन्तन को अभिव्यक्त करते हुए लेखक लिखते हैं-"राजा मोहनराय ने समाज की दुर्बलताओं के बारें में बताते हुए कहते है-मुझे खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि धर्म के वर्तमान ढांचे ने हिन्दुओं को इस बुरी तरह जकड़ रखा है कि उनके राजनीतिक हितों के बारें में कुछ किया ही नहीं जा सकता। जाति-भेद और जातीय अभिमान ने उन्हें अनगिनत वर्गों और उपवर्गों में बाँट दिया है जिससे उनमें देशप्रेम की भावना पूरी तरह ख़त्म हो गयी है। सैकड़ों तरह के धार्मिक रीति-रिवाजों, धार्मिक समारोहों और शुद्धीकरण के नियमों ने उन्हें इस कदर बाँध रखा है कि वे कोई जोखिम का काम हाथ में लेने लायक नहीं रह गये हैं।"[5]

धर्म के अंतर्गत सदियों से संस्कृति के नाम पर स्त्रियों को त्याग और बलिदान वाला पक्ष को कथाकथित बुद्धिजीवियों द्वारा इतना ज्यादा बल क्यों दिया गया, इसके पीछे की उनकी क्या मानसिकता थी ?

स्त्रियों की शिक्षा से बौद्धिक वर्गों को क्या तकलीफ थी। स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखना। वेदों का अध्ययन करने से मना करना। किस तरह से स्त्रियों को पराधीन किया गया। लेखक इस तरह अभिव्यक्त करते हैं-"उन्हें वेदों का अध्ययन करने से वंचित कर दिया गया। स्त्री अशिक्षा के अंधकार की ओर अग्रसर हुई, और यहीं से समाज में नारी की पराधीनता प्रारम्भ हुई। अब स्त्रियाँ सामाजिक स्थानों पर आ-जा नहीं सकती थीं। धर्मशास्त्र-युग में भारतीय हिन्दू- स्मृतिकारों और सूत्रकारों ने अनेक नवीन व्यवस्थाओं के द्वारा स्त्रियों को पुरुषों के अधीन कर दिया गया।"[6]

कुटिल पुरुष बुद्धिजीवियों ने स्त्रियों के लिए कर्तव्यों पर ज्यादा जोर दिया किन्तु वंचित स्त्रियों के अधिकारों को अपने पास रखा,ऐसा क्यों किया गया, इसके पीछे की उनकी मानसिकता को चिन्हित करना।

भारतेंदु ने तुरंत इसका विरोध किया उनके शब्दों में –"मैं इस देश में लड़के-लड़कियों के मिले-जुले स्कूलों की योजना बनाने का समर्थन नहीं सकता । एक ही स्कूल में लड़कों के साथ अपनी लड़कियों को पढ़ाने के लिए हिन्दुस्तानियों को कभी राजी नहीं किया जा सकता।"[7]

आज भी कई क्षेत्रों में स्त्रियों के साथ पूर्ण योग्यता होने के बावजूद उन्हें अधिकंश जगहों में भेद-भाव का शिकार होना पड़ता है । क्योंकि हमारे समाज में आज भी लोगों के दिमाग में असमानता का भाव जड़ जमा चुका है। उन्हें हर स्तर पर भेदभाव किया जाता है । जेंडर, जाति, गरीबी, स्त्री होने पर भी नजरअंदाज कर दिया जाता है । कई तरह से भेदभाव का सामना करना पड़ता हैं ।धार्मिक, राजनीतिक और अनेक ऐसे कुटिलता के द्वारा स्त्रियों के उनके अवसरों को छीना जाता है, ऐसा क्यों किया गया? इसके पीछे की मानसिकता के तह तक जाना होगा। आखिर भारतीय संस्कृति को बचाने का सारा बोझ स्त्रियों पर क्यों होता है ?
रूढिगत परम्परा को भारतीय संस्कृति के नाम पर आधुनिक ढंग से स्त्रियों पर ही क्यों थोपा जाता है ?
संस्कार के रूप में, बचपन से ही स्त्रियों के साथ जेंडर निर्माण की प्रक्रिया के तहत दोनों के परिवरिश में विशेष अंतर पाया जाता है ? ऐसा क्यों ?

क्या संस्कार सिर्फ स्त्रियों के लिए ही जरुरी है ? पुरुषों के लिए संस्कार का कोई औचित्य नहीं ?
उत्तर आधुनिकता के दौर में पितृसत्ता ने स्त्रियों के शोषण के लिए आधुनिक शब्दावली और अत्याधुनिक तकनीक के माध्यम से शोषण को जारी रखने के लिए अग्रसर है, जिसकी शिनाख्त बहुत आसानी से नहीं की जा सकती है । उमा चक्रवाती ने दयानंद सरस्वती के स्वर्णिम युग का विरोध करती है और वे लिखती हैं- "इसके वाबजूद उनका दृढ़ मत था कि केवल बाल-विहीन(शिशुओं विहीन) विधवाओं को ही पुनर्विवाह की अनुमति दी जानी चाहिए । इसके पीछे उनका तर्क था कि प्राचीनकाल में भी भारत में विधवाओं के नियोग(विवाह) की प्रथा थी परन्तु यह विवाह विधवा के मृत पति के छोटे भाई (देवर) के साथ ही किया जा सकता था।"[8]

वर्तमान में, पितृसत्ता ने स्त्री शोषण के लिए स्त्रियों को ही स्त्रियों के शोषण के लिए तैयार किया है ? इसे समझना बहुत जरुरी है । भाषा और स्त्रियों की उचित शिक्षा के संदर्भ में लेखक लिखते हैं -" स्त्रियाँ यदि अपढ़ रह गई, यदि उन्हीं की जबान न मंजी, तो बच्चा पढ़कर भी कुछ नहीं कर सकता। मौलिकता का मूल बच्चे की माता है । भाषा का सुधार, संशोधन स्त्रियाँ ही करती हैं । जब तक वर्तमान खड़ी बोली स्त्रियों के मुख से मंजकर नहीं निकलती, तब तक उसमें कोमलता का आना स्वप्न है। वही बच्चा भविष्य के हिंदी-साहित्य का महाकवि है, जिसे अपनी माता के मुख से साफ-शुद्ध, मार्जित, सरल, श्रुति-मधुर तथा मनोहर खड़ी बोली के सुनने का सौभाग्य प्राप्त होगा।"[9]

समाज और राष्ट्र का विकास करने के लिए स्त्रियों का शिक्षित होना बहुत जरूरी है। अगर समाज में स्त्रियों को शिक्षित नहीं किया गया तो समाज समय से कई गुना पीछे चला जाएगा। समाज में जब स्त्रियाँ शिक्षित नहीं हुई तो आने वाली पीढ़ी भी अनपढ़ ही रह जाएगी। जब लडकियाँ पढ़ेगी तभी वे अपने बच्चों को आगे बढ़ा सकती है क्योंकि बच्चा सबसे परिवार यानि माता से ही सीखता है जब वह बड़ा होता है तब स्कूल में प्रवेश करता है उससे पहले सभी शब्दों का उच्चारण करना अपनी जननी से ही सीखता है ये तभी हो सकता जब माताएं शिक्षित हो ।

संदर्भ ग्रन्थ

1. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श.जगदीश्वर चतुर्वेदी.(2011). अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड.पृष्ठ संख्या-207
2. वही,.पृष्ठ संख्या-206
3. वही,.पृष्ठ संख्या-206
4. निराला साहित्य में व्यंग्य,छाया सिन्हा,(2001), जिज्ञासा प्रकाशन, पृष्ठ संख्या-131
5. वही, पृष्ठ संख्या-130
6. स्वाधीनता-आन्दोलन, डॉ अनिल कुमार राय.(2004).खामा पब्लिशर्स:नई दिल्ली, पृष्ठ-123
7. रस्साकशी. वीरभारत तलवार.(2007). वाणी प्रकाशन : नई दिल्ली. पृष्ठ संख्या- 34
8. स्त्री संघर्ष का इतिहास. राधा कुमार.(2011). वाणी प्रकाशन: नई दिल्ली. पृष्ठ संख्या-55
9. निराला की साहित्य साधना भाग-2, रामविलास शर्मा,राजकमल प्रकाशन : नई दिल्ली, पृष्ठ-39

आज बाजार बंद है ! उपेक्षित नारी का दस्तावेज

डॉ.मा.ना.गायकवाड

हिंदी विभाग कै.व्यंकटराव देशमुख महाविद्यालय बाभळगाव ता.जि.लातुर

9405293031 drmana358@gmail.com

समकालीन साहित्य में नारी प्रमुख विषय बन चुकी है । भारतीय साहित्य में नारी का प्रमुख स्थान रहा है। प्रत्येक साहित्य विधा में अधिकांश मात्रा में नारी के रुप दिखाई देते है। अनादि काल से उपेक्षित नारी को हक्क देने के लिए उसकी चेतना को जागृत कर उसमें कितनी शक्ति है इसका प्रदर्शन साहित्यकार कर रहे है। नारी में परिस्थितियों के अनुसार अपने बाहय जीवन को ढालने की जितनी सहज प्रवृत्ति है, उतनी ही स्वभावगत गुण न छोडने की अन्तरिक प्रेरणा उससे कही अधिक है। इसीलिए भारतीय नारी भारतीय पुरुष से अधिक सतर्कता के साथ अपनी रक्षा कर सकती है। पुरुष के समान व्यथा भूलने के लिए कादम्बिनी नही माँगती, उल्लास के सदन के लिए लालसा का ताण्डव नही चाहती क्योंकि, दु:ख को वह जीवन की शक्ति - परीक्षा के रुप में ग्रहण कर सकती है और सुख को कर्तव्य में प्राप्त कर लेने की क्षमता रखती है। कोई ऐसा त्याग, कोई ऐसा बलिदान और कोई साधना नही। जिसे वह अपने साध्य तक पहुँचने के लिए सहज भाव से नही स्वीकार करती। हमारी राष्ट्रीय जागृती इसे प्रमाणित कर चुकी है कि, अवसर मिलने पर घर के कोने की दुर्बल बन्दिनी स्वच्छंद वातावरण में बल प्राप्त पुरुष से शक्ति में कम नही।

भारतीय नवजागरण के आरंभिक दौर में समाज में नारी की स्थिति का प्रश्न महत्वपूर्ण और विवादास्पद रहा। उस समय स्त्री की स्वाधीनता का प्रश्न उतना महत्वपूर्ण नही था। जितना उसके जीने का अधिकार का था। वह जन्म से लेकर सती होने तक मौत के दरवाजे पर खडे रहती थी। स्वेच्छा से नही पुरुष की इच्छा से क्योंकि, उसकी इच्छा पर और शरीर पर पूरा पुरुष का अधिकार था। इसीलिए राजाराम माहेन राय ने स्त्री के जीने के अधिकार का प्रश्न उठाते हुए सती प्रथा का विरोध किया और स्वेच्छा से जीने के लिए ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने विधवा विवाह का समर्थन किया। उपेक्षित नारी का प्रश्न अन्य प्रान्तो की तुलना में महाराष्ट्र अग्रगामी रहा है। क्योंकि महात्मा जोतिराव फुले ने न केवल स्त्रियों की सामाजिक गुलामी के विरूध्द आवाज उठाई थी बल्कि उन्होंने उनकी शिक्षा के अधिकार का भी समर्थन किया था और उसकी व्यवस्था भी की थी, जिसका प्रभाव महाराष्ट्र के नारी जागरण पर दिखाई देता है। भारतीय नवजागरण के दौरान स्त्री की स्वाधीनता का प्रश्न प्रखरता के साथ सामने आया है। जब भारतीय स्त्री अपनी स्वाधीनता की माँग करते हुए आगे आयी है। सन 1882 में ही महाराष्ट्र की एक क्रांतिकारी महिला ताराबाई शिंदे की पुस्तक स्त्री-पुरुष तुलना छपी थी जिसमें स्त्री दृष्टि से महाराष्ट्र की पितृसत्ताक समाज व्यवस्था, संस्कृति और पुरुषों की मानसिकता पर तीखी आलोचना है। ताराबाई शिंदे ने एक ओर नारियों पर पुरुषों व्दारा लगाए गए तरह-तरह के आरोपों का उत्तर दिया है। दूसरी ओर पुरुषों के पूर्वाग्रहों, अन्याय और अत्याचारों का विवेचन भी किया है। 19 वी सदी में हिंदी क्षेत्र में नारी जागरण का रुप वैसा न था, जैसा बंगाल और महाराष्ट्र में था। फिर भी सन 1982 में ही हिंदी में भी एक पुस्तक छपी थी, जिसमें नारी के जागरण का स्वर अत्यंत प्रखर बना था।

बीसवी शताब्दी के दूसरे दशक से लेकर चौथे दशक तक हिंदी क्षेत्र में नारी जागरण का नया उभार दिखाई देता है, जिसके प्रमाण उस समय की स्त्री के जीवन से जुडी पत्रिकाओं में मिलता है। भारतीय समाज मे स्त्री को जन्म से ही अबला बनाया जाता है। स्वतंत्रता की भावना को उसकी जिंदगी और सपनो से दूर रखा जाता है। हिंदू समाज में पुरुष प्रभुत्व का सबसे उग्र और छला हुआ रुप उसकी नैतिक व्यवस्था में दिखाई देता है। जिसमें पुरुष सब कुछ करने के लिए स्वतंत्र है। और स्त्री सब कुछ सहने के लिए मजबूर है। इस समाज में स्त्री और पुरुष के लिए अलग अलग नैतिक मानदंड है। इन्ही मानदंड को साहित्यकारोने दुनिया के सामने लाने का प्रयास किया है। लेकिन 21 वी सदी में नारी शोषण से रुब-रु करानेवाली प्रमुख महिला उपन्यासकारों में चित्रा मुदगल, नासिरा शर्मा, राजी सेठ, सूर्यबाला, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, प्रभा खेतान, मैत्रेय पुष्पा, ऋता शुक्ला, कमल कुमार, नमीता सिंह, पद्मा सचदेव, मंजुल भगत, सुनीता जैन, शिवानी एवं शशी प्रभा शास्त्री आदि के नाम प्रमुख है। इनके अलावा अनेक लेखक - लेखिक है जिन्होनें नारी मुक्ति अपनी कलम का उद्देश बनाया। उसीमें से एक है मोहनदास नैमिशराय। आपने अपने साहित्य में समाज के उपेक्षित और ठुकराई हुई भावनाओं को उजागर करने का प्रयास किया है। उनके उपन्यास, मुझे क्या खरीदोगे, मुक्तिपर्व, वीरागंणा झलकारीबाई, और आज बाजार बंद है। प्रस्तुत निंबध में आज बाजार बंद है ! इस उपन्यास में उपेक्षित नारी जीवन पर दृष्टि डाली गई है।

मोहनदास नैमिशराय दलित साहित्यकार, चिंतक एवं पत्रकार है। वे दलित साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर है। आज बाजार बंद है ! यह उनका वेश्या जीवन पर लिखा हुआ सशक्त एवं महत्वपूर्ण उपन्यास है। वेश्याओं के संघर्षमय और नारकीय जीवन से मुक्ति की तडप प्रस्तुत उपन्यास में दिखाई देती है। वेश्याओं के जीवन संघर्ष और उनकी समस्या पर लिखने का लंम्बे समय से प्रयास हुआ है। प्रेमचंदने भी इसका सेवासदन उपन्यास में प्रयास किया था। मोहनदास नैमिशराय ने राष्ट्रव्यापी जनचेतना और सुधारवादी अवधारणा को व्यापक प्रसार करने के लिए समाज के दलित और शोषित वर्ग की वास्तविक स्थिति को प्रकट किया है। मोहनदास नैमिशराय ने वेश्याओं के जीवन के बारे में अपनी कलम से तीखा व्यंग्य किया है।

मोहनदास नैमिशराय ने वेश्या व्यवसाय को नजदीक से देखा है उसे परखा है। उपकी सोच ऐसी बनी है कि, इस व्यवसाय में गरीब और आर्थिक पीडित महिलाओं का ही वेश्य व्यवसाय करने के लिए मजबूर किया जाता है। वेश्या के कारण पूरे देश में वेश्या व्यवसाय फैल रहा है। तो सरकार ने इस व्यवसाय को बंद करना चाहिए। लेकिन सरकार कुछ भी प्रामाणिक प्रयास करने के लिए तयार नही है। वेश्याएँ अपने ही राष्ट्र की बेटियाँ है। उसे भी भावनाएँ होती है। कोई भी महिला या लडकी शौक से वेश्या नही बनती उसे बनाया जाता है। कभी धार्मिक कारण तो कभी दरिद्रता का कारण होता है। आज तक वशाओ की भावनाओं को कोई समझ नही सका है। अन्य धंदो का एक समय होता है। लेकिन इनके धंदो का कोई समय नही होता। स्वतंत्रता के 75 वर्षो के बाद भी धर्म के नाम से, भगवान के नाम पर स्त्रियों पर अत्याचार हो रहा है, उनके साथ व्यभिचार हो रहा है। स्त्रियों को व्यवसाय करने के लिए मजबूर किया जा रहा है।

प्रस्तुत उपन्यास में उत्तर प्रदेश के जनकपुर शहर के इबादपुर मोहल्ले में कई वर्षो से वेश्या व्यवसाय चल रहा है। उसमें कोठी न. 08 शबनमबाई का है। उपन्यास की नायिका पार्वती है। पार्वती के साथ शबनम, मुमताज, हसीना, बीना, चम्पा, पायल, चमेली रुखसाना, बिल्किम, शम्मी, हाजरा, कुसुम, फुलक्रेजी सुमन, गफुरन आदि अनेक नारियाँ अपनी नारकीय जिंदगी जी रही है। उपन्यास की नायिका वेश्या किस प्रकार बन गई इसका स्पष्ट उल्लेख उपन्यास में किया गया है। **"बिना शिव की पार्वती शिव ने पहले इसे मंदरि में बैठाकर देवदासी बनाया। फिर मंदिर से चकले में भेज दिया। पहले मंदिर के पुजारी ने भोगा। फिर गावँ के पटेल ने बाजी मारी। दोनों का**

मन भर गया तो गावँ के सामंत, साहुकार की बारी आई, यानी हमारे समाज के जिसका जितना मान-सम्मान उतनाही देवदासी को भोगने के लिए उनके अधिकार सुरक्षित होते है। " 01 इसीलिए पार्वती हिंदू धर्म से नफरत करती है। उसे बर्बाद या रास्ते पर लाने के लिए सभी हिंदू जिम्मेदार है। शबनमबाई पढी-लिखि है। लेकिन उसे भी अपने ही मोहब्बत ने बर्बाद कर दिया है। उसे लगता था एम.ए. होने के बाद वह पीएच.डी. करेगी और ज्ञान-दान का काम करेगी। लेकिन समाज व्यवस्थाने उसे कोठे पर लाकर छोउ दिया। पत्रकार सुमित समाज में परिवर्तन लाने के लिए वेश्याओं का साक्षात्कार लेने के लिए जाता है। तो सारा अन्याय अत्याचार सामने आता है। सुमित को अनुभव आता है कि, हर एक वेश्या का अनुभव अलग-अलग होता है, जो अमानवीय लगता है। वेश्याओं कें साथ ग्राहक का ना तो कोई प्रेम होता है न भाव होता है न ही हमदर्दी। पैसा देकर कुछ मिनटों के लिए जिस्म खरीदा जाता है। और मनचाहा रौंदकर चला जाता है। एक ग्राहक के जाने के बाद उन्हें फिर से अपनी खाल नुचवाने के लिए तयार रहना पडता है। पत्रकार कोठेपर आते है तो शबनमबाई समाज का पोलखोल करते हुए कहती है कि, **"वेश्याएँ सभी को चाहिए, पत्रकारो को भी, समाज सेवको को और अभिनेत्रियों को भी, वे स्त्रियां आकर हमसे बाते करेगी। हम कैसे उठते-बैठते है कैसे बाते करते है। होठ काटकर कैसे ग्राहक फँसाती है, कैसे अंगडाई लेती है।"02** उपन्यासकार स्पष्ट करना चाहते है कि, समाज में प्रतिष्ठित समझे जानेवाले सभी वर्ग के लिए वेश्या उनकी शान बन गई है। उसका उपयोग केवल अपने हवस के लिए ही नही अपितु अनेक उद्देश्य से किया जाता है। दिनभर मर्दो की हवस का शिकार बनती इन उपेक्षित नारियों की पसलियों एवं कमर में दर्द होना, पेट में ऐंटन होना, मर्दो के शरीर की जुगुप्सा पूर्ण गंध से मतली सी छा जाना, उल्टी सी हो जाना, शराबी मर्द नशे में बिस्तर पर ही उल्टी कर देना यह उनके लिए आम लगता है। लेकिन हमारे समाज में वेश्या की ओर घृणा की नजर से देखा जाता है। हर एक ग्राहक जाते समय हवस क्षमन की आशा लेकर जाता है और बाहर निकलते ही उसे वह घृणित लगती है। वेश्याओं को कोई दिल से प्यार नही करता। इनकी यातना, पीडा को जानने की फुर्सत किसी के पास नही होती। वे तो सिर्फ वासना शांत करके चले जाते है। स्वतंतत्रता के 75 साल बाद भी दलित और वेश्याएँ आजाद नही हुई है इसपर चिंतन करना काल की अनिवार्यता है। आज भी वे पशु से बदत्तर जीवन जीने को मजबूर है। ग्रामीण तथा शहरों में भी व अपमानित है। आज भी देश की कई स्त्रियों वेश्यालयों में सड रही है। वे ऐसा जीवन जीते-जीते उब गई है, वे नारकीय जीवन में मुक्ति या आजादी चाहती है।

प्रस्तुत उपन्यास में एक तो सांप्रदायिक दंगो के दौरान मुसिबत की स्थिति में शबनमबाई और पार्वती के व्दारा सुमीत जैसे अनजान युवक को देना और दूसरा प्रसंग है। जब पूनम जैसी मासूम युवती को जबरन कल्लु दल्ले के व्दारा वेश्या व्यवसाय में धकेला जा रहा था, उसे बेरहमी से पीटा जा रहा था, उस पर गंदी-गंदी गालियाँ की बौछार बरसाई जा रही थी। तब शबनमबाई एवं पार्वती मौका देखकर पूनम को उस पिंजरे से मुक्त कर देती है। उपन्यास में शबनमबाई, पार्वती आदि दलित पीडितओं के मन में मंदीर, देवता और ईश्वर के प्रति अलगाव नफरत तथा नकार की भावना पैदा करने का प्रयास किया है। **"कहते है न कि जब तक उपर वाला नही चाहता एक पत्त भी नही हिलता। पर कौन है उपर वाला, उसके भगवान होने का औचित्य क्या है, क्या उद्देश्य है उसके अस्तित्व का " 03** वस्तुत: सुमीत दलित देवदासियाँ एवं वेश्याओं को उनके नारकीय जीवन से मुक्त करने के लिए पहल करनेवाला युवक है। जो उपन्यासकार के विचारों का वाहक है। अम्बेडकरी विचारों का प्रभाव सुमीत पर पडा हुआ है। सुमीत और पार्वती अपने विचारों से एक-दूसरे के प्रति आकर्षित होते है। सुमीत शबनमबाई और पार्वती को यह अहसास दिलाता है कि, वह एक न एक दिन इस नारकीय जीवन से मुक्ति दिलाएगा। सभी युवा वेश्याओं को भी कहता है कि, वह उन्हे उस नरक की जिंदगी से छुटकारा दिलाएगा। सभी युवा वेश्याएँ इस घृणित काम को छोडने

का ऐलान करती है। अत: कोई भी नारी शौक से इस घृणित काम को स्वीकारती नही है। उसपर लादा जाता है। जरुरत है तो सुमीत जैसे युवकों की। जो उनको अपना ले और सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान करे। उपन्यास के अंत में दिखाया है कि, पार्वती का वेश्या व्यवसाय छोडना शबनमबाई को अच्छा लगता है वह सभी शेष युवा वेश्या को वह व्यवसाय छोडकर घर बसाकर प्रतिष्ठित जीवन जीने को कहती है। पार्वती इस व्यवसाय से मुखर जाने के कारण इस व्यवसाय से जुडे गुंडे, दलाल बेचैन हो उठते है। क्योंकि इसका आसर सीधा उनके मिल्कियत पर होता है। इसीलिए वह पार्वती को धमकाते है। शबनम को भी धमकाते है। दल्ले किसी पूनम नाम की लडकी को लेकर आता है, और वेश्या बनने के लिए कहता है। तब शबनमबाई उसे फटकारती हुए कहती है कि, **"कान खोलकर सुनो लो, मै और मेरी मै और मेरी बेटियाँ धंधा छोड चुकी है। मेरी सलाह मानो तो तुम भी इस धंधे से अब तौबा कर लो। उपर वाले को जवाब नही देना क्या तुमने।"04** पूनम सबेरे से पहले ही शमबनमबाई की मदत से भाग जाती है। दल्ला सुमीत को डरा-धमकाकर पुलिस गुंडे पीटते है, सुमीत को सर पर चोट भी आती है। पुलिस की ही मदत से पार्वती को इस्पेक्टर बिना वजह हवालात में बंद कर देता है। उसे छुडाने के लिए शबनमबाई थाने पँहुच जाती है। लेकिन उसका कोई नही सुनता। वे सीधा राष्ट्रपति से फोन पर बात करती है। थाने में वेश्याओं के समुह नारेबाजी होती है। नारेबाजी और हुल्लडबाजी को रोकने के लिए पुलिस की लाटियाँ बरसती है। एक सीधी लाठी शबनमबाई के सिर पर गहरी चोट करती है। सिर फुटकर खून बहने लगता है। राष्ट्रपति आने के बाद हवालात का ताला खोला जाता है और पार्वती को रिहा किया जाता है। शबनमबाई आखरी सांसे गीन रही थी, फिर भी वो सभी वेश्याओं को इस दलदल से मुक्त होने का संदेशा देती है।

सारांश :

वेश्या व्यवसाय करनेवाली अक्सर लडकियाँ गरीब घर से, बेसहारा, उपेक्षित ही होती है। प्रस्थापित समाज उनके बारे में कभी भी सोचता नही है। समाज में नारी और दलित उपेक्षित है। नारी के शोषण का यह भी कारण है कि, वे चुपचुप सहती है। इसीलिए और अधिक अन्याय उनपर होता है। आज भी भारतीय समाज व्यवस्था में धर्म के नाम पर तो कभी भगवान के नाम पर स्त्रियों पर अत्याचार हो रहा है। उनके साथ व्यभिचार हो रहा है। स्त्रियों को वेश्या व्यवसाय करने के लिए मजबूर किया जा रहा है। प्रदर्शनकारी मंदीर व्यवस्था में पुजारी के गले में जनेउ दिखाई देता है, माथे पर लंबा तिलक होता है, लेकिन वही पुजारी खुले आम अनाचार करते फिरता है उसके विरोध में कोई कुछ नही बोलता है। न जाने भारतीय वर्णव्यवस्था में ऐसे कितने पुजारी है जो उपेक्षित नारियों का शोषण कर रहे है। धार्मिक रुप से नारी की ओर देखने का नजरियाँ बदलना चाहिए। वह लक्ष्मी नही है, ना ही मंदीर की देवी है वह ता केवल जीवन साथी होती है। जब तक पुरूष स्वयं को नारी में देखता नही तब तक नारी बंधनो से मुक्त नही हो पाती। आज भी भारतीय संसद में केवल वेश्याओं के लिए अलग से उनके विकास के लिए राशी का प्रावधान नही है। यह अत्यंत दुख:द बात है। वेश्या व्यवसाय यह एक राष्ट्रीय प्रश्न बन पडा है। विश्व में सभी राष्ट्र में वेश्या व्यवसाय होता है। सभी राष्ट्रों में उनकी समस्यों के ढेर पडे हुए है। लेकिन आज तक किसी भी राष्ट्र ने इसे जड से उखाडने के लिए प्रयास किए नही है। वेश्याओं का जीवन जानवर से भी बदत्तर होता जा रहा है। उन्हें हवस का शिकार बनना पडता है। लेकिन अब वेश्याओं में जागृति आने लगी है। उनके जीवन में बदलाव आना आरंभ हो चुका है। इसके लिए अब सामाजिक सुधारकों, साहित्यकारों तथा अन्य संस्थाओं व्दारा उनके जीवन में उजाला लाने का प्रयास हो रहा है। उपन्यासकार ने उपन्यास में नारी शोषण को केंद्र में रखकर वेश्यावृत्ति जैसी भीषण समस्या से उबरने के उपाय बताये है। यह उपन्यास समाज का सच्चा दस्तावेज है। उपेक्षित नारी के जीवन के कटु सत्य को परोसने का काम किया है।

संदर्भ :

01) मोहनदास नैमिषराय : आज बाजार बंद है पृष्ठ क्र.33 वाणी प्रकाशन दिल्ली व्दितीय संस्करण 2006।

02) मोहनदास नैमिषराय : आज बाजार बंद है पृष्ठ क्र.38 वाणी प्रकाशन दिल्ली व्दितीय संस्करण 2006।

03) मोहनदास नैमिषराय : आज बाजार बंद है पृष्ठ क्र.93 वाणी प्रकाशन दिल्लीव्दितीय संस्करण 2006।

04) मोहनदास नैमिषराय : आज बाजार बंद है पृष्ठ क्र.129 वाणी प्रकाशन दिल्ली व्दितीय संस्करण 2006।

संदर्भ ग्रंथ :

05) गंगा सहाय मीणा : आदिवासी साहित्य विमर्श।

06) डॉ.धर्मवीर : दलित चिंतन का विकास ।

07) प्रेमिला कपूर : कामकाजी भारतीय नारी ।

08) गणेशदास : स्वातंत्रोत्तर हिंदी कहानी में नारी के विविध रुप ।

09) सिमोन द बोउवार : स्त्री उपेक्षिता ।

10) डॉ.मुक्ता त्यागी : समकालीन महिला उपन्यासकारों के उपन्यास में नारी विमर्श ।

11) डॉ.नागनाथ कुंटे : आँचलिक उपन्यासों में नारी के विविध रुप ।

भारत की राजभाषा के रूप में हिंदी का स्थान

प्रणिता प्रभाकरराव जहागीरदार

शोधछात्रा –

राजभाषा का अर्थ है संविधान द्वारा स्वीकृत सरकारी कामकाज की भाषा। किसी देष का सरकारी कामकाज जिस भाषा में करने का कोई निर्देष संविधान के प्रावधानों द्वारा दिया जाता है, वह उस देष की राजभाषा कही जाती है।

भारत के संविधान में हिंदी भाषा को राजभाषा का दर्जा दिया गया है। किंन्तु साथ ही यह प्रावधान किया गया है कि अंग्रेजी भाषा में भी केंन्द्र सरकार अपना कामकाज तब तक कर सकती है जब तक हिंदी पूरी तरह राजभाषा के रूप में स्वीकार्य नहीं हो जाती।

प्रारंभ में संविधान लागू होते समय सन १९५० में यह समय सीमा १५ वर्षे के लिए थी अर्थात अंग्रेजी का प्रयोग सरकारी कामकाज के लिए १९६५ तक ही हो सकता था। किंतु बाद में संविधान संषोधन के द्वारा इस अवधि को अनिष्चित काल के लिए बढ़ा दिया गया। यही कारण है कि संविधान द्वारा हिंदी को राजभाषा घोषित किये जाने पर भी केंद्र सरकार का अधिकांष सरकारी कामकाज अंग्रेजी में ही रहा है। और वह अभी तक अपना वर्चस्व बनाए हुए है।

केंन्द्र सरकार की राजभाषा के अतिरिक्त अनेक राज्यों की राजभाषा के रूप में भी हिंदी का प्रयोग स्वीकृत है।

जिंन राज्यों की राजभाषा हिंदी स्वीकृत है, वे है – उत्तरप्रदेष, हिमाचलप्रदेष, दिल्ली, हरियाना, मध्यप्रदेष, राजस्थान, बिहार, झारखण्ड, छतीसगढ एवं उत्तरांचल।

इन राज्यों के अलावा अन्य राज्यों ने अपनी प्रादेषिक भाषा को राजभाषा का दर्जा दिया है।

यदपि भारत एक बहुभाषायी देष था किंन्तु बहुत लंबे काल से हिंदी या उसका कोई स्वरूप इसके बहुत बडे भाग पर सम्पर्क भाषा के रूप में प्रयुक्त होता था।

भक्तिकाल में उत्तर से दक्षिण तक, पूरब से पष्चिम तक अनेक सन्तोने हिंदी में अपनी रचनाएँ की। स्वतंत्रता आन्दोलन में हिन्दी पत्रकारितायें महान भूमिका अदा की। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, महात्मा गांधी सुभाष चन्द्र बोस सुब्रह्मण्य भारती आदि अनेकानेक लोगो ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने का सपना देखा था।

संविधान सभा ने लम्बी चर्चा के बाद १४ सितंम्बर सन १९४९ को हिंदी को भार की राजभाषा स्वीकारा गया। इसके बाद संविधान में अनुछेद ३४३ से ३५१ तक राजभाषा के सम्बन्ध में व्यवस्था की गयी इसकी स्मृति को ताजा रखने के लिए १४ (सितम्बर) का दिन प्रतिवर्ष हिंदी दिवस के रूप में मनाया जाता है। ध्यातव्य है कि भारतीय संविधान में राष्ट्रभाषा का उल्लेख नहीं है।

१४ सितंम्बर की शाम को संविधान सभा में हुई बहस के समापन के बाद जब संविधान को भाषा सम्बन्धी तत्कालीन भाग १४ क और वर्तमान भाग १७ संविधान का भाग बन गया, तब डॉ.राजेंद्र प्रसाद ने अपने भाषण में बधाई के कुछ शब्द उन्होंने कहा।

श्आज पहलीबार ऐसा संविधान बना है। जब कि हमने अपने संविधान में एक भाषा रखी है। जो संघ के प्रषासन की भाषा होगी। इस अपूर्व अध्याय का देष के निर्माण पर बहुत प्रभाव पडेगाश उन्होंने कहा यह मानसिक दषा का भी प्रष्न है। जिसका हमारे समस्त जीवन पर प्रभाव पडेगा हम केंद्र में जिस भाषा का प्रयोग करेंगे उससे हम एक एक दूसरे के निकटतर आते जाएँगे अंग्रेजी के स्थान पर हमने एक भारतीय भाषा को अपनाया है। इसमे आवष्य मे हमारे संबंध घनिष्ठतर होंगे। विषेषतः इसलिए कि हमारी परम्पराएँ एक ही है, हमारी संस्कृति एक ही है और हमारी सभ्यता में सब बाते एक ही है। अतएवं यदि हम इस सुत्र को स्वीकार नहीं करते तो परिणाम यह होता कि या तो इस देष में बहुत सी भाषाओं का प्रयोग होता या वे प्रांत प्रथक हो जाते जो बाह्य होकर किसी भाषा विषेष को स्वीकार करना नहीं चाहते थे। हमने यथासम्भव बुध्दिमानी का कार्य किया है। और मुझे हर्ष है। मुझे प्रसन्नता है और मुझे आषा है कि भावी संतति इसके लिए हमारी सराहना करेंगी।

हिन्दी दीर्घकाल से अखण्ड भारत में जन-जन के पारस्परिक सम्पर्क की भाषा रही है। भक्तिकाल में अनेक सन्त कवियों ने हिंदी में साहित्य रचना की और लोगों का मार्गदर्षन किया केवल उत्तरी भारत की नहीं बल्की दक्षिण भारत के आचार्ये वल्लभाचार्य, रामानुज, रामानन्द आदि ने भी इसी भाषा के माध्यम से अपने मतो का प्रचार किया था।

स्वतंत्रता के बाद १४-९-१९४९ संविधान सभा ने हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया। १०-०५-१९६३ के प्रावधान व जवाहरलाल नेहरू के आष्वासन को ध्यान में रखते हुए राजभाषा अधिनियम बनाया गया।

इसके अनुसार हिंदी संघ की राजभाषा व अंग्रेजी सह-राजभाषा के रूप में प्रयोम में लाई गई। १९७६ संसदीय राजभाषा समिती गठन किया हे। नागपूर में १९७५ में प्रथम विश्व हिंदी संमेलन आयोजित किया गया।

१९७७ में अटल बिहारी वाजपेयी तत्कालिन मंत्री ने पहली बार संयुक्त राष्ट्र की आम सभा को हिंदी में संबोधित किया। १९८८ में संयुक्त राष्ट्र की जनरले असेम्बली में तत्कालीन विदेष मन्त्री श्री नरसिंह राव जी हिंदी में बोले। १९९६ में महात्मा गांधी अंन्तराष्ट्रिय हिंदी विष्वविद्यालय की वर्धा में स्थापना कियी गई।

अगस्त-१९९९ विष्व हिंदी सचिवालय की संकल्पना को मूर्त रूप देने के लिए भारत और मॉरीषस की सरकारों के बीच २० अगस्त १९९९ को एक समझोता ज्ञापन सपन्न किया १२ नवबंर २००२ को मॉरीषियस के मंत्रिमण्डल द्वारा विश्व हिंदी सचिवालय अधिनियम पारित किया गया और भारत सरकार तथा मॉरिषियस की सरकार के बीच २१ नवम्बर २००१ को एक द्विपक्षीय करार संपन्न किया गया। विष्व हिंदी सचिवालय ने ११ फरवरी २००८ से औपचारिक रूप से कार्ये करना आरंभ कर दिया १४-०९-१९९९ संघ की राजभाषा हिंदी की स्वर्ण जयन्ती मनाई गई। १७ सितंबर २००१ को भारत सरकार द्वारा मॉरिषस में विश्व हिंदी सचिवाल्य की स्थापना की।

वर्षो की यात्रा के पष्चात भाषा में निरंतर परिवर्तन होते रहे है। और भाषा का महत्व भी लगातार बढ़ता गया। समाज के बीच संवाद सम्प्रेषण और संबंध स्थापन भाषा का प्रार्थमिक कार्ये किंतु भाषा समाज की एक सीधी और सरल रेखा में चलने वाली इकाई नहीं है। समाज तथा इसके सदस्यों के अस्तित्व और चरित्र के अनेक आयाम होते है। और इन सभी आयामें के संदर्भ में भाषा की विषिष्ट भूमिका होती है। भारत में विविध भाषाओं में संवाद होता है। इन सभी भाषाओ की अपनी एक यात्रा रही है लेकिन भारतीय समाज की सम्पर्क भाषा हिन्दी ने जहाँ वैदिक संस्कृत से यात्रा करते हुए आधुनिक हिन्दी का स्वरूप ग्रहण किया है। वह एक सामाजिक क्रिया का आधार है। निरतंर परिवर्तनों की घाट पर चलकर हिंदी अपने अनेक रूपों के साथ वर्तमान में समाज के सम्मुख उपस्थित है।

हिंदी की प्रयोजनीयता के आधार पर उसके विभिन्न रूप जैसे - साहित्यिक हिंदी कार्यालयी हिंदी व्यावसायिक हिंदी विधीपरक हिंदी जनसंचार के माद्यमों की हिंदी वैज्ञानिकी और सामाजिक हिंदी।

राजभाषा का अर्थे है संविधान द्वारा स्वीकृत सरकारी कामकाज की भाषा किसी देष का सरकारी कामकाज की भाषा में करने का कोई निर्देष संविधान के प्रावधानों द्वारा दिया जाता है। वह उस देष की राजभाषा कही जाती है। केंद्र सरकार की राजभाषा के अतिरिक्त अनेक राज्यों की राजभाषा के रूप में भी हिंदी का प्रयोग स्वीकृत है। जिन राज्यों की राजभाषा हिंदी स्वीकृत है वे है - एवं उत्तरांचल इन राज्यों के अलावा अन्य राज्यों ने अपनी प्रादेषिक भाषा को राजभाषा का दर्जा दिया है।

राजभाषा अधिनियम १९७६ के अंतर्गत हिंदी का अधिकाधिक प्रयोग करने के लिए कुछ प्रभावी कदम उठाये गये है। इस अधिनियम के प्रावधान अकसार को उत्तर प्रदेष, मध्यप्रदेष, बिहार, राजस्थान, हरियाणा, हिमाचल प्रदेष और संघ क्षेत्र दिल्ली (ये सभी हिंदी भाषा क्षेत्र)

ख)इस श्रेणी में पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, चण्डीगढ, अंदमान-निकोबार को रखा गया है।

ग)शेष सभी प्रदेष एवं संघ शामिल क्षेत्र ग श्रेणी में रखे गये।

इसवर्गीकरण के उपरान्त यह निर्देष दिया गया कि -

१) केंन्द्रीय कार्यालयो मे क श्रेणी के राज्यो को भेजे जाने वाले सभी पत्र हिंदी में देवनागरी लिपि में भेजे जायेंगे यदि कोई पत्र अंग्रेजी में भेजा जा रहा है, तो अनुवाद भी आवष्यक भेजा जायेगा।

ख) श्रेणी राज्यों से पत्रव्यवहार हिंदी अंग्रेजी दोनों भाषाओ में किया जा सकता है।

ग श्रेणी के राज्यों से पत्र व्यवहार अंग्रेजी में किया जायेगा।

केंद्रीय कार्यालयो में हिंदी में आक्षत पत्रो का उत्तर अनिवार्यतः हिंदी में दिया जायेगा।

केंद्र सरकार के कार्यालयो में सभी प्रपत्र, रजिस्टर हिंदी अंग्रेजी दोनो में होंगे।

केन्द्रीय सरकारी के कर्मचारी हिंदी या अंग्रेजी में टिपणी लिख सकेंगे।

जहाँ ८० प्रतिषत से अधिक कर्मचारी हिंदी में कार्य करते हों वहाँ टिप्पणी, प्रारूप अदिकाम केवल हिंदी में ही करने को कहा जा सकता है।

प्रत्येक कार्यालय के प्रधान का यह दायित्व होंगा वह राजभाषा अधिनियमो एवं उपबन्धों का समुचित अनुपालन कराये।

स्पष्ट है कि संवैधानिक दृष्टि से हिंदी की स्थिति बडी मजबूत है, आज सभी क्षेत्र जैसे, जनसंचार, सिनेमा, मनोरंजन आंतराष्ट्रीय क्षेत्र में हिंदी भाष्य अपना स्थान बना चुकी है।

हमारे राजदूत विदेष में हिंदी भाषा को कामकाजी भाषा के रूप में प्रयुक्त कर रहे और यह भाषा आंतराष्ट्रीय रूप में गरिमा प्राप्त कर रही है।

हिंदी भाषा राजभाषा के कारण उसकी गरिमा जनमानस में फैल चुकी है। रेलविभाग डाकविभाग केंद्रीय निदेषानालय हर जगह हिंदी भाषा का ही प्रभूत्व है।

राजभाषा के रूप में हिंदी भाषा ने अनेक राज्यो में अपना मजबूत स्थान बना चुकी है। हमारे संविधान में भी उसको राजभाषा का स्थान मिल चुका है।

यह भाषा इतनी वैज्ञानिक और सरल तथा जनसंचार की होने के कारण वह अपनी अमिट छाप सभी जनमानस पर छा चुकी है। भारत के दस राज्य में यह भाषा बोली जाती है। भारत में २८ राज्य और ९ संघप्रदेष है। सवेक्षण यदि करे तो हिंदी भाषा बोलनेवाले और जाननेवाले ७५ प्रतिषत लोग हिंदी है। इसीलिए यह भाषा सभी राज्य में जनसंपर्क की भाषा बनती जा रही है। इस भाषा का व्याकरण, सरलता शैली और रोचकता तथा साहित्य के कारण हर व्यक्ती इस की और आकर्षित हो रहा है।

संसद के लोकसभा और राज्यसभा में हिंदी भाषा का स्थान अपना अलग है। मुहावरे और लोकोक्तीयों तथा सुविचार तथा सुभाषित के द्वारा सभी लोकसभा सदस्य तथा राज्य सभा सदस्य अपने भाषण में प्रयोग करके सब लोगों को भाषण द्वारा मंत्रमुग्ध कर देते है। ऐसे इस भाषा की पहचान है।

हिंदी भाषा की संवैधानिक स्थिति पर हम नजर डाले तो सरकारी कामकाज का भाषा राजभाषा के रूप में हिंदी को मान्यता मिली है। यह प्रावधान संविधान की धारा ३४३ से ३५१ अनुछेद में वर्णित है।

अनुछेद ३४३ में संघ की राजभाषा के रूप में हिंदी व देवनागरी को लिपि के रूप में मान्यता मिली।

राज भाषा आयोग १९५५ के अनुसार हिंदी सर्वाधिक बोली व समझी जाने वाली भाषा है। यही संपूर्ण भारत का एक माध्यत है।

चौदह वर्षे की उम्र तक भारत के प्रत्येक क्षेत्र को हिंदी का ज्ञान करा देना चाहिए।

भारत सरकार के प्रकाषन अधिक-से अधिक हिंदी में हो संसद और विधानमण्डलों में हिंदी और प्रादेषिक भाषाओं का व्यवहार होना चाहिए प्रतियोगी परीक्षाओ में हिंदी का एक अनिवार्य प्रष्नपत्र रखाजाए अनुछेद ३४४ के अनुसार आरंभ से ५ वर्षे की समाप्ती पर राष्ट्रपति एक आयोग गठित करेगा जो निष्चित की जाने वाली एक प्रक्रिया के अनुसार राष्ट्रपति की सिफारिष करेगा कि किन शासकीय प्रयोजनो के लिए हिंदी का प्रयोग अधिकाधिक किया जा सकता है। सम्पर्क भाषा यह भाषा है जो हमे अन्य लोगो के सम्पर्क में लाए।

भारत में हिंदी सम्पर्क भाषा काफी लंबे समय से रही है। दक्षिण से आकर मधवाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बकाचार्य और अन्य आचार्य सम्पूर्ण भारत में इसी भाषा के माध्यम से अपने धर्मिक विचारों का प्रचार करते रहे।

रॉबर्ट एण्डरसन के अनुसार ष्वाणी लेखन या संकेतोद्वारा विचारो, अभिमतो या सूचना का विविध विनिमय करना संचार कहलाता है। संचार एक अर्थपूर्ण संदेष है।

जिससे एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से सूचना का आदान-प्रदान करता है संचार से सूचनाओं का आदान प्रदान होने के साथ-साथ जनसंपर्क बढ़ता है। अत्याधिक ज्ञानवान और शक्तिषाली होता, इस जनसंचार में हिंदी भाष्य का प्रयोग बहुत मात्रा में हो रहा है। इसका उपयोग कम्पनी, प्रबंधन, विपणन, बँकिंग, बीमा, षिक्षा, घरेलू ऑकडो के प्रोसोसिंग आदि तर्क फला हुआ है। इस सारे क्षेत्र हिंदी भाषा अपना वर्चस्व बना चुकी है। टीवी, रेडियो, इण्टरनेट आदि पर हिंदी का बहुत प्रयोग हो रहा है। हिंदी ही केवल ऐसी संम्पर्क और जनभाषा और राजभाषा जिसके माध्यम से दूर-दराज ग्रामीण क्षेत्रों में यूचनाएँ पहुँचाई जाती है। टिव्हीपर विज्ञापन भी हिंदी में दिखाए जाते है।

संचार माध्यमों में हिंदी का इतना अधिक प्रयोग हुआ है। जिसमे हिंदी का भविष्य उज्ज्वल बना है। हिंदी भाषी फिल्में भी हिंदी का प्रचार प्रसार करने में सहाय्यक सिध्द हुई है।

आज का युग प्रौद्योगिकी, सूचना तथा संचार का युग है, सूचना प्रौद्योगिकी, तकनीकी उपकरणो के माध्यम से सूचनाओं का संकलन तथा संस्पष्ण करता है। आज के युग में कम्प्युटर के द्वारा सूचना प्रौयोगिकी के क्षेत्र में जो नई क्रांन्ती हुई है। वह है - यान्त्रिकी और कम्प्यूटर की नई भाषाई माँगों को पूरा करना इन नई-नई भाषाओं में हिंदी का भी अपना विषेष महत्त्व है। हिंदी विष्व की तीसरी सबसे बडी भाषा है। हिंदी की शब्द-सम्पदा को नित विस्तार होने से कम्प्युटर और हिंदी एक-दूसरे के पूरक हो गए है। धीरे-धीरे अन्य देषो में हिंदी के पठन-पाठन और प्रचार प्रसार में तेजी से वृध्दि हुई है। कम्प्युटर युग में हिंदी के प्रयोग की सम्भावनाओ को ध्यान में रखते हुए इलेक्ट्रॉनिक विभाग ने भारतीय भाषाओ के लिए तकनीकी विकास के अन्तर्गत विभिन्न परियोजनाओं को शुरू किया है।

आज विण्डोज प्लेटफार्म में कार्य करनेवाले हिंदी के अनेक सॉफ्टवेयर बाजार में उपलब्ध है, जैसे - सी डॅक, लीप, ऑफिस, अक्षरफॉर, विण्डोज आदि हिंदी भाषा में वेब पेज विकसित करने के लिए प्लग-इन पॅकेट तैयार किया गया है। जिससे कोई भी व्यक्ति या संस्था अपना वेब पेज हिंदी में प्रकाषित कर सकता है।

कम्प्युटर एवं इंटरनेट के परस्पर सहयोग से हिंदी भाषा का प्रसार तीव्र गति से होने की सम्भावनाए बढ़ गई है। माइक्रोसॉफ्ट, रेडिफ, गुगल, याहू, आदि विदेषी कम्पनियाँ अपनी वेबसाईट पर हिंदी भाषा को स्थान दे रही है। इन्टरनेट सेवा के अंतर्गत इ-मेल, वॉइसमेल आदि के कारण हिंदी भाषा के विकास व सम्प्रेषण की सम्भावनाएँ बढ गई है। हिंदी वर्डनेट पर हिंदी शब्दों के एक विषाल भण्डार को विकसित किया गया है।

इस प्रकार हिन्दी के प्रचार प्रसार में वैष्विक रूप से महत्तवपूर्ण वृध्दी कम्प्युटर के कारण ही रही है।

भारत की राजभाषा के रूप में हिंदी ने अपना स्थान विभिन्न राज्यों में बना लिया है। तथा इसका विस्तार अन्य राज्यों में भी हो रहा हैं। हिंदी का प्रभाव हर क्षेत्र में हो रहा है। इसलिए यह भाषा वैष्विक स्तर पर अपना प्रभाव बनाए हुई है।

हमारे वर्तमान राजकीय क्षेत्र में तथा राजनीति में इसका प्रभाव अधिक बढता जा रहा है। लोग अधिक से अधिक इस भाषा की ओर आकर्षित होते जा रहे है। यह इस हमारे वर्तमान भारत सरकार की बडी उपलब्धी है। यह केवल राजभाषा न होते हुए वह राष्ट्रीय भाषा का स्थान बनाने जा रही है। यह भाषा षिषू से लेकर बूढे व्यक्ति की जुबान की भाषा बन चुकी है। हर नारा, वचन विज्ञापन प्रचार और प्रसार में अग्रणी भुमिका निभाती जा रही है। हिंदी राजभाषा इसलिए बनी है क्योंकि वह सरल, अगम्य रोचक तथा संपर्क सम्मन्वयता यह अदभूत गुण इस भाषा में है।

बँक, डाकसेवा, रेल्वे तथा हिंदी भाषा ने अपनी अमिट छाप छोडी है। इस भाषा के बिना सब सुना लगता है। भाषा में एकरूपता तथा देष के हर व्यक्ति में अपनत्व का भाव राजभाषा हिंदी ने बनाया है। यह भारत के हर नागरीक की भाषा बन चुकी है। यह हमारे व्यक्तीत्व और भावनाओं की भाषा है। इसका स्थान अग्रणी है। और आनेवाले समय में यह भाषा अपना स्थान बनाते हुए वह देष तथा विदेष विश्व स्तर पर अपनी भाषायी स्वरो से गुंज उठेगी और भारत देष का स्थान गरिमा बढायेगी ऐसी हमारी प्यारी दुलारी लाडली हमारी हिंदी है।

संदर्भ ग्रंथ

१. अरिहंत पब्लिकेषन बूक हिंदी साहित्य हिंदी भाषा और उसका विकास-लेखक-डिम्पल पूनिया, संदिप शर्मापृ.१,१०,११,१२
२. प्रतियोगिता साहित्य पुस्तक डॉ.अषोक तिवारी पृ.२३,२४,२५
३. प्रतियोगिता हिंदी साहित्य पुस्तके लेखक डॉ.दिलीप पाण्डेय पृ.११,१२
4. him.wikbooks-org.

गीतांजलि श्री के उपन्यासों में अकेलापन और अजनबीपन

शिंदे संतोष सखाराम

santoshkumarshinde69@gmail.com, 9545862602

गीतांजलि श्री के उपन्यासों में अकेलेपन और अजनबीपन की अभिव्यक्ति हुई है । और यह अभिव्यक्ति अनेक तरह से व्यक्त हुई है । बुढ़ापे का अकेलापन, तलाक के बाद का अकेलापन, साथी की मृत्यु का अकेलापन, विधवा का अकेलापन, आदि । अकेलापन एक सार्वभौमिक मानवीय भावना है, जो लगातार जटिल होती जा रही है । अकेलेपन का कोई एक कारण नहीं होता है । इसके तो अनेक कारण होते है । यह एक श्रृंखला की लंबी कड़ी के समान होता है । भारत में संयुक्त परिवार होने से कभी भी इसे समस्या के रूप में नहीं देखा गया किंतु संयुक्त परिवार का धीरे-धीरे एकल परिवार में परिवर्तित होना एक समस्या बन गया है । इस भागमभाग जीवन में लोग अपने स्वार्थ को, अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने में लगे हुए हैं और अपने परिवार से धीरे-धीरे दूर होते जा रहे हैं । आधुनिक मनुष्य प्रकृति, ईश्वर तथा अपने समाज से दूर होता जा रहा है ।

मनुष्य आज चांद पर पहुंच गया है और सभी ग्रहों से भी परिचित है । किंतु अपने पड़ोसी से परिचित नहीं है । सामान्य अर्थों में कहें तो कह सकते है कि आज मनुष्य अपनी इच्छाओं, अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति आदि करने में इतना खो गया है कि वह अपने ही लोगों से दूर होता जा रहा है । उनमें प्रेम भावना, अपनापन, रूठना मनाना, लुप्त होती नजर आ रही है । भारत में वैज्ञानिक उन्नति तथा औद्योगीकरण के फलस्वरुप पुरानी मान्यताएँ अर्थहीन हो गई हैं । जिसके परिणामस्वरुप अकेलेपन और अजनबीपन की समस्या उत्पन्न हो गई है । अकेलेपन में व्यक्ति के मन में एक मूर्ति ऊपर जाती है, चाहे वह काल्पनिक हो या यथार्थ । मशीनी सभ्यता ने आज मनुष्य के बीच अलगाव की स्थिति पैदा कर दी है । इन सभी से निकलने के लिए मनुष्य छटपटा रहा है । और यही छटपटाहट गीतांजलि श्री की रचनाओं में दिखाई देती है। डॉ. वंदना चौबे गीतांजलि श्री के 'रेत- समाधि' नामक उपन्यास के बारे में कहती हैं- "यह उपन्यास वृद्ध विमर्श, स्त्री विमर्श और थर्ड जेंडर के विमर्श को नये ढंग से प्रस्तुत करता है । उपन्यास में अनेक क्षेपक कथाएं बेहद महीन, बारीक भाषा के साथ आगे बढ़ती नजर आती हैं, स्त्री देह का भी वर्णन अनेक रूपक और प्रतीकों के माध्यम से किया गया है.... जहां अम्मा की चूड़ियाँ रात भर बेटी से बात करती हैं और एक बूढ़ी औरत की दैहिक सूत्रों को खोलती नजर आती है । रेत स्त्री के खालीपन की निशानी है । उन्होंने कहा की विभाजन की त्रासदी का जब उपन्यास में जिक्र आता है तब वह सभी लेखक जिन्होंने मानवीय ढंग से भारत- पाक पार्टीशन पर अपनी लेखनी का जादू चलाया है । अनूठे अंदाज में उपन्यास में रंगमंच पर नजर आते हैं।"1 उपन्यास में वृद्ध विमर्श को चित्रित किया गया है । गीतांजलि श्री के उपन्यासों में समाज का चित्रण है और समाज का चित्रण कर अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता व्यक्त की है ।

'खाली जगह' नामक उपन्यास में जब लड़का अपने कमरे में जाता है तो वहां भीगे बालों में लड़की बैठी है जिसे देख उसके मन में प्रेम भावना जागृत हो जाती है । प्रेम का प्रतीकात्मक रूप दिखाई देता है । "सदियों से होता आया यह है यह पल, लड़के और लड़की के बीच, जैसे ही उनकी आंखें एक-दूसरे में फंस जाती हैं । कि कौन शिकारी है, कौन शिकार,पता नहीं चलता । अपलक ताकती हैं आंखें की झपक दीं तो शिकार भाग जाएगा या शिकारी मार खाएगा ।"2 इस उपन्यास में प्रेम भावना विशेष रूप से व्यक्त हुई है । गीतांजलि श्री के कथा साहित्य में प्रेम भाव की गहरी अभिव्यक्ति हुई है । माई नामक उपन्यास में लेखिका ने प्रेम भावना को व्यक्त किया है- "युवा काल की बेतहाशा बाढ़ का उन्माद पढ़ा और यह विश्वास करते हुए कि, कुछ बहुत बड़ा, बहुत ही नाटकीय घट रहा है मेरे साथ, किसी की जिंदगी और मौत की डोर आ गई है मेरे हाथ में मैंने गंभीर होकर कहा, क्या बताएं माई, कितना कठिन है सब कुछ, कभी बताएंगे ।"3 गीतांजलि स्त्री के उपन्यास 'माई' और 'खाली जगह' में प्रेम भावना विशेष

रूप से व्यक्त हुई है किंतु प्रेम सफलता तक नहीं पहुंचा । 'खाली जगह' उपन्यास में नियति का कठोर विधान है, वहीं माई उपन्यास में जहां प्रेम की महाविद्यालयीन जीवन की भावुकता है ।

लेखक किसी व्यक्ति के बाह्य व्यक्तित्व को प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त कर देता है किंतु व्यक्ति के आंतरिक व्यक्तित्व को व्याख्यायित करना बहुत कठिन कार्य होता है । 'माई' उपन्यास में मनोवैज्ञानिकता का निरूपण हुआ है । 'माई' उपन्यास की पात्र सुनैना कहती है-"हमें 'इंडी विजुअल' का निरूपण ताकत का गर्व था, हमें अपनी उम्र के जोर का दर्प था । मुझे भी अपने अकेलेपन और स्वालंबन से जरा भी डर नहीं लगता था जबकि मेरे इर्द-गिर्द सब कुछ उतना भी ठोस नहीं रह गया था । शायद एक 'खोल' था जो हम बचपन से बुनते आए थे । वह हमें इतना प्यारा हो चुका था कि किस आकार पर मढ़ रहे हैं वह चिंता ही हमने नहीं की । बस उस खोल की हिफाजत में दूसरों को लताड़ते रहे ।"4 वह वैयक्तिक यथार्थबोध का अपने साहित्य में चित्रण करने वाले लेखकों में अज्ञेय का नाम विशेष रूप से लिया जाता है । उनकी रचनाओं में मानवीय संवेदनाएँ अभिव्यक्त होती हैं । अज्ञेय की दृष्टि अंतर्मन को पढ़ने में सक्षम है । उनकी रचनाएँ व्यक्ति केंद्रित होती हैं, जिसमें व्यक्ति का अंतद्वंद अत्यंत संवेदनशीलता से व्यक्त होता है एवं वैयक्तिक यथार्थबोध सूक्ष्मता से परिलक्षित होता है ।

गीतांजलि श्री कृत 'तिरोहित' नामक उपन्यास में लेबरनम हाउस में चल रहें चोरी छिपे प्रेम का चित्रण हुआ है । लेखिका लिखती हैं- "मैं सोने को पकड़ लेता, जो बगलवालों की खाट बिछा रही थी जब मैं कभी उधर से निकला था । गददे-चादर लहरा के उछाल, खोल, बिछा, तकिया सिरहाने रख हाथों से सलवटें हटा, उसने एक चोर नजर दायें-बायें मारी थी और लेट गई मालिकों के बिस्तर पर । तब मैं सामने आया । कितना डर गई वह ! जब- जब मैं उसके बिस्तर बिछाने पर पहुंच जाता और वह मुस्कुराती हुई मेरे आगे इठलाती । मैं उसका हाथ बंटाता और हाथ बांटने में हम एक- दूसरे को छूते रहते । इतने अभ्यस्त हो गए कि सालों-साल, घुप्प अंधेरे में, सिर्फ छूकर एक- दूसरे को पहचान लेते ।"5 स्त्री हर समाज, धर्म, जाति, वर्ग और कालखंड में पुरुषत्व के अहंकार की शिकार रही है । उसके सपने, संवेदनाएं, योग्यताएं और अमानवीय तथा जर्जर मान्यताओं की जकड़न से दम तोड़ते रहे हैं । पुरुषसत्तात्मक समाज ने सदियों से उसका शोषण और उत्पीड़न ही किया है । कालांतर में समाज और साहित्य में स्त्री- चिंतन का प्रादुर्भाव आधुनिक शिक्षा तथा विचारों की देन है । बीसवीं सदी स्त्री के लिए वरदान साबित हुई है । मन में जल रही मुक्ति की लौ को आधुनिक विचारों की हवा ने ज्वाला का रूप दिया । फलस्वरूप स्त्री-जीवन तथा स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन आये और यह परिवर्तन आज भी हो रहे हैं ।

समकालीन स्त्री उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में स्त्री के बदलते जीवन संदर्भ, बदलती मानसिकता तथा संघर्ष को विशेष स्थान दिया । यह अस्तित्व, अस्मिता और समता के लिए संघर्षरत स्त्री की कथा है । कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान, मन्नू भंडारी, चित्रा मुद्गल, गीतांजलि श्री, जैसी अनेक लेखिकाओं ने स्त्री-चिंतन और स्त्री- लेखन को सार्थकता दी । उनके उपन्यासों में चित्रित स्त्री पूर्वाग्रहों से मुक्त, स्वतंत्र, शिक्षित, आत्मनिर्भर, स्वाभिमानी, सबला तथा निर्णय क्षमता से युक्त स्त्री है । वह अपने कार्यों और विचारों से बदलते मूल्यों को अभिव्यक्त करती है । विवाह, मातृत्व जैसे मूल्यों पर सवाल उठा रही है । जहां एक और वह पुरुषसत्ता का विरोध करती है तो दूसरी ओर उन परंपराओं को स्वीकारती भी है जो मानवता के पोषक हैं । समकालीन श्री अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए सारे संबंधों को तिलांजलि देने को तत्पर दिखती है । परिणामत: व्यक्ति-व्यक्ति संबंध, व्यक्ति- समाज संबंध, स्त्री-पुरुष संबंध में नये अर्थ ग्रहण कर रहे हैं, वहीं भूमंडलीकरण के फलस्वरूप उत्पन्न बाजारवादी तथा उपभोक्तावादी संस्कृति में स्त्री- शोषण के अनेक नए रूप भी उभर कर आ रहे हैं ।

गीतांजलि श्री ने अपने उपन्यास 'खाली जगह' में माँ की ममता, महत्व, निस्वार्थ सेवाभाव को चित्रित किया है । वह अपने बच्चों की देह के अवशेषों को भी पहचान लेती है । उपन्यासकार गीतांजलि श्री ने इसका वर्णन अत्यंत मार्मिक शब्दों में किया है- "माँ ने अपने बेटे को पहचान लिया । किस टुकड़े को, किसी को खबर नहीं । बस जिधर उसकी उंगली उठी वही थे उसके बेटे के अवशेष । जिन्हें बीनकर बाइज्जत सरकारी रूआब के पिटारे में हिफाजत से रख दिया और थमा दिया माँ को ले जाए सीने से लगाकर अपने बच्चों को।"6 एक माँ अपने मृत बेटे को

याद करती है। बेटे की स्मृति में खो जाती है। गीतांजलि श्री ने इस उपन्यास में माँ की पीड़ा, माँ का अपने बच्चों के प्रति अपार स्नेह, ममता, प्रेम, को व्यक्त किया है साथ ही साथ अपने उपन्यासों में अकेलेपन और अजनबीपन को चित्रित किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1) रेत-समाधि पर बनारस में समीक्षात्मक चर्चा का एक अंश

2) खाली जगह, गीतांजलि श्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006, पृ.सं.221

3) माई, गीतांजलि श्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1993,पृ.सं.77

4) वही, पृ.सं. 127

5) तिरोहित, गीतांजलि श्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001, पृ.सं. 66-67

6) खाली जगह, गीतांजलि श्री, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006, पृ.सं. 26

इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता चिंतन और चुनौतियाँ

डॉ. शहनाज़ ज़फ़र बसमेह।

मार्गदर्शक: एम. जी. एम. विश्वविद्यालय, छत्रपति संभाजी नगर (औरंगाबाद) महाराष्ट्र।

ललिता गोपाल सिंहराय

शोधार्थी : एम. ए. (हिंदी), एम. एड. भ्रमणध्वनि : ९८९०८५८१११ एम जी एम विश्वविद्यालय, छत्रपति संभाजी नगर (औरंगाबाद) महाराष्ट्र।

प्रस्तावना: इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता, जो मीडिया क्षेत्र में नवीनतम और तेजी से विकसित हो रही एक उपयोग द्वारा जानकारी और समाचार प्रस्तुत करने की प्रक्रिया है, वर्तमान समय में एक महत्वपूर्ण चरण में है। इसने संचार के ढंग को बदल दिया है और समाचार, विचारों और जानकारियों को व्यापक रूप से लोगों तक पहुँचाने का तरीका बदल गया है। इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता आजकल मीडिया क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण और विशेष रूप से तेजी से बढ़ती फील्ड है। यह नए और नवीनतम तकनीकी उपायों का उपयोग करती है ताकि समाचार और सूचनाओं को तेजी से और व्यापक तरीके से लोगों तक पहुँचाया जा सके।

इस दौर में, इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता के चिंतन और चुनौतियों में कई महत्त्वपूर्ण पहलू हैं:

1.**तेजी से बदलती तकनीक**: तकनीकी उन्नति के साथ, इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता भी तेजी से बदल रही है। नई और विभिन्न प्लेटफ़ॉर्म्स, वीडियो संग्रहण, लाइव स्ट्रीमिंग, और अन्य तकनीकों के उपयोग से समाचार और सूचनाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं। यह नए रुझानों के साथ आती चुनौतियों को भी साथ लाती है।

2.**विश्वसनीयता और सत्यापन:** समाचार में विश्वसनीयता की माँग बढ़ गई है। सत्यापन के लिए संसाधनों का उपयोग करने की ज़रूरत है ताकि गलत सूचनाएँ फैलाने से बचा जा सके।

3.**सामाजिक मीडिया का प्रभाव:** सामाजिक मीडिया के प्रभाव के कारण, संवाद बनाना और लोगों के ध्यान में रहना अब बड़ी चुनौती है। यहाँ सत्यापित और विश्वसनीय सूचनाओं को प्रोत्साहित करने की जरूरत होती है।

4.**व्यक्तिगत गोपनीयता और सुरक्षा:** इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता में निजी जानकारी की सुरक्षा एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। डेटा चोरी, ऑनलाइन धमकी और गोपनीयता के मुद्दे इसमें समाविष्ट हैं।

5.**विचारशीलता और नई पहुँच:** नई तकनीक की मदद से, इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता ने नए नामूने, नई प्रस्तुति और नई पहुँच तक पहुँचा है।

इन चुनौतियों का सामना करते हुए, इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता को सामाजिक सचेतता, विश्वसनीयता और नैतिकता के मानकों का पालन करते हुए आगे बढ़ना होगा।

इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता के चुनौतियाँ:

1. विश्वसनीयता और प्रामाणिकता: इंटरनेट पर सूचनाओं की बड़ी संख्या के कारण, सही और विश्वसनीय सूचनाओं का पता लगाना मुश्किल हो सकता है। अक्सर इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता में असत्य या अस्पष्ट सूचनाओं का प्रसार होता है, जिससे लोगों को गलत या अधूरी जानकारी मिल सकती है।

2. **व्यक्तिगत गोपनीयता और सुरक्षा:** इंटरनेट के माध्यम से सूचनाओं को साझा करने की तकनीक से जुड़ी सुरक्षा और गोपनीयता की चुनौतियाँ होती हैं। व्यक्तिगत जानकारी का सुरक्षित रखना और कम्प्यूटर हैकिंग, डेटा चोरी जैसी समस्याओं से बचाव करना जरूरी होता है।

3. **सोशल मीडिया दबाव:** सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों पर तेजी से फैल रही खबरें और जानकारियों की जोरदार व्यापकता होती है, जिसके कारण दबाव बन सकता है कि तेजी से और बिना सत्यापन किए गए संदेशों को प्रसारित किया जाए।

4. **अलग-अलग तकनीकी प्लेटफ़ॉर्म्स का उपयोग:** इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता में तकनीकी प्लेटफ़ॉर्मों का नया और अद्भुत उपयोग किया जा रहा है, जैसे कि वीडियो संग्रहण, पॉडकास्ट, लाइव स्ट्रीमिंग, व्यक्तिगत ब्लॉगिंग, इत्यादि। इन प्लेटफ़ॉर्मों का सही तरीके से उपयोग करना और सामग्री की गुणवत्ता बनाए रखना महत्वपूर्ण है।

5. **अदालती मुद्दों की चुनौतियाँ:** इंटरनेट पर सामग्री के प्रकटीकरण के साथ ही अदालती मुद्दों का सामना भी इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता के लोगों को करना पड़ सकता है। असली और नकली सूचनाओं की पहचान करना, कॉपीराइट का उल्लंघन जैसे मुद्दों से निपटना आवश्यक है।

इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में बहुत सारी महत्वपूर्ण दिशाएँ हैं जो समाज में असर डाल रही हैं: इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता ने समाचार, जानकारी, और विचारों को जनसामान्य के लिए ज्यादा पहुँचने का साधन बनाया है। सोशल मीडिया और अन्य डिजिटल प्लेटफॉर्म्स के माध्यम से जानकारी को व्यापक रूप से साझा किया जा रहा है। इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता ने लोगों को समाचारों और घटनाओं के साथ जोड़ा है और उन्हें विशेष रूप से सामाजिक मामलों, राजनीतिक मुद्दों, और विचारों के साथ जोड़ा है। सामाजिक मीडिया और इंटरनेट पर समाचार की व्यापकता से, लोगों के विचारों, मतभेदों और व्यक्तिगत धारणाओं में परिवर्तन आया है। इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता ने सामाजिक विवादों, अधिकार संघर्षों, और राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों को व्यक्त करने के लिए एक मंच प्रदान किया है। इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता के माध्यम से, समाज के अलग-अलग सामाजिक वर्गों और समूहों की आवाज को सुना जा रहा है, जिससे सामाजिक न्याय और प्रभाव में सुधार हो रही है। इस प्रौद्योगिकी के विकास से, व्यक्तिगत स्तर पर भी बदलाव आया है। लोगों के व्यक्तिगत धारणाओं, मतभेदों और विचारों को साझा करने का नया माध्यम मिला है। इस रूप में, इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता ने समाज को सूचनाओं, विचारों और विवादों के साथ जोड़ दिया है और समाजिक परिवर्तनों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसका अभिनवीकरण और सकारात्मक उपयोग समाज के लिए उम्मीद की जा सकती है।

इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका:

इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता ने राजनीतिक संदेशों को व्यापक रूप से प्रस्तुत किया है, लेकिन विश्वसनीयता की चुनौती भी साथ लाती है। अक्सर सोशल मीडिया या वेबसाइटों पर फैली गलत या असत्य सूचनाओं का सामना करना पड़ता है। राजनैतिक पार्टियों को अपनी नीतियों, कार्यक्षमता और अन्य विषयों पर अधिक व्यापकता से लोगों तक पहुंचाने का माध्यम मिला है। राजनीतिक नेताओं को अपने संदेशों को आम जनता तक पहुँचाने के लिए इंटरनेट और सोशल मीडिया प्लेटफ़ॉर्म्स का उपयोग करना पड़ता है। सोशल मीडिया के माध्यम से लोगों के विचार और प्रतिक्रियाएँ प्राप्त करने का एक अच्छा माध्यम है, जो नेताओं को लोगों की दिशा में बदलाव लाने में मदद कर सकता है। राजनैतिक नेताओं को सार्वजनिक फोरम्स पर विचारों और धारणाओं को साझा करने के लिए उचितता और जवाबदेही दिखानी पड़ती है। राजनीतिक परिस्थितियों, धार्मिक मुद्दों, सामाजिक विवादों और मानवाधिकारों पर अवैध प्रभाव डालने की क्षमता भी है।

इन चुनौतियों के बीच, राजनैतिक दलों और नेताओं को इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता के माध्यम से लोगों तक अपने संदेशों को सही और सत्यापित तरीके से पहुँचाने का जिम्मेदारी भी बढ़ गई है।

निष्कर्ष: इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता ने समाचार, जानकारी, और विचारों को प्रस्तुत करने के तरीके में क्रांति ला दी है, जिससे समाज में अनगिनत बदलाव आया है। यह नए संचार के माध्यमों का उपयोग कर लोगों के बीच ज्ञान और सूचना को व्यापक रूप से पहुँचाने में सहायता करती है।

इसके साथ ही, इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता के कुछ महत्त्वपूर्ण चुनौतियाँ भी हैं। विशेष रूप से निम्नलिखित मुद्दे सामान्य हैं:

विश्वसनीयता और सत्यापन: डिजिटल माध्यमों पर सूचनाओं की विश्वसनीयता और सत्यापन की कमी हो सकती है। असत्य या अविश्वसनीय सूचनाएँ फैलाने का खतरा होता है जो गलत धारणाओं का प्रसार कर सकती हैं।

व्यक्तिगत गोपनीयता और सुरक्षा: इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता में व्यक्तिगत जानकारी की सुरक्षा और गोपनीयता की चुनौतियाँ होती हैं। डेटा चोरी, ऑनलाइन धमकी और गोपनीयता के मुद्दे इसमें समाविष्ट होते हैं।

सोशल मीडिया दबाव: सोशल मीडिया पर तेजी से फैल रही खबरें और जानकारियों की जोरदार व्यापकता होती है, जिससे दबाव बनता है कि तेजी से और बिना सत्यापन किए गए संदेशों को प्रसारित किया जाए।

व्यक्तिगत संबंधों की कमी: डिजिटल माध्यमों का उपयोग करने से हमारे व्यक्तिगत संबंधों में कटौती हो सकती है। यह व्यक्तिगत संपर्क और संवाद में कमी का कारण बन सकता है।

इन चुनौतियों का सामना करते हुए, इलेक्ट्रॉनिक पत्रकारिता को समाज की जरूरतों और मानकों के साथ मेल खाना होगा ताकि यह अपने असर को सकारात्मक तरीके से बढ़ा सके।

सन्दर्भ:

१. परिहार, कालूराम, (2008), मीडिया के सामाजिक सरोकार, नई दिल्ली, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दरियागंज, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 22

२. श्रीवास्तव, डॉ., डीएन, (2008), मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएं, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन, पृष्ठ 236।

३. न्यू मीडिया और बदलता भारत - प्रांजल धर, कृष्णकांत। प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ ,१८, इंस्टिट्यूटशनल एरिया

,लोदी रोड,नई दिल्ली-110003 (ISBN:978-81-936555-1-1)

४. सोशल मीडिया वर्चुअल से वास्तविक - कविता भाटिया। प्रकाशक :सेतु प्रकाशन प्रा लि ,रजिस्टर ऑफिस ३०६ , प्रियदर्शिनी अपार्टमेंट ,पटपड़गंज दिल्ली-110092 (ISBN:978-93-89830-64-4)

५. सोशल मीडिया के विविध आयाम - डॉ मोहम्मद फ़रियाद , स्वराज प्रकाशन ,४६४८/१, २१ , अंसारी रोड , दरियागंज ,न्यू दिल्ली -110088 (ISBN:978-93-83514-24-3)

६ रतन सिंह पांडेय ; मीडिया का यथार्थ ; बानी प्रकाशन , न्यू दिल्ली २००८

७ संस्कृति , विकास और संचार क्रांति - (पुरणचंद्र जोशी ;ग्रन्थ शिल्पी ,२००१)

८ न्यू मीडिया : इंटरनेट की भाषायी चुनौतियाँ और सम्भावनाएँ (संपा - आर अनुराधा ;राधाकृष्ण प्रकाशन ,२०१२)

९ विज्ञापन,मीडिया और बाज़ार, पुस्तक- "मीडिया और बाजार", पृष्ठ :११९ , संपा. वर्तिका नंदा)

१० रतन सिंह पांडेय; मीडिया का यथार्थ; वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली २००८

ऑनलाइन सन्दर्भ -

१. www.deisntiias.com/hindi/privacy-now-a-fundamental-right

२. http://hindi-khabar.hindyugm.com/2010/04/nayee-chunautiyan-aur-vaikalpik-media.html

३. https://aws.amazon.com/privacy/

४. http://samalochan.blogspot.com

५. https://yourstory.com/hindi

६. https://www.mapsofindia.com/my-india/voices/social-media-and-its-impact-on-politics

७. https://www.bbc.com/hindi/mobile/

८. https://shodhganga.inflibnet.ac.in/

९. www.dainiktribuneonline.com

१०. www.smallbusiness.chorn.com

आज की हिंदी कहानी और चुनौतियां

प्रा. डॉ. पावर आर. एस.

अध्यक्ष हिंदी विभाग,जयक्रांती कला वरिष्ठ महाविद्यालय,लातूर (वाणिज्य एवं विज्ञान)

हिंदी साहित्य जगत् में पिछले कंई दशकों से हिंदी कहानी अन्य गद्य विधाओं की अपेक्षा गतिमान रही है आज भी पिछले कई सालों से हिंदी कहानी विधा का विकास अपने रास्ते पर गतिमान पाया जाता है। साहित्य में हमारा समाज प्रतिबिंम्बित होता है। साहित्य हमारे समाज को एक दिशा तथा गति देने का काम करता है। 21 वीं सदी की चकाचौंद में साहित्य के सामने अनेकों चुनौतियां आ खड़ी हुई है। अन्य भाषा के साहित्य की तरह हिंदी भाषा के साहित्य के सामने भी चुनौतियां देखने के लिए मिलती है। हिंदी का कहानी साहित्य भी इसे अछुता नहीं रहा है। 21वीं सदी के हिंदी कथा साहित्य के सामने अनेकों चुनौतियां देखी जा सकती है। प्रेमचंद युग से प्रारंभ हिंदी का कहानी साहित्य निरंतर विकसित होता गया है। जो आज तक अपने विकास के पथ पर गतिमान है। लेकिन हिंदी कहानी साहित्य को अनेकों चुनौतियों का सामना भी करना पड़ रहा है। "आज की कहानी एक नये मोड पर आ गई है। यह मनुष्य की एक अणवरत प्रक्रिया है। लेकिन कोई कहानीकार तलाश की इस प्रक्रिया में अपनी कहानी में कैसे गुजरता है, यह उसके व्यक्तित्व, सोच, दृष्टि और रचनात्मक क्षमता पर निर्भर है। लेकिन हर कहानी का केंद्र मनुष्य है। जिसके इर्द-गिर्द उसका समस्त जीवन घूमता है। मानव जीवन की इन स्थितियों और विसंगतियों की तलाश आज कहानी का सबसे बड़ा विषय है। स्थितियों की टक्कर या परिवर्तन को संकेत करने और उन्हें सही अभिव्यक्ति देनेवाली कहानी ही उसकी स्थानीयता के बावजूद एक विशाल और सही सत्य को उघाड़ती है और वही सबों का अनुभव बन जाती है। आज की कहानी इसी उद्देश्य के लिए समर्पित है।"[1]

21 वी सदी की कहानी के सामने अनेकों चुनौतियां है। इनमें से कुछ चुनौतियां मानव निर्मित तो कुछ प्राकृतिक है। प्राकृतिक चुनौतियोंसे भी भयानक हे मानव निर्मित चुनौतियां। चुनौतियोंने मनुष्य के भविष्य पर ही प्रश्नचिन्ह खड़ा कर दिया है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में मनुष्य अपनी पहचान खोता जा रहा है, वह 'आदमीयत' को भूलता जा रहा है। भौतिक रुप से मनुष्य जो प्रगति करता जा रहा है, वह अपनी संवेदना को उतना ही खोता जा रहा है। हमारी बुद्धि का विकास तीव्र गति से हो रहा है, परंतु हमारी संवेदनाएं सिकुड़ती जा रही है। युद्ध रक्तपात, हिंसा, आतंकवाद, विषमता, जोर-जुलुम,दमन-चक्र, बारुद और गोलियां अपराधों का सिलसिला यह सारे उदाहरण हमारी असंवेदनशीलता के है। मनुष्य की संवेदना का खोना हमारे लिए एक बहुत बड़ा खतरा है। आज की इस खतरे की स्थिति पर प्रसिद्ध चिंतक डॉ.शिवकुमार मिश्र हमें आगाह करते हैं कि, "भूमंडलीकरण के चलते आज जैसी स्थितियां बन रही है, वह समय दूर नहीं जब आदमी और पशुओं में कोई अंतर रह जाएगा। और तब जो कुछ भी होगा वह निश्चित ही अच्छा नहीं होगा। इसी बात को लेकर साहित्यकार चिंतित है।"[2] आज का मनुष्य अर्थ के पीछे बेतहाशा दौड़ रहा है। भूमंडलीकरण के इस दौर में मनुष्य ने अपने विश्व को एक बाजार में तब्दील कर दिया है। चाहे अनचाहे वहां इस बाजार का एक भाग बनता रहा है, आपको क्या खरीदना है, क्या खाना है, क्या पहना है, क्या देखना है, कब रोना है, कब हसना है, आज सब हम नहीं बाजार तय करता है। आपके जीवन की दिशाएं बाजार की शक्तियां तय करती है। हम अपनी संवेदनाएं खो रहे हैं। मनुष्य की संवेदना-असंवेदना को चित्रित करनी में हिंदी कहानी हमेशा तत्पर रही है। कहानी सबसे अधिक पाठक प्रिय विदा रही है। इसलिए साहित्यकारों की भी प्रिय विधा रही है। 21 वी सदी की हिंदी कहानी ने वैश्वीकरण की भीड़ में खोए मनुष्य का बड़ी संवेदनाओं के साथ चित्रण किया है। हिंदी कहानी के क्षेत्र में जयप्रकाश कर्दम, राकेश कुमार सिंह, गौरी नाथ, पंकज मिश्र, कैलाश बनवासी, उदय प्रकाश, संजीव, जितेंद्र भाटिया, ममता कालिया, मैत्रेयी पुष्प, ओमप्रकाश वाल्मीकी, मालती जोशी, कुसुम अंचल, सुधा अरोरा, सुशीला टाकभौर, मधु काकरिया, जया जादवानी, मेहरून्निसा परवेज, क्षमा शर्मा, गीता श्री, ममता सिंह, विभा रानी, कृष्णकांत, जयनन्दन, अखिलेश, ओम शर्मा,

उमाशंकर चौधरी, राकेश बिहारी, सत्यनारायण पटेल, प्रभात रंजन आदि कहानी कारोने गहन संवेदना के साथ एक से बढ़कर एक कहानियों का सृजन किया है।

21वीं सदी की इन हिंदी कहानियों के सामने अनेकों चुनौतियां खड़ी हो गई है। इन चुनौतियों में सामाजिक विघटन, बाजार वाद, आर्थिक विषमता, हिंदू मुस्लिम भेदभाव, पारिवारिक विघटन, विवाह पूर्व संबंध, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, छल कपट, भाई भतीजा वाद, जातिवाद, क्षेत्रियवाद, राजनीतिक मोहभंग, सांप्रदायिकता, आतंकवाद, देश की बिगड़ी न्याय व्यवस्था आदि चुनौतियां विशेष कर महत्वपूर्ण मानी जा सकती है। "कहानी वस्तु दृष्टि और रचना तीनों ही स्तरों पर समकालीन चुनौतियों का सामना करती है। वस्तु अर्थात विषय वस्तु या कथन की चुनौतियां अर्थात हम अपनी कहानी के लिए क्या और कौन सा कथानक चुने। कविता के संदर्भ में तो यह बहस पर्याप्त हो चुकी है, पर कहानी में यह बहस नहीं हो सकी है। दरअसल इस बहस से जानबूझकर किनारा किया गया है। हम फिलहाल कहानी के संदर्भ में कविता की वस्तु चयन संबंधी बहस को स्वीकार करते हुए कहते हैं की कहानी में भी वस्तु का चयन सावधानी पूर्वक और जेनुइननेस के आधार पर करना चाहिए। प्रासंगिकता और समकालीनता इसकी कसौटी होगी।"[3] आर्थिक विषमता दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। आमिर दिन-ब-दिन अमीर और गरीब दिन-ब-दिन गरीब होता जा रहा है। इस सामाजिक विघटन को सामने लाना आज की कहानी के सामने एक चुनौती है। अनेकों हिंदी कहानीकारों ने अपनी कहानियों में सामाजिक विघटन को सामने लाने का यथार्थ प्रयोग किया है। "आज यथार्थ चित्रण में कहानीकार को संकट के दौर से गुजरना पड़ा अनुचित, गलत, अनाचार और अत्याचार को देखकर समकालीन यथार्थवादी कहानीकार की आत्मा नीचे तक धंस गई है। कहानीकार ने तटस्थ रहकर सच और केवल सच ही कहा। इतिहास को भी उसने जीवित प्रक्रिया के रूप में पेश किया। चाहे वह इतिहास के बिखरे सूत्र ही क्यों न रहे हो, क्योंकि आज की स्थितियां इतिहास का ही प्रतिफलन है।"[4]

कहानी विद्या ने दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, किसान विमर्श, वृद्ध विमर्श, बाल विमर्श को लेकर चुनौतियों का सामना किया है। कहानी विधा अपने समय को सटीक रूप से अभिव्यक्त करती है। नई सदी के रचनाकार कुमार संभरिया ने अपनी कहानियों में ग्रामीण जीवन की विसंगतियां, मनुष्य जीवन की विड़बनाओ, बेबसी आदि का यथार्थ चित्रण किया है। उनकी 'शर्त', 'मियां जान की मुर्गी', 'भैंसे', 'लाठी', डंक, 'आखेट', 'बकरी के दो बच्चे' आदि प्रसिद्ध कहानी है। ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमीशराय, जयप्रकाश कर्दम आदि दलित कहानीकारोंने मानवीय संवेदना को लेकर कहानी लिखी है। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानी 'घुसपैठिए', 'मुंबई कांड', 'सलाम' इस दृष्टि से महत्वपूर्ण कहानीयां है। नासिरा शर्माने 'इबते मरियम' कहानी संग्रह के माध्यम से नारी की वेदना का चित्रण किया है। 'इबते मरियम' कहानी में भोपाल के गॅस कांड का चित्र बडे ही इमानदारी से किया गया है। जहरीले गैस की दुर्घटना ने आधे भोपाल शहर को कब्रिस्तान में बदल दिया था। खाते पीते, हंसते गाते, लोग मौत की नींद सो गए थे। जो जिंदा रह गए थे, मृत्यु से बदत्तर जिंदगी जी रहे थे। नासिरा शर्मा की कहानी नवीन दृष्टिकोण पर आधारित है। इनमें उन्होंने भारत और कई देशों में फैले आतंकवाद, धार्मिक कट्टरता को अपनी कहानियों का विषय बनाया है। हिंदी कथा लेखिकाओं ने जीवन के इन्हीं छोटे बड़े अनुभवों, मूल्यों एवं संवेदनाओं को औचित्यपूर्ण ज्वलंत प्रश्नों को रेखांकित करने का कार्य किया है। "आज देश और दुनिया में आतंकवाद, प्रांतवाद, सीमावाद, भाषावाद, जातिवाद, धर्मवाद, वर्णवाद, नस्लवाद ने उग्र रूप धारण कर लिया है। इसके चलते हर जगह संघर्ष और हिंसा की घटनाएं घट रही है। लोगों की रुचि "जियो और जीने दो वाली नहीं रही है।"[5] आज हिंदी कहानी के सामने निरंतर चुनौतियां देखने के लिए मिल रही है। समय के साथ हिंदी कहानी ने भी उसे अपने कलेवर में समेटने का काम किया है। भविष्य में भी हिंदी कहानी इन चुनौतियों से चार हाथ कर सामना करने में सक्षम रहेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1) डॉ.बनवीर प्रसाद शर्मा, डॉ.कृष्णकांत भारद्वाज- दसवें दशक की कहानी, पृष्ठ 14, 15

2) संपादक - डॉ.लक्ष्मीकांत पांडेय, नव निकश मार्च 2015, मासिक, पृष्ठ 22

3) शंभू गुप्त - कहानी समकालीन चुनौतियां, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 19

4) संपादक डॉ.इंदुमती सिंह- समकालीन हिंदी कहानी और 21वीं सदी की चुनौतियां, आशीष प्रकाशन, कानपूर, पृष्ठ 146

5) संपादक- सुधीर पंचौरी, 'वाक्' 2014 (त्रैमासिक), वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 169

‘अंधा युग’ में युद्ध की भयावहता पर चिंता और चिंतन की अभिव्यक्ति

प्रा. सूर्यकांत रामचंद्र चव्हाण
हिंदी विभाग राजर्षि शाहू महाविद्यालय (स्वायत्त), लातूर
दूरभाष-992170817 ,ईमेल- srchavan1983@gmail.com

“पंछी नदियाँ पवन के झोंके
कोई सरहद न इन्हें रोके
सरहद इंसानों के लिए हैं
सोचो तुमने और मैंने क्या पाया
इंसां होके...” - ‘रिफ्यूजी’ फिल्म

यह गीत हम सभी के लिए बहुत बड़ी सीख देता है, जहाँआज सरहदों को लेकर भीषण युद्ध लड़े जा रहे हैं। सर्वस्व हड़पने की अति महत्वाकांक्षा ने मनुष्य को बर्बर बना दिया है। युद्ध किसी भी देश के लिए अथवा समाज के लिए विवेकपूर्ण नहीं होता। किंतु बड़ी विडंबना है कि अपनी स्वार्थ की पूर्ति के लिए युद्ध लड़े जाते हैं। लेकिन युद्ध के पश्चात् की भयावह स्थिति कीचुनौतियों की चिंता कोई नहीं करता।वर्तमान समय मेंसुबह घर से निकला हुआ आदमी शाम को सही सलामत घर पर पहुँच जाये, इसका कोई भरोसा नहीं रहा है। धर्मवीर भारती कृत ‘अंधा युग’ का प्रकाशन वर्ष 1954 का है। धर्मवीर भारती ने पहले और दूसरे महायुद्ध की भीषणता को बहुत नजदीक से समझा था। युद्ध की क्रूरता, बर्बरता और युद्धोपरांत भयावहता की विभीषिका को इस कविने‘अंधा युग’काव्य का विषय बनाया है। दोनों विश्वयुद्ध की बर्बर पशुवृत्ति की अंधी मानसिकता को कवि ने महाभारत की उन मर्यादाहीन प्रवृत्ति केकथानक के साथ जोड़ा है। जहाँ पात्र, घटनाएँ तो हैं पौराणिक किंतु महायुद्ध के समय की आधुनिक संवेदना और युगबोध को व्यंजितकिया है।इसलिए ‘अंधा युग’ की पृष्ठभूमि में धर्मवीर भारती लिखते हैं,“अंधा युग कदापि न लिखा जाता, यदि उसका लिखना-न-लिखना मेरे वश की बात रह गई होती।”[1] अंधा युग की कथा युद्ध के अंत की है। युद्ध के परिणाम से जो विध्वंस, प्रलाप और भयावह नीरवता महसूस होती है उसे ही इस कवि ने अभिव्यक्त किया है, जो विश्व शांति के लिए चिंता और चुनौतियों का प्रश्न है।

वर्तमान समय में युद्ध, संघर्ष, पलायन, आतंकवाद, धार्मिक कट्टरता, सीमावाद और महासत्ता की होड़ आदि स्वार्थों से वशीभूत होकर आधुनिक मानव अपना विवेक खो बैठा। रूस-यूक्रेन और इजराइल-हमास (फिलिस्तीनी) युद्ध ने तो पूरे विश्व को दो हिस्सों में विभाजित कर दिया है। युद्ध का उद्देश्य चाहे कितना भी महान हो, आदर्शवादी हो किंतु उसमें विजय मानवता की नहीं दानवता की ही होती है। जहाँ आस्था, विश्वास और मानवीय मूल्य खंडित हो जाते हैं, जो विश्व शांति के लिए बहुत बड़ा खतरा है। आज आधुनिक युग में व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए विनाशकारी युद्ध का जयघोष, अविवेकी-अंधे धृतराष्ट्र और अश्वत्थामा जैसे बर्बर पशु बनकर मानवीय संहार करनेवालों की तादाद अधिक है। जहाँ मानवता के मानदंडों की आधारशीला और मर्यादाएँ खंड-खंड हो जाती हैंजहाँ युद्धोपरांत का कटु यथार्थ हमें झकझोर डालता है। इसलिए राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ‘कुरुक्षेत्र’ के निवेदन में लिखते हैं,“द्वापर की ओर देखते हुए मैंने युधिष्ठिर को देखा,जो‘विजय’ इस छोटे-से शब्द को कुरुक्षेत्र में बिछी हुई लाशों से तोल रहे थे।”[2] इसीलिए युद्ध निंदनीय है, क्रूर कर्म है।

युद्ध के समय सत्य की कभी भी रक्षा नहीं हो सकती। प्रथम और दूसरे महायुद्ध में आखिर हानि मानवता की ही होती रही। वर्तमान समय में रूस-यूक्रेन, इजराइल-हमास का युद्ध विश्व का एक नया नग्न यथार्थ है। धर्म, संप्रदाय और आतंकवाद ने आज वैश्विक शांति के लिए अवरोध उत्पन्न कर दिया है। हथियारों का निर्माण एवं उसका बाजार वैश्विक तनाव निर्माण कर रहे हैं। आर्थिक असंतुलन और महासत्ता की होड़ ने देश की सीमाओं को और दृढ बना दिया। दूसरे महायुद्ध में अमेरिका द्वारा हिरोशिमा और नागासाकी के ऊपर किया गया बम विस्फोट और आज इजरायल और हमास का मिसाइल युद्ध वैज्ञानिक खोज के लिए शर्मनाक घटनाएँ हैं। महासत्ता बनने की लालसा ने धरती के मालिक को जन्म दिया किंतु हमें यह समझना चाहिए कि हम सभी इसके उत्तराधिकारी हैं। विश्व शांति के लिए समाज में मर्यादा और विवेक का सजग होना अनिवार्य है। महाभारत का युग अंधा युग था

जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ और आत्माएँ सभी विकृत थीं। वैसी ही स्थिति वर्तमान समय में है। महाभारत में चाहे कौरव हो अथवा पांडव, सभी ने अपनी मर्यादाएँ तोड़ी थी। वर्तमान समय में भी महासत्ता की प्रतिद्वंद्विता के प्रतिशोधने सामान्य मानव को झकझोर डाला है। युद्ध के पहले जो सुंदर और शुभ होता हैवह युद्धोपरांत ध्वस्त हो जाता है। उसे धर्मवीर भारती 'अंधा युग' के पहले ही अंक में व्यक्त करते हैं-

"टुकड़े टुकड़े हो बिखर चुकी मर्यादा
उसको दोनों ही पक्षों ने तोड़ा है
** ** ** **
यह अजब युद्ध है, नहीं किसी की भी जय
दोनों पक्षों को खोना ही खोना है
अंधों से शोभित था युग का सिंहासन
दोनों ही पक्षों में विवेक ही हार
दोनों ही पक्षों में जीता अंधापन
भय का अंधापन, ममता का अंधापन
अधिकारों का अंधापन जीत गया
जो कुछ सुंदर था, शुभ था, कोमलतम था
वह हार गया...द्वापर युग बीत गया।"[3]

आधुनिक युगबोध की अभिव्यक्ति की दृष्टि से धर्मवीर भारती बड़े सजग कवि थे।'अंधा युग' में गांधारी का अपनी आँखों पर पट्टी बांध रखने का कारण समाज में फैला आडंबर और ढकोसला है। विश्व शांति के लिए नीति, धर्म, मर्यादा, विवेक आदि निर्णायक तत्व होते हैं किंतु वर्तमान समय में यह मात्र पाखंड है जिसमें अंधे पशुओं का निवास होता है। गाँधी जी के तीन बंदर आज अपना रूप बदल चुके हैं, विरोध में सुनना बर्दाश्त नहीं करते, विरोध में बोलनेवाला गूँगा बन चुका है जबकि चारण नहीं बने तो आँखों पर पट्टी बांध दी जाती है। विश्व की विदारक और विध्वंसकारी पशु वृति मनुष्य को आँखें बंद कर देने के लिए विवश कर देती हैं। महाभारत में धृतराष्ट्र तो प्रकृति से अंधे थे किंतु गांधारी ने जानबूझकर अपनी आँखों पर पट्टी बांध ली थी क्योंकि बाहरी वस्तु जगत् की झूठापन और नकाबपोश प्रवृत्ति उसे असहनीय कर देती है। जो आज के युग की 'अंधता' का प्रतीक है। गांधारी कहती है-

"लेकिन अंधी नहीं थी मैं।
मैंने ही बाहर का वस्तु-जगत् अच्छी तरह जाना था
धर्म, नीति, मर्यादा यह सब है केवल आडंबर मात्र
मैंने यह बार-बार देखा था।
** ** ** **
नैतिकता, मर्यादा, अनासक्ति, कृष्णार्पण
यह सब हैं अंधी प्रवृतियों की पोशाकें
जिनमें इकट्ठे कपड़ों की आंखें सीली रहती हैं
मुझको इस झूठे आडंबर से नफरत थी
इसलिए स्वेच्छा से मैंने इन आँखों पर पट्टी चढ़ा रक्खी थी।"[4]

अंधा युग में अश्वत्थामा की कुरूपता और पाशविकता वर्तमान के आधुनिक मानव की कुरूपता और पाशविकता का परिचायक है। यह वह मानव है जिसके अंदर युद्ध वृत्ति सदैव विद्यमान रहती है। युद्ध में आणविक अस्त्रों का प्रयोग कितना भयावह होता है ये हमने हिरोशिमा और नागासाकी में देखा है। अमेरिका, रूस, चीन, पाकिस्तान यूक्रेन, फिलिस्तान, भारत, अफगानिस्तान, जापान, दक्षिण कोरिया, उत्तर कोरिया आदि देशों में आपसी प्रतिद्वंद्विता और महासत्ता की लालसा जागृत हो चुकी है। जो विश्व शांति के लिए अर्थात 'वसुधैव कुटुम्बकम' की परिकल्पना के लिए बाधक है। इसके बावजूद भी परमाणु का दुरुपयोग मनुष्य की विकृतियों और विनाश की पांडव लीला को जन्म देती है, जिसमें मानव का समस्त विवेक, ज्ञान आदि सभी तिरोहित हो जाते हैं। अश्वत्थामा का युद्धजन्य परिस्थिति को उकसाना और ब्रह्मास्त्र का प्रयोग संपूर्ण जीव सृष्टि के लिए विनाशलीला है, जिसे व्यास अपने सशक्त वाणी से परमाणु प्रयोग के दुष्परिणामों से हमें परिचित कराते हैं-

"ज्ञात क्या तुम्हें है परिणाम इस ब्रह्मास्त्र का?
यदि यह लक्ष्य सिद्ध हुआ ओनरपशु!
तो आगे आनेवाली सदियों तक
पृथ्वी पर रसमय वनस्पति नहीं होगी
शिशु होंगे पैदा विकलांग और कुष्ठाग्रस्त
सारी मनुष्य जाति बौनी हो जाएगी।"[5]

आज महासत्ता की होड़ में स्वयं को सर्वस्व माननेवाले अधिकतर देश आणविक अस्त्रों से सज्ज हैं। परमाणु अस्त्रों के साथ परमाणुधारी दो देश जब युद्ध में उतरेंगे तो धरती बंजर बन जाएगी। भारत, पाकिस्तान, चीन, उत्तर कोरिया, दक्षिण कोरिया, अमेरिका, रूस, आदि देश साक्षात् युद्ध भूमि में रक्तपात मचा सकता हैं। आज हर समय तीसरे महायुद्धजन्य परिस्थितिउत्पन्न हो जाती है। अगर दो परमाणु देश परमाणु अस्त्रों का प्रयोग करेंगे तो सृष्टि नष्ट हो जाएगी। 'अंधा युग' में जब विक्षिप्तता से विवेक खोकर अश्वत्थामा ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करता है तो कृष्ण के कहने पर अर्जुनभी आकाश में अपना ब्रह्मास्त्र छोड़ता है। जिसके भयावह दुष्परिणामों से चिंतित होकर व्यासलिखते हैं-

"ये दोनों ब्रह्मास्त्र अभी नभ में टकरायेंगे
सूरज बुझ जाएगा
धरती बंजर हो जाएगी।"[6]

वैज्ञानिक अविष्कारों को हम वरदान के रूप में नहीं बल्कि अभिशाप के रूप में उपयोग करते नजर आ रहे हैं। आज मनुष्य कितना सत्ता पिपासु हो गया है, प्रत्येक देश स्वयं को विश्व का कर्ता बनाना चाहता है। महासत्ता प्राप्ति की पिपासु वृति व्यक्ति को अंधा बना देती है, जिसके सामने नैतिकता, आस्था कोई मायने नहीं रखती, दुष्परिणामों की कोई चिंता नहीं होती। अपना व्यक्ति अपना विवेक खो बैठता है। 'अंधा युग' में धृतराष्ट्र तो अंधे हैं किंतु सत्ता के राजघाट के लिए पुत्र के मोह में और अधिक निपट अंधे बन जाते हैं। वे अश्वत्थामा की पशुत्व पर कोई खेद प्रकट नहीं करते बल्कि आनंदित हो जाते हैं-

"अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र
यदि गिरा है उत्तरा पर
तो कौन जाने एक दिन युधिष्ठिर
सब राजपाट तुम को ही सौंप दें।"[7]

वर्तमान समय में इजरायल और हमास युद्ध की बर्बरता व्यक्ति को झकझोर देती है। युद्ध का परिणाम विजय नहीं बल्कि मात्र पराजय ही होता है। जहाँ हिंसा, रक्तपात, अविश्वास, हानि और सर्वस्व त्राहि-त्राहि मच जाती है। 'अंधा युग' में तो धर्मवीर भारती पांडवों की विजय को एक क्रमिक आत्महत्या के रूप में देखते हैं। प्रतिहिंसा मनुष्य के विवेक को खा जाती है और घृणा को जन्म देती है। युद्धोपरांत भयावह स्तब्धता मनुष्य को झिंझोड़ देती है। पांडव जीतकर भी हार जाते हैं। 'अंधा युग' मेंयुधिष्ठिर के शब्दों में-

"ऐसे भयानक महायुद्ध को
अर्द्धसत्य, रक्तपात, हिंसा से जीतकर
अपने आपको बिल्कुल हारा हुआ अनुभव कर
यह भी यातना ही है।"[8]

जिस प्रजा के लिए पांडवों ने युद्ध किया वह प्रजा ही आज दुखी हैं क्योंकि उन्होंने अपने किसी न किसी को इस महायुद्ध में जरूर खोया है। चाहे वह पांडवों की ओर से हो या कौरवों की ओर से। कल तक जो स्त्रियाँ हैं सज-धज कर अपने पतियों को सम्मान के साथ युद्ध पर भेजा करती थीं, आज वे विधवाएँ हैं-

"सुनी गलियारों में
जिसके इन रत्न-जड़ित फर्शों पर
कौरव-वधुएँ
मंथर-मंथर गति से
सुरभित पवन-तरंगों-सी चलती थीं
आज वे विधवा हैं।"[9]

युद्ध की शुरुआत और जीत कुछ समय के लिए अच्छी लग सकती है किंतु अंत दोनों पक्षों के लिए बड़ा दर्दनाक होता है। आधुनिक समय में विज्ञान के बलबूते पर व्यक्ति सब कुछ पाना चाहता है। विश्व की बागडौर अपने हाथों में लेना चाहता है किंतु वैश्विक शांति के लिए यह खतरा है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के बजाय पूरी वसुधा को मुट्ठी में कैद रखने की लालसा मानवता के लिए विनाश का कारण बन सकती है। 'जियो और जीने दो' की प्रवृत्ति ही पूरी सृष्टि को एक परिवार में परिवर्तित कर सकती है। किंतु वर्तमान समय में देश की सीमाओं की परिधि को बड़ा करने की आशंका नेमनुष्य में पशुता जागृत कर दी है। महाभारत का अंधा युग पुनः आधुनिक युग में अवतरित हुआ है। धर्मवीर भारती के शब्दों में-

"उस दिन जो अंधा युग अवतरित हुआ जग पर
बीतता नहीं रह-रह कर दोहराता है
** ** ** **
हम सबके मन में गहरा उतर गया है युग
अँधियारा है, अश्वत्थामा है, संजय है।"[10]

युद्ध की इस भीषणता ने कृष्ण को भी नहीं छोड़ा। जिस धर्म की रक्षा के लिए यह युद्ध कृष्ण करवा रहे थे, आखिर उन्हें भी गांधारी के अभिशाप को स्वीकार कर अभिशप्त होना पड़ता है। अपनी प्रभुता का दुरुपयोग कर कृष्ण ने अधर्म से भीम द्वारा दुर्योधन को और अर्जुन द्वारा निःशस्त्र कर्ण को मृत्यु दिलवायी। युद्ध की इस भीषणता में सभी को अपनी आहुति देनी पड़ती है। चाहे अधर्मी कौरव हो, धर्म की रक्षा करनेवाले पांडव हो या साक्षात् सृष्टि के पालनकर्ता कृष्ण भी क्यों न हो, सभी को परिणाम भुगतने ही पड़ते हैं। गांधारी अपने तपोबल के सामर्थ्य से कृष्ण को अभिशाप देती है-

"तुमने किया है प्रभुता का दुरुपयोग
यदि मेरी सेवा में बल है
संचित तप में धर्म है
तो सुनो कृष्ण!
प्रभु हो या परात्पर हो
कुछ भी हो
सारा तुम्हारा वंश
इसी तरह पागल कुत्तों की तरह
एक-दूसरे को परस्पर फाड़ खाएगा
तुम खुद उनका विनाश करके कई वर्षों बाद
किसी घने जंगल में
साधारण व्याध के हाथों मारे जाओगे
प्रभु हो
पर मारे जाओगे पशुओं की तरह।"[11]

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. अंधा युग –धर्मवीर भारती, अड़तीसवाँ संस्करण 2006,किताब महलएजेंसीज- 22, सरोजनी नायडू मार्ग इलाहाबाद-01, पृष्ठ iii
2. कुरूक्षेत्र – रामधारी सिंह दिनकर, संस्करण 2014,राजपाल एण्ड सन्ज़्, कश्मीरी गेट, दिल्ली– 06, पृष्ठ 03
3. अंधा युग – धर्मवीर भारती, अड़तीसवाँ संस्करण 2006,किताब महलएजेंसीज- 22, सरोजनी नायडू मार्ग इलाहाबाद-01, पृष्ठ 03
4. वही, पृष्ठ 12
5. वही, पृष्ठ 75
6. वही
7. वही, पृष्ठ 77

8. वही, पृष्ठ 84-85
9. वही, पृष्ठ 04
10. वही, पृष्ठ 108
11. वही, पृष्ठ 81

बेटन कहानी में बाल विमर्श की चुनौतियाँ

डॉ. पुष्पा गोविंद गायकवाड

वै. धुंडा महाराज देगलूरकर, महाविद्यालय, देगलूर

बालक देश ओर समाज की रीठ है। उनका विकास ही देश का विकास है। वे कुम्हार की मिट्टी के लौदे की तरह है जिन्हे थपकाकार सहलाकर या हलकी सी चपत मारकर गढा जा सकता है। समुचित आकार दिया जा सकता है। यह कार्य बाल साहित्यकार भलि भाँति कर सकता है।

बाल साहित्य के अंतर्गत वह समस्त साहित्य आता है जिसे बच्चों के मानसिक स्तर को ध्यान में रखकर लिखा गया हो।

दूसरे शब्दो में बच्चो की रुचि भावना भाषा और मनोवृत्ति को समझकर लिखा गया साहित्य ही बाल साहित्य की श्रेणी में आता है।

आज के बच्चे कल के नागरिक है इसलिए उनको सही मूल्यों से अवगत कराकर पालना चाहिएँ। बच्चो में देश प्रेम पर्यावरण के प्रति जागरुकता संवेदनशीलता का पाठ पढाना भी आवश्यक है।

बाल साहित्य के तीन मुख्य उद्देश्य है

१) बालको को समझाना
२) बालको को सूचित करना
३) बालकों का मनोरंजन करना
४) बाल को की समस्या को दर्शाना

बेटन कहानी बालको की समस्याको लेकर लिखी गई कहानी है। बहुत ही संवेदनशीलता के साथ नीरजा माधव ने उसका चित्रण किया है।

बेटन डॉ. नीरजा माधव की एक मौलिक एंव संवेदनाशील कहानी है। इस कहानी में पशुपति नामक एक गरीब बच्चो की कथा को पूरी संवेदनाओं के साथ प्रस्तूत किया गया है।

नीरजा माधव ने वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर प्रकाश डाला है। आज की शिक्षा प्रणाली सामान्य वर्ग के लिए कितनी मंहगी है जहाँ पर आम लोगो के खाने के लाले पड जाते है वहाँ उनके बच्चे कौनसे स्कूल में शिक्षा ग्रहन करेंगे यह एक चिंतन का विषय है। सरकारी स्कूलो की संख्या घट रही है नीजी शिक्षालयों की संख्या बढ रही है। जिसमें बच्चों की फीस भी बहूत ज्यादा होती है। युनिफॉर्म बैग सब कुछ नया होता है।

ऐसी व्यवस्था में एक गाँव का गरीब बच्चा अपनी बहिनिया के पास शहर शिक्षा ग्रहन करने के लिए आता है। उसका मार्मिक चित्रण नीरजा माधवजीने किया है।

कहानी का प्रमुख पात्र पूतान गाँव में रहनेवाला गरीब बच्चा है जिसे शिक्षा ग्रहण करने की अपार इच्छा है। शिक्षा प्राप्त करने के लिए वह बहन के गाँव शहर सारनाथ जाता है। यहाँ के शिक्षा अर्जन में न उसके पास युनिफॉर्म है, न बैग है न किताबे है और नही समय पर उसे भोजन मिलता है। वह अपनी गरीब परिस्थितियों से संघर्ष करते हुये अपने बहन के आश्रय में पढने का प्रयास करता है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली गरीब बच्चो के लिए कितनी मंहगी है ऐसे में गरीब बच्चे शिक्षासे वंचित रह जाते है। उन्हे वह सुविधाँ नही मिलती। देश का बालक शिक्षा से उपेक्षित रहेगा तो देश का भविष्य कैसा होगा। आज का बालक कल का नागरीक है। उसे सब कुछ मिलना चाहिए। पर वर्तमान शिक्षा प्रणाली महंगी होनेसे गरीब बच्चे शिक्षा से वंचित मजदुरी करते हूये नजर आते है। तो कई बच्चे शिक्षा न मिलने पर चोरी डकेती करते हुऐ नजर आते है।

पूतान के पास शहरी शिक्षा के लिए आवश्यक साधन उसके पास न होने पर वह अपने घर वापिस चला जाता है।

नीरजा माधव ने भूख और अभाव से संघर्ष करते बच्चे का मनोवैज्ञानिक चित्रण बडे ही सुंदरता से किया है।

पूतान की बहिनिया उसे पढाने के लिए गाँव से शहर लेकर आती है। लेकिन जीजा के आगे वह लाचार गाय की तरह काँपती है। बेचारे जीजा भी क्या करे ? अपने दो बच्चों और परिवार का गुजर बसर ठीक से नही कर

पाते। उसी में पुतान का भी बोझ इसीलिए कभी उसने जीजा को बहिनिया से हँसकर बतियाते नही देखा। बस अपनी टूंटी साइकिल पर झोले में टिफिन टाँग खडर-खडर सुबह जाना और रात में लौटना कभी कभी उसी झोले में सट्टी से आलू प्याज बैंगन तो कभी पाँच किलो चावल दो किलो दाल भी लादे आते है। आते ही बहिनिया के सामने झोला पटकते हूए कहना नही भूलते है-

" किफायत से चलाना आग लगी है मँहगाई में " ऐसे में पुतान परेशान होता है पुतान खाली समय में सब्जी बेचने का काम भी करता है।

उसी रुपये से उसे युनिफॉर्म सिलवाने में मदत करता है। कई बार तो लकडीया सुखी न होने से चुल्हा नही जलता उसे भूखा ही स्कूल जाना पडता है। गरीबी के चपेट में किस तरह पिसा जा रहा है इसका यथार्थ चित्रण लेखिकाने किया है।

लेखिकाने गाँव के स्कूल का हाल पूतान के अम्मा द्वारा प्रस्तूत किया है उसी के शब्दो में "एक दो ये भी चोंचलेबाजी ही शुरुहुई है सरकार की तरफ से। अरे पढाई लिखाई गत की होती नही और दोपहर का भोजन दे रहे है मिट्टी मिला सब। ग्राम प्रधान और नेताजी खा-खा के लाल हो रहे है। एक और लूट खसोट का जरिया घर बैठे पकडा दिया उन सबके हाथ में नौटकी। मास्टर सब सुर्ती ठोंक-ठोक बहिनिया भतरिया करते है। महीने में नोट गिनकर टंच। लडिका पढे चाहे उफ्फर पढे देख नही रहे हो कितने कम हो गए इन स्कूल में लडके। जिसके पास जरा सी सुविधा हुई नही कि भेज दे रहा है दूसरे स्कूल में अपने बच्चे को पढाई नही होगी तो कोई क्या करेगा"?

आज की शिक्षा व्यवस्था तथा प्रधान योजना का पर्दाफाश किया है लेखिकाने।

पुतान शिक्षा ग्रहण करने के लिए बहिनिया के साथ शहर में रहने आता है स्कूल में जाने के लिए उसके पास स्कूलबैग नही है। युनिफॉर्म नही है पर स्कूल जाने की अपार क्षमता है। उसके बेटन को देखकर मॅडम उसे टोकती है।

उन्ही के शब्दो में

"ये क्या लेकर चले आते हो लामाओं की तरह स्कूल बैग क्यों नही ले आते ? वह चुप चाप सिर झूकाए खडा हो जाता उसकी मजबूरी मैडम को नही समझती वह सोचता है अब मैडम को अब मैडम को कैसे समझाएँ की बहूत सी बातें ऐसी होती है जिन्हे वह नही समझा सकता मैडम को और बहुत सी ऐसी बाते होती है जिन्हे मैडम नही समझा पाती उसे"।

पूतान के पास युनिफॉर्म न रहने से मैडम उसे सभी बच्चो के साथ कार्यक्रम में सम्मेलित होने नही देती बलिक उल्टा उसे सजा सूनाती है उसी के शब्दो में "तुम युनिफॉर्म में नही हो इसलिए कार्यक्रम में नही जाओंगे तुम्हारी सजा यही है कि तुम स्कूल में नही जाओंगे तुम्हारी सजा यही है कि तुम स्कूल मे सभी बच्चो के बैगो की रखवाली करोगे दाई भी रहेगी यहाँ और हाँ घर जाने से पहले मुझे से मिलकर जाना। तुम्हारे गार्जीयन के लिए मैसेज देना है"।

पुतान को समझनेवाला कोई नही है स्कूल की दाई उसे प्यारसे सहलाती है। भूख से व्याकूल पुतान रोता है। दाई ने ही दूसरे बच्चे के टिफीन में से एक पराठा उसे खाने के लिए दिया था। भूख के आगे वह हार गया था।

लेखिकाने बेटन कहानी में दो पहलूओंपर प्रकाश डाला है आज की शिक्षा प्रणाली कितनी मंहगी है गरीब के बच्चे इस व्यवस्था से दूर ही रहेंगे और मंचपर भाषण दिया जाता है। जीओ और जिने दो "।

पूतान के पास सुविधाओ का अभाव है। फिर भी स्कूल जाने की अपार क्षमता है। वह अपनी गरीब परिस्थितियें से संघर्ष करते हुए अपने बहन के आश्रय में पढने का प्रयास करता है। शहरी शिक्षा के लिए आवश्यक साधन उसके पास न होने पर वह अपने गाँव वापिस चला जाता है।

लेखिका नीरजा माधव ने भूख और अभाव से संघर्ष करते बच्चे का मनोवैज्ञानिक चित्रण बडे ही सुंदरता से किया है। कहानी के अन्त में पूतान का किसी अन्य विध्यार्थी का डब्बा खाने के बदले मैडम द्वारा डाँटा जाना कहानी को अधिक गम्भीर और प्रभावी बनाता है। वर्तमान संवेदना शून्य शिक्षा पध्दति में उसे अपना गाँव और बेटन याद आना उसके संघर्ष विराम को ही सुचित करता है। ऐसे अनेक बच्चे आज भी वर्तमान शिक्षा पध्दति से वंचित होकर भूख से दम तोडते नजर आते है।

निष्कर्ष :-

लेखिकाने आज की शिक्षा व्यवस्था की पोल खोल दी है। आजभी हमारे देश में पूतान की तरह अजारो बच्चे शिक्षा से वंचित रहते है। नीजी शिक्षालयों की बढती फिस युनिफॉर्म नयासूट टाय बैग किताबे ऐसे अनुशासन में

गाँव के बच्चे घूटने टेक देते है। मन में शिक्षा ग्रहण करने की अपार क्षमता होते हुये भी वे गरीबी के कारण परिस्थितियों के आगे हार जाते है।

"जिओ और जिने दो" यह वाक्य मंच पर ही जचता है। गरीब बच्चे के लिए यह झूठ साबित हो रहा है।

गरी बच्चो के लिए छात्रावास की हर शहर में व्यवस्था होनी चाहिए। उन्हे शिक्षा का अवसर मिलना चाहिए।

आज के बच्चे कल के नागरिक है। इस देश का भावी नागरिक सक्षम रहा तो, देश का विकास भी अवश्य होगा।

संदर्भ ग्रंथ :-

1) हिन्दी बाल साहित्य - डॉ रावसाहेब जाधव

2) साहित्य सौरभ : डॉ. सुजिसिंह परिहार पृ. 94,98,99

कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्री विमर्श

डॉ.जी.बी.उषमवार

हिंदी विभाग, श्री सिद्धेश्वर महाविद्यालय, माजलगाव जि.बीड – ४३११३१

दूरभाष-९६२३७८५४७७ ,ईमेल- gbushamwar@gmail.com

प्रस्तावना

स्त्री विमर्श उस साहित्सिक आंदोलन को कहा जाता है, जिसमें स्त्री अस्मिता को केन्द्र में रखकर संगठिता रूप से स्त्री साहित्य की रचना की गयी। हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श अन्य अस्मितामूलक विमर्शो कि भांति ही मुख्य विमर्श रहा है, जो कि लिंग विमर्श पर आधारित है। स्त्री विमर्श को अंग्रेजी में 'फेमिलिज्म' कहा गया है। हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री विमर्श जिसमें स्त्री जीवन की अनेक समस्त्याएँ देखने को मिलती है। हिन्दी साहित्य में छायावाद काल से स्त्री विमर्श का जन्म माना जाता है। महादेवी वर्मा की 'श्रृंखला की कडियाँ' स्त्री सशक्तिकरण का सुन्दर उदाहरण है। प्रेमचंद से लेकर आज तक अनेक पुरुष लेखकों ने स्त्री समस्या को अपना विषय बनाया परन्तु उस रूप में नहीं लिखा जिस प्रकार महिला लेखिकाओं ने लिखा है। सन् १९६० ई.के आस-पास स्त्री सशक्तिकरण जोर पकडा, जिसमे चार नाम चर्चित हुए है। उषा प्रियम्बदा, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी एवं शिवानी आदि लेखिकाओ ने स्त्री मन की अंतर्द्वंद्ववों एवं आप बीती घटनाओं को उकरेना शुरू किए और आज स्त्री – विमर्श एक ज्वलंत मुद्दा है। प्रत्येक युग में मानव जीवन समस्याओं से घिरा होता है। समूचे विश्व का कथा-साहित्य इस बात का साक्षी है। हिन्दी के अधिकांश कथाकारों ने भी स्त्री को केन्द्र में रखकर रचनाएँ की हैं और स्त्री को देखने-परखने की कोशिश की है। स्त्री हृदय की व्यथा-कथा जितनी ईमानदारी के साथ स्त्री लिख सकती है, उतनी पुरुष नहीं। लेखिका स्वयं स्त्री है, अतः स्त्री के स्वभाव, उसकी चेतना का सजीव प्रस्तुतीकरण करने की क्षमता लेखकों की अपेक्षा उसमें अधिक रहती है।

मानव जीवन को समस्याओं से पृथक् नहीं किया जा सकता। इन समस्याओं से जूझते हुए ही वह अंत में लक्ष्य तक पहुँचता है। इसलिए संघर्ष का ही दूसरा नाम जीवन है। जीवन की विविध समस्याओं का उद्घाटन और उसका हल हर समय संभव नहीं होता, फिर भी आज के साहित्यकार का प्रधान लक्ष्य जीवन की जटिलताओं का चित्रण करना रहा है। चेतना के स्तर पर परिस्थितियाँ विषम होकर उलझ जाती हैं तो स्वयं में समस्या उत्पन्न हो जाती है। समस्याएँ निरंतर जन्म लेती है, बढ़ती है, चलती है। स्वातंत्र्योत्तर स्त्री कथाकारों में लेखिका कृष्णा सोबती का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इन्होंने स्त्री और उससे जुड़ी समस्याओं को अपनी रचनाओं में विशेष स्थान दिया है। यूं भी स्वातंत्र्योत्तर स्त्री की धीरे-धीरे बदलती जीवन दृष्टि, उनका बौद्धिक दृष्टिकोण, निजी व्यक्तित्व के प्रति पितृसत्तात्मक व्यवस्था से विभिन्न संदर्भों में मुक्ति के छटपटाहट आदि आधुनिकता के बावजूद भी ऐसी समस्याएँ हैं जो लगभग हर स्वातंत्र्योत्तर कथाकार को स्त्री-जीवन पर सोचने के लिए विवश कर रही हैं।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था होने के कारण हमारे समाज में बच्चे की पहचान पिता के नाम से होती है। पिता के पश्चात् पुत्र ही उसका उतराधिकारी माना जाता है, पुत्र से ही वंश आगे बढ़ता है। अतः पुत्र प्राप्ति के लिए मन्नतें माँगी जाती हैं जबकि पुत्रियाँ अनिच्छित अनचाही संतानों के रूप में जन्म लेती हैं। बेटा पैदा होने पर खुशियाँ मनाई जाती हैं, मिठाई बाँटी जाती है जबकि बेटी पैदा होने पर घर में उदासी छा जाती है। लड़की के पैदा होते ही माता-पिता को अपने कंधों पर बोझ महसूस होने लगता है, उसके विवाह के लिए दहेज की चिंता सताने लगती है।

ऐसी ही चिंताओं से बचने के लिए कुछेक वर्षों पहले तक लड़की के पैदा होते ही उसे खोलते दूध में डुबाकर या फिर अफीम देकर मार दिया जाता था। हालात आज भी कुछ खास नहीं सुधरे हैं बल्कि अब तो आधुनिक टेक्नोलोजी की सहायता से जन्म के पूर्व ही लड़कियों को समाप्त करने के आसान तरीके खोज लिए गये हैं। गर्भ में ही भ्रूण हत्या का सिलसिला चल पड़ा है। अब तो बेटी के समाप्त करने के नौ महीनों का भी इंतजार नहीं करना पड़ता। विज्ञान की मदत से गर्भ में पल रहे शिशु का लिंग मालूम करके, बेटी होने पर उसे गर्भ में ही समाप्त कर दिया जाता है। लेखिका कृष्णा सोबती के शब्दों में - **"पुरानी व्यवस्था अब भी कायम है नए बदलावों के साथ लड़के और लड़की में भेद। परिवार में पुत्री और पुत्र का अबोला द्वंद्व जारी है। गर्भ में ही पुत्रियों की हत्या और पुत्रों के संरक्षण साधन। भाई-बहनों में झगड़े चलते रहते हैं। कानून बन चुके हैं, मगर उन्हें लागू कौन करेगा।"** १ संविधान द्वारा बेटे-बेटी को समान अधिकार प्रदान किए गए हैं, पुत्री को भी पिता की संपत्ति में कानूनी तौर पर पुत्र के बराबर हिस्सेदारी दी गई मगर फिर भी समाज में बेटे-बेटी का भेद बदस्तूर कायम है। हमारे समाज में स्त्रियों की स्थिति अभी काफी खराब है उन्हे पुरुषो के समान दर्जा पाने में बरसों लगेंगे।

भारतीय समाज में विधवा स्त्री का जीवन अभिशिप्त जीवन है। स्त्री के विधवा होते ही सम्मान रासरंग, आनंद, प्रसन्नता जीवंतता आदि सब उसके जीवन से पृथककर दिए जाते हैं। स्त्री जीवन में वैधव्य का आगमन उसकी दर्दनाक कहानी का आरंभ है। विधवा होना हमारे यहाँ आज भी स्त्री के लिए अभिशाप सिद्ध होता है। ऐसी स्थिति में उसे नीरस, अर्थहीन और पशुवत जिंदगी जीनी पड़ती है। यही नहीं तो उसका जीना एक लाश के समान बन जाता है। केवल अंतर यह है कि वह चलती फिरती लाश होती है। समाज में उसका कोई सम्मान नहीं होता। यहाँ तक कि परिवार में भी वह दीन-हीन और अर्थहीन जीवन जीने को विवश होती है। विधवा होते ही घर का सारा कारोबार बहु-बेटों के हाथ चला जाता है। परिवार में नानी माँ का कुछ चलता नहीं था। पाशो की जिम्मेदारी भी बहू-बेटों ने ले ली थी। बहू-बेटे परिवार में जो कहते वही होता था। पाशो के प्रति प्रेम होने पर से भी वह बहू-बेटों के सामने व्यक्त नहीं कर पाती। बहू और बेटे जो कहते वही मान लेती है। पाशो जब अपना माथा कटोरे से पीट लेती है तब बेचारी नानी माँ की स्थिति दयनीय हो जाती है। लेखिका के शब्दों में – **"सिर हिलाती काँपती सी नानी पास आई और कुछ कहते-कहते रुक गई। ठुड्डी छू मुँह ऊपर उठाया और कन्धों से घेरकर चारपाई पर जा लिटाया। माथा पोंछ नानी ने घी लगाया तो दाँतों तले जीभ दबा गुमसुम पड़ी रही। न कराही, न रोई, न हिली डुली।"** २ अर्थात् नानी माँ बहुओं पर गुस्सा नहीं कर सकती। क्योंकि वह विधवा है इसलिए उसका घर में कुछ भी सम्मान नहीं। बेटों से वह बहुत डरती है। एक तरफ हम चाँद पर जा रहे दूसरी ओर शुभ कार्य पर विधवा स्त्री को अशुभ माने जाते है।

आज स्त्रियाँ पढ़-लिखकर हर क्षेत्र में पुरुषों से कदम-से-कदम मिलाकर चल रही हैं, उच्च पदों पर आसीन हो रही हैं, बड़ी-बड़ी कंपनियों को सँभाल रही हैं, सेना में भर्ती होकर देश रक्षा में सक्रिय योगदान दे रही हैं अर्थात् जीवन का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो जहां स्त्रियाँ पहुँच न पाई हो। मगर अफसोस, आज की स्त्री की ये अभूतपूर्व सफलताएँ भी भारतीय पुरुषों की स्त्री संबंधी परंपरागत सोच को बदल नहीं पाई हैं। ऊपरी तौर पर आधुनिक दिखाई देनेवाले यहाँ तक कि अपने आप को इक्कीसवीं सदी का आधुनिक पुरुष कहने और माननेवाले पुरुष भी भीतर से उसी सोलहवीं सदी की दकियानूसी मानसिकता से ग्रस्त हैं। जानी-मानी मनोचिकित्सक अरुणा ब्रूटो का भी कहना है – **"पुरुष सफल औरतों को सशंकित होकर देखते हैं।... पुरुष एक खूबसूरत गुड़िया चाहता है जो हर निर्णय में उस पर निर्भर करे। वह दिखाना वाहता है कि बागडोर उसी के हाथ में है।"** ३ वेदों में स्त्री को पुरुष की 'अर्द्धांगिनी' अर्थात् 'आधा अंग' कहा गया है, लेकिन व्यवहार में पुरुष उसे अपनी अनुगामिनी देखने का ही अभ्यस्त

रहा है। पुरुष प्रधान समाज होने के कारण पुरुष हमेशा से स्त्री जगत पर हावी रहे हैं। पुरुष स्वयं 'परमेश्वर' के पद पर आसीन रहा और उसने स्त्री को पुजारन के रूप में देखना चाहा। पुरुष मानसिकता सदियों से स्त्रियों पर राज करने की रही है और आज भी हमारा भारतीय पुरुष वर्ग अपनी इस परंपरावादी मानसिकता से उबर नहीं पा रहा।

पुरुष की दृष्टि में घर की चार दीवारी ही स्त्री का कर्मक्षेत्र है। उसका मानना है कि घर में पति की सेवा करना बेड़ बुजुगों का आदर करना और बच्चों की देखभाल करना ही स्त्रियों का सबसे बड़ा कर्तव्य है। अपना दबदबा बनाए रखने के लिए समर्पण और व्यक्तिगत इच्छा के हनन को उनके व्यक्तित्व के अभिन्न अंगों के रूप में माना गया है। पुरुष हर पल इन तथाकथित कर्तव्यों की नारी को याद दिलाता है और स्त्रियाँ चाहे या ना चाहे इनके पालन के लिए उन्हें विवश किया जाता है। पति होने के नाते वे अपनी पत्नी पर अधिकार जमाते है। गलती से पत्नी कभी कोई प्रश्न कर बैठे तो पुरुषों की मानसिकता मुखर हो उठती है। लेखिका कृष्णा सोबती के शब्दों में – **"आपको हमारी कारगुजारियों से भी भला क्या लेना। आखिर को हम मर्द हैं। छोटे-मोटे गुनाहों पर क्या खाक उड़ाती जाइएगा।"** ४ अर्थात् स्त्रियों के सही को भी गलत कहना पुरुष अपना अधिकार मानता है जबकि पुरुष के गलत को भी गलत कहने का हक्क स्त्रियों के पास नहीं। परंपरावादी पुरुषों की दृष्टि में स्वतंत्रता पुरुषों का जन्मसिद्ध अधिकार है स्त्रियों को उसमें दखल देने का कोई अधिकार नही है। आजादी की ७५ वर्ष बीत गए परंतु अभी भी स्त्री आजादी नही हुई।

सदियों से भारतीय स्त्री घर गृहस्थी के नाम पर शोषण का शिकार होती आई है। अधिकारों से वंचित स्त्री के हिस्से में सदा ही कर्तव्य आये हैं माँ के कर्तव्य, पत्नी के कर्तव्य, बेटी के कर्तव्य, बहन के कर्तव्य। कर्तव्यों के नाम पर स्त्री का पूरा जीवन घर की चारदीवारी में होम होता है। चलाई होती न परिवार की गाड़ी तुमने भी, तो अब तक समझ गई होती कि गृहस्थी में सारी शोभा नामों की है। माँ है, नानी है, दादी है। फिर वही खाना, यह इसकी पत्नी है, बहू है, पहनना और गहना। लड़की वह नाम की ही महारानी है। सब कुछ पोंछ-पाँछ के उसे बिठा दिया जाता है अपनी जगह पर। परंपरागत भारतीय परिवारों में पुरुष ही निर्णायक होता है चाहे मामला विवाह का हो, शिक्षा का हो या कुछ ओर। परिवार के मुखिया ने जो कह दिया वह पत्थर की लकीर। यहाँ तक कि सुबह जागने से लेकर रात को सोने तक की दिनचर्या पति ही तय करता है। पत्नी के हँसने-बोलने, पहनने-ओढ़ने, मिलने-जुलने पर भी पति का राज चलता है। विडंबना ही है कि जो स्त्री दांपत्य जीवन के यज्ञ में जीवन भर आहुति देती है, उसकी अपनी इच्छा का कोई मोल नहीं होता। किसी भी मामले में उसकी इच्छा अनिच्छा जानना तक उचित नहीं समझा जाता। बचपन से उसे छुट्टी दी जाती है कि तुम लड़की हो, अतः घर की चार दीवारी तुम्हारा संसार है। संबंधों से जुड़ी नैतिकता व कर्तव्य उस पर लाद दिए जाते हैं और 'मानवी' के रूप में उसकी स्वाधीन आत्मा को नकार दिया जाता है। यह स्त्री का शोषण नहीं तो और है? रिश्तों की भावनात्मक डोर में बँधी नारी अपने लिए तो जी नहीं पाती। कभी 'बेटी' का नाम देकर, कभी 'पत्नी' कहकर तो कभी माँ के रूप में सदा वह शोषण का शिकार होती है। इस लेखिका कहती है - **"माँ पैदा करती है। पाल-पोसकर बड़ा करती है। फिर उसी की कुर्बानी ! माँ को टुकड़ो में बाँटकर परिवार उसे यहाँ-वहाँ फैला देता है माँ को गाय या धाय बनाकर रखे रहते हैं। खटती रहे। सुख देती रहे। उसका काम बस इतना ही है।"** ५ आज पढ़-लिखकर स्त्री अपने पैरों पर खड़ी हो रही है, घर से बाहर निकलकर दफतरों में काम कर रही है, पुरुषों के कदम से कदम मिलाकर चलने का प्रयास कर रही है। सतही तोर पर आधुनिक स्त्री की यह छवि मोहक और प्रशंसनीय है पंरतु गहराई में जाकर देखें तो यह शिक्षित, कामकाजी औरत दफतरों में भी अनेकविध शोषणों का शिकार हो रही है।

शिक्षा और आत्मनिर्भरता के कारण स्त्री के आचार-विचार, रहन-सहन, उठने-बैठने और विशेष रूप से उसके सोचने के ढंग में परिवर्तन आने लगा है। नई सोच ने स्त्री जीवन से जुड़े हर पहलू को प्रभावित किया है, चाहे मामला स्त्री-पुरुष समान अधिकार का हो, आर्थिक स्वतंत्रता का हो या विवाह का। स्त्री का विवाह संबंधी दृष्टिकोण भी परिवर्तित हुआ है। स्वतंत्रता के पश्चात् मोहभंग की स्थिति के कारण विवाह व्यवस्था और पति-पत्नी के संबंधों में बड़े भारी परिवर्तन हुए हैं। एक समय था जब विवाह पवित्र धार्मिक बंधन समझा था । स्त्री भगवान भरोसे पति के अत्याचार सहकर भी पति परायण बनी रहती थी। लेकिन आधुनिक स्त्री अपने अधिकारों के प्रति सचेत हुई है। वह कानूनी तौर पर अधिक सुरक्षित तथा आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र है, अतः उसकी अस्मिता व अहम् पुरुष की अपेक्षा गौण भूमिका स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं। व्यक्तित्व के प्रति जागरुकता के कारण आज की स्त्री में एक ओर परिस्थितिवश आरोपित वैवाहिक बंधन की रुढ़िवादी कृतज्ञताओं के निर्वाह के प्रति बौद्धिक विद्रोह अंकुरित हुआ है तो दूसरी ओर बढ़ रही समान अधिकारी की भावना के कारण वह केवल पति की दासी एवं सुख-विलास की सामग्री बनना नहीं चाहती। आज की स्त्री वैवाहिक आदर्शों से संबद्ध अंधश्रद्धा एवं कृतज्ञता को उपहासास्पद वस्तु मान रही है। परिणामतः समकालीन पारिवारिरक एवं सामाजिक जीवन में विघटन के चिन्ह परिलक्षित हो रहे हैं। आधुनिक अर्थ व्यवस्था, औद्योगिक क्रान्ति, नारी की नयी चेतना अर्थात् स्त्री-स्वातंत्र्य और बढँती हुई स्त्री शिक्षा आदि का विवाह संस्था पर गहरा प्रभाव पड़ा है। इसके फलस्वरूप प्रेम विवाह, अंतर्जातीय विवाह, विधवा विवाह आदि के रूप में विवाह संस्कार परिवर्तित होता नजर आ रहा है। विवाह अब एक धार्मिक या सामाजिक कर्म न होकर स्त्री-पुरुष की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति का एक सर्वसामान्य साधन हो गया है। स्त्री अब पति को देवता स्वीकार करनेवाली और अपने व्यक्तित्व को पति के व्यक्तित्व में विलीन कर देनेवाली नहीं रही, अपितु उसने अपने व्यक्तित्व का स्वतंत्र विकास किया है और विवाह के पश्चात् भी अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को बनाए रखना चाहती है। लेखिका कृष्णा सोबती के शब्दों में – **"सूसन, शादी के बाद किसी के हाथ का झुमझुना नहीं बनना। अपनी ताकत बनाने की कोशिश करना।"** ६ विवाह स्वस्थ समाज की संस्कृति का आवश्यक अंग है। हमारे यहाँ प्राचीन काल से विवाह का महत्व रहा है। विवाह एक पवित्र संस्कार है। आजकल कुछ शिक्षित लड़के-लड़कियाँ नियोजित विवाह को पसंद नहीं करते। यदि माँ-बाप के लिए शादी करते हैं तो उसे अंत तक निभा नहीं पाते। कुछ शिक्षितों की दृष्टि से विवाह संस्था व्यर्थ है।

निष्कर्ष:-

हम कह सकते हैं कि कृष्णा सोबती का समग्र कथा साहित्य उनके अनुभव की उपज है। साहित्य जीवन का दर्पण है। उनके लेखन के केन्द्र में उनका अनुभव जगत है। कृष्णाजीने स्त्री की जिन्दगी को अपनी आँखों से देखा है। अंतः इन सबका चित्रण उनके कथा साहित्य में सहज भाव से आया है। स्वयं एक संवेदनशील स्त्री होने के कारण स्वाभाविक रूप से उनके कथा-साहित्य में स्त्री चित्रण को अधिक स्थान मिला है। इतना ही नहीं अत्यंत कलात्मकता के साथ स्त्री समस्याओं को उजागर किया है। कृष्णाजी ने स्त्री समस्याओं को बेहतर समझा और अंकित किया है। इनके उपन्यासों में समय के साथ बदलती स्त्री की मानसिकता और समस्याएँ यथार्थ रूप में उजागर हुई हैं और समाज के सामने प्रश्न बनकर उभरी हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

१. डार से बिछुडी – कृष्णा सोबती, पृ.सं.४९

२. डार से बिछुडी – कृष्णा सोबती, पृ.सं.२०

३. दिलो दानिश – कृष्णा सोबती, पृ.सं.६५

४. दिलो दानिश – कृष्णा सोबती, पृ.सं.६६

५. हिंदी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना – डॉ.उषा यादव, पृ.सं.१७७

६. ऐ लडकी - कृष्णा सोबती, पृ.सं.६५

राजभाषा हिंदी चिंतन और चुनौतियाँ

डॉ. देविदास भिमराव जाधव

हिंदी विभागाध्यक्ष,पानसरे महाविद्यालय अर्जापूर रतहसील बिलोली जिला नांदेड़

ईमेल : drdevidasjadhav2@gmail.com, मो. 7875383882

भाषा मनुष्य के भावों और विचारों को एक दूसरे तक पहुँचाने सशक्त माध्यम है। जिसके अभाव में मानव सभ्यता अधुरी रह जाएगी। समस्त विश्व में केवल मनुष्य के पास ही विकसित भाषा विद्यमान है। जिसके जरिए वह अपना सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास कर पाया है। मानव समाज के साथ ही भाषा का भी बराबर विकास होता आया है। इसी विकास के कारण भाषाओं में सदा परिवर्तन होता रहता है। सामान्यत: भाषा को वैचारिक आदान-प्रदान का माध्यम कहा जा सकता है। भाषा अभिव्यक्ति का सर्वाधिक विश्वसनीय माध्यम है। यही नहीं, यह हमारे समाज के निर्माण, विकास, अस्मिता, सामाजिक व सांस्कृतिक पहचान का भी महत्वपूर्ण साधन है। भाषा के बिना मनुष्य अपूर्ण है।

संविधान सभा में जिन विषयों पर बहस हुई, उनमें सबसे विवादास्पद और उत्तेजक प्रश्न भाषा को लेकर था। संविधान सभा में कौन सी भाषा बोली जानी चाहिए, संविधान लिखने के लिए कौन सी भाषा का उपयोग किया जाना चाहिए, और किस भाषा को राजभाषा' का एकल लेबल दिया जाना चाहिए, इस पर कई चर्चाएँ हुईं। आजादी के बाद संविधान सभा ने संघ की राजभाषा के रूप में हिंदी को स्वीकार किया है। संविधान में अनुच्छेद 343 से 351 तक राजभाषा के रुप में हिंदी की स्थिति को बताया गया है। बता दें कि संविधान सभा ने काफी विचार विमर्श करने के बाद 14 सितम्बर सन् 1949 को हिन्दी को भारत की राजभाषा का दर्जा दिया। अनुच्छेद 343(1) में देवनागरी लिपि लिखी जानेवाली हिंदी को संघ की राजभाषा कहा गया है, साथ ही प्रारंभ के 15 वर्षों तक अंग्रेज़ी के प्रयोग को भी सभी शासकीय कार्यों के लिए मान्यता दी गई।

अनुच्छेद 344 के अनुसार प्रत्येक पाँच वर्ष के पश्चात् राष्ट्रपति एक भाषा आयोग की नियुक्ति करेंगे। वह आयोग हिंदी का उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग करने और अंग्रेज़ी का प्रयोग घटाने की सिफ़ारिश करेगा। अनुच्छेद 345, 346, 347 के अनुसार दो प्रदेशों के बीच अथवा एक प्रदेश और संघ के बीच संवाद विनिमय के लिए अंग्रेज़ी अथवा हिंदी का और परस्पर समझौते से केवल हिंदी का प्रयोग किया जा सकेगा। किसी राज्य की विधानसभा विधि द्वारा अपने प्रदेश की भाषा को मान्यता प्रदान कर सकेगी। यदि कोई राज्य अंग्रेजी को जारी नहीं रखना चाहता तो विधि द्वारा उस प्रदेश की भाषा राजभाषा हो जाएगी। उच्च न्यायालय तथा उच्चतम न्यायालय की भाषा अंग्रेज़ी होगी किंतु राष्ट्रपति या राज्यपाल की पूर्व सम्मति से हिंदी अथवा उस राज्य की भाषा का प्रयोग उच्च न्यायालय की कार्यवाही के लिए प्राधिकृत किया जा सकेगा। राजकीय प्रयोजनों में हिंदी के विकास के लिए अनुच्छेद 351 का विशेष महत्व है। संघ को यह कार्य 15 वर्षों में कर लेना चाहिए था किंतु राजनीतिक इच्छा के अभाव में छह दशकों के बाद भी संघ अपने कर्तव्य को बहुत कम पूरा कर पाया है। राजभाषा अधिनियम, 1967 के द्वारा अंग्रेज़ी के प्रयोग को अनिश्चित समय तक जारी रखने का उपबंध भी किया गया है जिसके फलस्वरूप अब कोई प्रदेश तक चाहेगा, अंग्रेजी को भी संघ की राजभाषा के रूप में अपनाता रह सकेगा। इस प्रावधान से अब मिज़ोरम, नगालैंड

आदि प्रदेश जिन्होंने अपनी प्रादेशिक भाषा ही अंग्रेजी अपना रखी है, हिंदी से जुड़ने की इच्छा शक्ति खत्म कर चुके हैं।

गाँधी जी ने अंग्रेज़ी के इस मोह से पिंड छुड़ाना 'स्वराज' का अनिवार्य अंग माना था, किंतु देश की विडंबना है कि वह इस मोह से छूटने की बजाय दिन-प्रतिदिन उसमें जकड़ता जा रहा है। एक समझौता हुआ जिसके परिणामस्वरूप 1963 में राजभाषा अधिनियम लागू किया गया। इस अधिनियम का मूल उद्देश्य हिंदी और गैर-हिंदी दोनों समर्थकों को संतुष्ट करना था। समावेशी राष्ट्रवाद के समर्थक के रूप में, नेहरू ने संसद में अपना व्यक्तिगत आश्वासन दिया कि गैर-हिंदी भाषी राज्यों पर हिंदी थोपने का कोई प्रयास नहीं किया जाएगा। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन ने सही कहा था-"हिंदी को राजभाषा करने के बाद पूरे पंद्रह वर्ष तक अंग्रेजी का प्रयोग करना पीछे कदम हटाना है।"[1]

प्रत्येक 14 सितंबर को सरकारी कार्यालय प्रायः हिंदी दिवस, सप्ताह, पखवाड़ा या मास का आयोजन करते हैं किंतु जितनी निष्ठा से हिंदी को अपनाने पर बल देना होना चाहिए वह नहीं करते। राजभाषा के रूप में कभी हम अंग्रेज़ी के अनुवाद बहुत जटिल कर बैठते हैं, कभी वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित तकनीकी शब्दों का प्रयोग नहीं करके भ्रम फैलाते हैं, कभी हिंदी के शब्द-कोश, टंकण, कंप्यूटर आदि खरीदने में शिथिलता बरतते हैं, कभी अंग्रेज़ी का जो ढर्रा चला आ रहा है उसे बदलने में संकोच या आलस करते हैं। दरअसल हर सरकारी कर्मचारी यदि अपने राष्ट्रीय एवं भाषाई बोध से गर्वित होकर कष्ट उठाकर भी हिंदी को अपनाने का संकल्प कर ले तो राजभाषा के रूप में हिंदी का शत-प्रतिशत व्यवहार संभव हो सकता है । हम संकल्प लें और करें, अन्य कोई उपाय नहीं है। यह जानते हुए भी कि हिंदी को भारत की पहचान के लिए जीवित रहना ही नहीं मुखर रहना भी आवश्यक है।

अपनी पहचान के लिए हमें हर हाल में, इस संबंध को समझना और जीना होगा। बिना इसके भारतीयता का कोई अर्थ नहीं रह जाता। हिंदी बहती नदी की धारा की तरह सब के लिए उपयोगी और कल्याणकारी रही है। यही कारण है गैर हिंदी भाषा भाषी क्षेत्रों के हिंदी उन्नायकों ने हिंदी को जन भाषा के रूप में स्वीकार करते हुए इसके उत्थान के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। वह चाहे गुजराती भाषा भाषी महर्षि दयानंद और गांधी रहे हों, बंगाल के राजाराम मोहन राय, केशवचन्द्र सेन और रवींद्र नाथ टैगोर तथा नेता सुभाष रहे हों, या महाराष्ट्र के नामदेव, गोखले और रानाडे रहे हों। इसी तरह तमिलनाडु के सुब्रह्मण्यम भारती, पंजाब के लाला लाजपत राय, आंध्र प्रदेश के प्रो. जी. सुंदर रेड्डी जैसे अनेक अहिंदी भाषा भाषी क्षेत्रों में हिंदी को बढ़ावा देने के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य किए। राजभाषा हिंदी के सामने चुनौतियाँ इस प्रकार है -

प्रादेशिक भाषावाद : हिन्दी भाषाविद्, चिंतक, साहित्यकारों की चिन्ता हिन्दी में अंग्रेजी एवं उर्दू के जिस बढ़ते हुए प्रयोग, भाषाई स्तरीयता में कमी की ओर है। दक्षिण भारत के लगभग सभी राज्यों में प्रादेशिक भाषाओं को प्राथमिकता दी जा रही है। प्रशासन और कार्यालय की भाषा से राजभाषा हिंदी पिछड़ रही है। जैसे महाराष्ट्र में मराठी भाषा की प्राथमिकता के लिए जनांदोलन हो रहा है। देश के विभिन्न हिस्सों में अंग्रेजी ने अपना प्रभाव और प्रभुत्व जमाएं रखा है। ऐसी स्थिति में राजभाषा हिंदी पिछड़ रही है। उस पर भाषाविदों, साहित्यकारों, चिन्तकों को अपने स्तर से हिन्दी के मूल शब्दकोश, स्तरीयता, व्याकरण, एवं शोधों पर कार्य करते रहना चाहिए, साथ ही गोष्ठियों, परिचर्चाओं, समितियों का क्षेत्र आमजन तक विस्तरित करना होगा। हिन्दी भाषा के प्रयोग को लेकर लोगों का झुकाव एवं आकर्षण इस बात का सुखद संकेत है कि लोग अपने मूल की ओर धीरे-धीरे ही सही लौट तो रहे हैं।

शासन एवं प्रशासन की उदासीनता : केंद्र और राज्य की सरकार अगर चाहे तो राजभाषा हिंदी का भविष्य उज्जवल बना सकते हैं। किन्तु सरकार इस ओर उदासीन दिखाई दे रही है। प्रशासन तंत्र को हिन्दी के विकास के लिए अपने स्तर से हिन्दी के प्रयोग, शिक्षा एवं संचार में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। शिक्षा विभाग में हिंदी की अनिवार्यता पर जोर देना होगा तभी सभी लोग इसे अपनायेंगे। नौकरी में हिंदी भाषा के छात्रों के लिए कुछ प्रतिशत का आरक्षण दिये जाने पर निश्चित रूप से हिंदी को बढ़ावा मिलेगा। जहाँ तक अंग्रेजी एवं उर्दू के बढ़ते प्रयोग की बात है तो, मेरा मानना है कि इस पर जैसे-जैसे लोग हिन्दी के प्रयोग की दिशा में कदम बढ़ाते जाएंगे वैसे-वैसे ही शुध्द हिन्दी सीखने एवं प्रयोग करने की ओर भी अग्रसर होंगे। अतः न केवल राजनीतिक निर्णय के रूप में बल्कि आम जनता के भावात्मक एवं बौद्धिक विकास की दृष्टि से हिंदी को संघ की राजभाषा के रूप पूरे देश में, सभी प्रादेशिक सरकारों द्वारा अंगीकार करना चाहिए। विनयमोहन शर्मा ने लिखा है -"हिन्दी का शासकीय प्रशासकीय क्षेत्रों से प्रचार न किया गया तो भविष्य अंधकारमय हो सकता है।"[2]

प्रतियोगीता परीक्षाओं में हिंदी : देश की प्रतिष्ठित सेवाओं में शुमार संघ लोक सेवा आयोग की परीक्षा भी इंग्लिश के वर्चस्व को तोड़ने में नाकाम रही है क्योंकि यहां हर साल परीक्षा में चयनित विद्यार्थियों में अधिकांश का परीक्षा का माध्यम अंग्रेजी होता है। कुछ गिने-चुने ही छात्र होते हैं जो अपनी मातृभाषा और हिंदी भाषा के जरिए इस पद तक पहुँचने की क्षमता रखते हों। हिंदी माध्यम के सभी छात्रों को यह मौका दिया जाए तो राजभाषा कार्यान्वयन समिति को हिंदी राजभाषा के लिए अलग से प्रयास करने आवश्यकता नहीं है। इस प्रयास से राष्ट्रीय एकता और अखंडता भी बनीं रहेगी और हिंदी के प्रति स्वाभिमान भी बढ़ेगा। अतः राष्ट्र विकास की नई उड़ान भरने लगेगा। डॉ. श्यामसुंदर दास ने कहा था कि,-"क्या संसार में कहीं का भी आप एक दृष्टांत उद्धृत कर सकते हैं जहाँ बालकों की शिक्षा विदेशी भाषाओं द्वारा होती हो।"[3]

फिल्मों में अंग्रेजी का बढ़ता प्रभाव : सिनेमा भाषा के प्रचार-प्रसार का एक बहुत ही अच्छा माध्यम है। सिनेमा में हर तरह की हिंदी के लिए जगह है। फिल्म में पात्रों की भूमिका व परिस्थतियों को देखकर ही भाषा का प्रयोग किया जाता है। जिससे प्रारंभिक दौर से लेकर आज तक इसका रूप निरंतर परिवर्तित होता जा रहा है। दैनिक 'हिन्दुस्तान' ने अपने वेबपेज पर'हिन्दी फिल्में, कितनी हिन्दी' शीर्षक से एक पोस्ट लगायी। जैसा कि शीर्षक से ही जाहिर है, हिन्दी फिल्म इंडस्ट्री में 'हिन्दी से भरपूर नाम-दाम कमाने वाले अपने कामकाज और जीवन में हिन्दी को कितना सम्मान देते हैं, कितना अपनाते हैं? अख़बार की इस 'हिन्दी-चिन्ता' में जावेद अख्तर यह कहते हुए शामिल हुए कि "इधर हमारी फिल्म इंडस्ट्री में अंग्रेजी का बोलबाला है।..ज्यादातर हिंदी फिल्मों में स्क्रिप्ट की जो हालत हो रही है, उससे मैं बहुत दुखी हूं। "जावेद साहब ने खेद के साथ बताते हैं कि "आज अंग्रेजी के लोग हिंदी फिल्मों के पटकथा लेखन में अपना योगदान दे रहे है" जबकि हिंदी या उर्दू का उन्हें समुचित ज्ञान नहीं है।"[4] ऐसी स्थिति में राजभाषा हिंदी का महत्व कम होना स्वाभाविक है। इस पर सेंसर बोर्ड को भी सख्त होने की आवश्यकता है।

अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय : विगत के लगभग 10 वर्षों में अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों की बयार गांव-गांव तक पहुंची है जो हैरान करने वाली है, अब हम एक ऐसे भारत का निर्माण करने में लगे हैं जहां अंग्रेजी का सम्मोहन जबरदस्त है या यूं कहें की अंग्रेजी एक नए फ्लेवर और कलेवर में फिर से हिंदी भाषी भारतीय परिदृश्य में उभर कर आयी है जो गांव-गांव तक फैल गई है। पुनः एक बार फिर से आज अंग्रेजी रोजगार और कार्य की भाषा बनती जा रही है वहीं हिंदी भाषी क्षेत्रों में भी हिंदी जीवन का अपरिहार्य तत्व होते हुए भी वह केवल चैटिंग और बोलचाल की भाषा में तब्दील होती जा रही है।

सोशल मीडिया में हिंग्लिश का प्रयोग : यह समाज माध्यम का युग है। सभी युवाओं के हाथ में मोबाइल आ गया है। वह अपने विचारों और भावनाओं को संदेश देते समय शुद्ध हिंदी के बजाय हिंग्लिश का प्रयोग कर रहे हैं। शुद्ध हिंदी लिखने, बोलने और समझने वालों की संख्या में साल दर साल लगातार गिरावट होती जा रही है जो कि दुखद है। हिंदी दिवस पर हिंदी को लेकर सिर्फ कुछ औपचारिकता का निर्वहन करने से काम नहीं चलने वाला है क्योंकि हिंदी भाषी क्षेत्रों के लिए हिंदी एक भाषा नहीं एक संस्कार है। डॉ इन्द्रनाथ चौधरी लिखते हैं -" विमान परिचारिकाओं की भाषा पर प्रादेशिक भाषाओं का प्रभाव होना बुरा नहीं है परन्तु उन पर अंग्रेजी के अनावश्यक और बनावटी प्रभाव को कम करने के लिए उन्हें हिंदी में बोलने में गौरव अनुभव करने की भावना जागनी होगी।"[5]

तकनीकी प्रयोग में असुविधा : मोबाइल, एप्स, इंटरनेट और गैजेट्स के जमाने में अगर हिंदी को भी उसी तरीके में ढाला जाए तो हिन्दी का विस्तार ज्यादा से ज्यादा और जल्द से जल्द होगा। वैसे, आज सोशल मीडिया के इन टूल्स और नए-नए तकनीकों में हिन्दी का प्रयोग कम हो रहा है। इंटरनेट पर आज भी अंग्रेजी का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा रहा है। तमाम वैश्विक चुनौतियों के बावजूद हिन्दी अखबारों का प्रसार भी बहुत तेजी से बढ़ा है। साथ ही फेसबुक से लेकर ट्विटर पर हिन्दी करोड़ों लोगों द्वारा रोमन में पढ़ी और लिखी जा रही है। यह बहुत बड़ी चुनौती हिंदी के सामने उपस्थित हो चुकी है।

रोज़गार की कम संभावना : तकनीकी, वैद्यकीय, वाणिज्य और कानून की शिक्षा की भाषा अंग्रेजी के रूप आज भी विद्यमान है। प्रत्येक युवा की इच्छा यह होती है कि, वह अपने करियर को बेहतर बनाने हेतु इन उच्चतम शिक्षाओं में से एक को चुनें। पर वहाॅं का माध्यम ही अंग्रेजी होने के कारण हिंदी के प्रति स्वाभिमान होने के बावजूद उसे अंग्रेजी को स्वीकार करना पड़ता है। विडंबना यह है कि जितनी महत्वपूर्ण परीक्षाएं चलाईं जा रही है उसका माध्यम अंग्रेजी ही है। हिंदी को रोजगार से जोड़ने से सारी समस्या दूर हो जाएगी। राजभाषा हिंदी समन्वयन समिति को इसमें सुधार कर हिंदी में शिक्षा की प्राथमिकता पर जोर देना होगा तभी राजभाषा हिंदी को बढ़ावा मिलेगा।

सारांश के रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी के वैभव को विराट आकार देने में हम सभी को अपनी आज तक की त्रुटियों को सुधारते हुए अपने-अपने स्तर से यह प्रयास करना होगा। हम हिन्दी का प्रयोग अधिकतर करें तथा अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम हिन्दी को ही बनाएं, क्योंकि विश्व का इतिहास उलट-पलट कर देख लीजिए प्रगति एवं उन्नति की पताका उसने ही फहराई है, जिसने अपनी भाषा को महत्ता प्रदान करते हुए सम्पूर्ण ज्ञान अपनी भाषा में अर्जित किया है।

संदर्भ :

1. राजभाषा भारती, राजभाषा विभाग की त्रैमासिकी, प्रकाशन वर्ष 1983 पृ. 27
2. हिंदी सदियों से राजकाज में, महेश चंद्र गुप्त, सत्साहित्य प्रकाशन दिल्ली, 1991 पृ. 67
3. वहीं पृ 78
4. हंस, फ़रवरी 2013 पृ. 48
5. राजभाषा भारती, राजभाषा विभाग की त्रैमासिकी, प्रकाशन वर्ष 1983 पृ. 32

स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी पत्रकारिता

प्रा. डॉ. सुभाष क्षीरसागर

हिंदी विभाग प्रमुख बहिर्जी स्मारक महाविद्यालय वसमतनगर

फोन नं 9423140248, subhashksh72@gmail.com

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही। आजादी की लड़ाई में सहभाग लेने वाला हर पत्रकार, लेखक अपनी कलम के द्वारा राष्ट्रीयता के भाव जन जन तक पहुंचाने का प्रयास कर रहा था । स्वाधीनता के पूर्व राजा राममोहन राय , महात्मा गांधी, मौलाना आजाद , डॉ बाबासाहेब आंबेडकर, मदन मोहन मालवीय जैसे प्रसिद्ध जननेता भी पत्र-पत्रिकाओं से जुड़े हुए थे। उनके सृजनशील विचारों का असर भारतीय समाज व्यवस्था पर पड़ा था। तत्कालीन पत्रकारिता ने सोई हुई भारतीय जनता को जगाया और उन्हें स्वतंत्रता आंदोलन के राह पर अग्रसर किया। उसी समय भारतीय समाज मानवीय अधिकार एवं हक्कोंसे बेखबर होकर अंधकार के गर्त में भटक रहा था। ऐसी कठिन स्थितियों में पत्रिकाओं में व्यक्त विचारों से प्रभावित होकर उनके अंदर राष्ट्रीयता के भाव जागृत होने लगे। इस समय की पत्रकारिता अत्यधिक निर्भीक, सत्यवादी और व्यवसायिकता से दूर रही। इन पत्रकारों में कहीं पर भी स्वार्थ भावना या धन के प्रति आसक्ति नहीं थी। तत्कालीन पत्रिका के संपादकों ने पत्रकारिता को कला , वृती और सेवा के रूप में स्वीकार किया था। उन्होंने भारतीय जनता का ज्ञान बढ़ाकर उनकी चेतना को जागृत करते हुए, सामाजिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने का मौलिक मार्गदर्शन किया है। इसलिए देश के हर कोने में उनके विचार बड़े आदरता के साथ आत्मसात करने लगे थे। आम जनता भी उनसे प्रभावित होकर स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने लगी।

भारत में पत्रकारिता का आरंभ बंगाल से राजा राममोहन राय ने किया था। 'बंगाल गजट '1816 में प्रकाशित पत्र भारतीय भाषा का पहला समाचार पत्र कहा जाता है, जिसके संपादक गंगाधर भट्टाचार्य थे। इसके बाद राजा राममोहन राय ने मीरातुल, संवाद कौमुदी जैसी पत्रिका के माध्यम से भारतीयों के सामाजिक आर्थिक हितों का समर्थन कर समाज में व्याप्त अंधकार, विषमता, कर्मकांड, कुरीतियां आदि विकृतियों पर पत्रिका के माध्यम से प्रहार किया। परिणामतः लोगों में एक जागृति निर्माण हुई। 30 मई 1826 को हिंदी भाषा का पहला साप्ताहिक समाचार पत्र "उदंत मार्तंड" प्रारंभ हुआ। हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में इस पत्र का ऐतिहासिक महत्व है। इसी समय 'अभ्युदय' सत्याग्रह समाचार, क्रांतिवीर, स्वदेश, नया हिंदुस्तान, हिंदी प्रदीप जैसी पत्रिकाओं ने भारतीय समाज में युगांत कारी परिवर्तन निर्माण किए।इन पत्रिकाओं में 'ईस्ट इंडिया कंपनी का जमकर विरोध होने लगा। अंग्रेजी हुकूमत के विरोध में सीधा साधा एक माहौल तैयार किया गया। ब्रिटिश सरकार ने पत्रकारों के कलम की तेज धार और संपादकों का नीडर तेवर देखकर उन्हें जेल में बंद करवाने का काम भी किया तथा प्रेस की स्वतंत्रता को बाधित करने हेतु अंग्रेजी सरकार ने अपने काले कानूनों का सहारा लेकर पत्रिकाओं पर प्रतिबंध तथा जुर्माना लगा दिया। आपत्तिजनक लेखवाले पत्रिका को जप्त भी कर लिया जाता था। ऐसी विपरीत स्थितियों में भी उस समय के पत्रकारों ने अपनी पत्रिकाओं के माध्यम से सामाजिक जनजागृति निर्माण करने वाले विचारों को रोके नहीं बल्कि आजादी की लड़ाई के लिए अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन पत्रिकाओं में राष्ट्रीय चेतना का अभूतपूर्व स्वरूप प्रकट होने लगा।

भारतेंदु युग की पत्र-पत्रिकाओं ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में बड़ी सजगता के साथ अपनी भूमिका निभाई है। स्वयं भारतेंदु ने हिंदी गद्य, पद्य लेखन के लिए हिंदी साहित्य को एक नई दिशा प्रदान की, साथ ही समाचार पत्रों में खटकने वाली कमी को भी पूर्णता दी है। उनकी "कवि- वचन-सुधा" नामक पत्रिका 1868 में काशी से प्रकाशित की गई थी। इस पत्रिका में अनेक प्राचीन नवीन कवियों की कविताएं प्रकाशित हो रही थी। आरंभ में 'कवि वचन सुधा' पत्रिक मासिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित होती थी लेकिन समाज तथा देश की दूरावस्था से असाहय होकर भारतेंदुजी ने उसे पाक्षिक के रूप में प्रकाशित करवाया। इस पत्र में प्रकाशित रचनाएं राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत रही। कवि वचन सुधा का उद्देश्य था" सत्य निज भारत गहे"। उस समय के अधिकांश कवि पत्रों की शीर्षस्थ पंक्तियां देश और देश हित को प्राधान्य देने वाली थी। सही मायने में स्वदेशी आंदोलन को शुरू करने का श्रेय कवि वचन सुधा इस पत्रिका को जाता है। इस पत्रिका के संदर्भ में डॉक्टर राधाकृष्ण दास ने लिखा है-" कवि- वचन-सुधा में गद्य रचनाओं का प्रकाशन पाक्षिक हो जाने पर हुआ। जिस समय भारत अपने सत्व बोध से अपरिचित था उस समय कवि- वचन- सुधा ने राष्ट्रीय चेतना में सोई हुई पढ़ी-लिखी भारतीय जनता की भावना को राष्ट्रीय कर्मों में प्रवर्तक करने का, जागरण संदेश देने का प्रयास किया। यह पत्र विदेशों में भी नैतिकता के बल पर ही चर्चा का विषय बना। फ्रांस के विद्वान ताशी ने 'लीलैंग्यू' पत्र के सन 1857 ईस्वी के किसी अंक में कवि- वचन - सुधा और उसके संपादक की उचित प्रशस्ति की थी। "(1) अतः कहा जा सकता है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा लिखे हुए आकर्षक ढंग के राष्ट्रीय विचारधारा से संबंधित लेखों के कारण यह पत्र अत्यंत चर्चा का विषय बना था। भारतेंदु जी ने अपने समय के समविचारी लेखकों का एक समूह बनाकर उनके माध्यम से लोगों के मन में देश के प्रति चेतना निर्माण करने का कार्य किया। उनकी प्रेरणा से ही बालकृष्ण भट्ट जी ने हिंदी प्रदीप (1877) का प्रकाशन प्रारंभ किया। यह पत्रिका अंग्रेजी व्यवस्था के खिलाफ लेख और अन्य सामग्रियां प्रकाशित कर रही थी। माधव की रचना- बम क्या है, बंदर सभा(1908) मेंअंग्रेजों की तुलना बंदर से कहकर उन पर टिप्पणी की गई। परिणामस्वरूप हिंदी प्रदीप को तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने □3000 का जुर्माना भी कर दिया था। उस समय संपादक के पास जुर्माना देने के लिए पैसे नहीं थे इसलिए पत्रिका को बंद किया जाता है।

स्वतंत्रता पूर्व काल की पत्रकारिता लड़ाकू और निडर रही वह पत्रकार कभी भी व्यवस्था के सामने झुके नहीं ब्रिटिश सरकार का विरोध करते हुए सामान्य जनता का प्रतिनिधि बनकर व्यवस्था से संघर्ष कर रहे थे 18 सो 81 में प्रकाशित उचित वक्ता इस पत्रिका के संपादकीय लेख तत्कालीन जनता की आवाज को बुलंद कर रहे थे प्रस्तुत पत्रिका में अंग्रेजी सत्ता के दमन और शोषण पर तीखा प्रहार किया गया तत्पश्चात कई पत्रिकाएं इसी शैली का प्रयोग कर जनता को अंग्रेजी व्यवस्था के विरुद्ध खड़े करने का प्रयास कर रही थी इनमें अंबिका प्रसाद व्यास बालकृष्ण भट्ट महावीर प्रसाद द्विवेदी अमृतलाल चक्रवर्ती गणेश शंकर विद्यार्थी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है उस समय पत्रकार एवं संपादकों में अपनी पत्रकारिता के लिए सर्वस्व त्याग किया था स्वतंत्रता पूर्व काल की पत्रकारिता विशेष रुप से तीन प्रकार के कार्य कर रही थी एक सर्व सामान्य जनता की आवाज को उठाना दूसरा उन्हें उचित न्याय दिलाने के लिए तत्पर रहना तथा तीसरा साहित्य का परिष्कार करना। इस पत्रकारिता ने तत्कालीन समाज में वैचारिकी एवं बुद्धिजीवी वर्ग को जन्म देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तत्कालीन पत्रकारिता के संदर्भ में धर्मवीर भारती लिखते हैं - "स्वतंत्रता संग्राम में पत्रकारिता की परंपरा और परवान चढ़ती गई। वह चाहे क्रांतिकारियों का स्वतंत्र आंदोलन हो या गांधीजी का सत्याग्रह यह अखबार उनके माध्यम से जन जागरण के अग्रदूत थे। रोज जमानत मांगी जाती थी रोज-रोज पुलिस छापे मारती थी। संपादक का एक पाव जेल में रहता था। संपादक और पत्रकार जनता के आदमी थे और उनमे जनता की भाषा के साथ हिंदी के साथ एक

गहरी प्रतिबद्धता थी। अपनी मातृभाषा के गौरव से उद्दीप्त थी वह पत्रकारिता। "(2) अतः इस युग की पत्रकारिता का मूल स्वर राष्ट्रीय भावना से संबंधित रहा। वे कवि पत्रकार लोग स्वतंत्रता प्राप्ति ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य मानकर ब्रिटिश सता के विरोध में जन आंदोलन निर्माण कर रहे थे। वे स्वयं के जीवन की परवाह न करते हुए स्वतंत्रता की आवाज बुलंद कर रहे थे।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में "आनंद कादंबिनी"(1900)बद्रीनारायण चौधरी "जासूस" (1900)गोपालदास गहिमरी "स्वराज्य" (1907) शांति नारायण भटनागर "अभ्युदय" मदन मोहन मालवीय "हरिजन"महात्मा गांधी आदि पत्रिकाओं ने राष्ट्रभक्ति परख विचारों का पुनरुत्थान किया। जासूस पत्रिका में लिखा - "डरिए मत यह कोई भकौआ नहीं है। धोती सरका कर भागिए मत, यह कोई सरकारी सीआईडी नहीं।"इससे पता चलता है कि इस दशक की पत्रकारिताओं में निडरता का स्वर प्रस्फुटित हो रहा था। दूसरे दशक में भारतीय राजनीति पर महात्मा गांधी का प्रभाव पड़ने लगा। "आज" नामक पत्रिका काशी से प्रकाशित हो रही थी, जिसके संपादक बाबू विष्णु पराड़कर रहे। इस पत्रिका का उद्देश्य गांधी के पद चिन्हों पर चलते हुए देश को स्वतंत्र कराना था। नमक आंदोलन, असहयोग आंदोलन ने स्वतंत्रता संग्राम को मजबूती प्रदान की। परिणामस्वरूप इन आंदोलन के कारण जनता के मन में जागृति निर्माण हुई। गांधी युग का साहित्य पत्रकारिता में स्वतंत्रता इस विषय की प्रधानता रही। स्वतंत्रता के लिए पत्रकारिता ने जो कीमत चुकाई है उसका अंदाज हम आसानी से लगा नहीं पाएंगे। गांधी युग में पत्रकारिता का एक दीर्घ दौर पनपता रहा था। युगांतर, ग़दर, वंदे मातरम, संध्या, स्वराज, भारतमित्र जैसे पत्र उस युग के धधकते अग्निकुंड थे। 'युगांतर, के कई संपादकों को जेल यात्रा भुगतनी पड़ी' गदर'के संपादक लाला हरदयाल और सरदार करतार सिंह उन्हें छः साथियों के साथ फांसी की सजा सुनाई गई थी। 1907 में इलाहाबाद से प्रकाशित "स्वराज" पत्रिका के पत्रकारों ने स्वतंत्रता के इतिहास में साहस और शूरता की एक अद्भुत मिसाल कायम की। एक ढंग से देखा जाए तो जनता का सामाजिक और राजनीतिक प्रबोधन का बेजोड़ काम तत्कालीन पत्रकारिता ने किया था। गांधी युग की पत्रकारिता के संदर्भ में एम. बी. शहा अपने लेख में लिखते हैं - "1920 से शुरू होने वाले गांधी युग ने पत्रकारिता की एक नई राह बनाई। गांधीजी यह मानते थे कि समाचार पत्र का पहला उद्देश्य है जनता के विचारोंको समझना तथा व्यक्त करना, दूसरा उद्देश है जनता में वांछनीय भावनाओं को जागृत करना तथा तीसरा उद्देश है सार्वजनिक दोषों को निर्भयता पूर्वक प्रकट करना। खुद गांधी जी यह तीनों उद्देश्य ध्यान में रखकर पत्रकारिता करते थे। बगैर किसी प्रकार की आक्रमक धाकड़ और भड़काऊ भाषा का उपयोग किए विरोधियों के जाल को कैसे तोड़ा जाए इसका नमूना गांधीजी की पत्रकारिता थी।"(3)उस समय पत्रकारिता देश के दुर्भाग्य को अपना दुर्भाग्य मानकर उसे दूर करने का प्रयास कर रही थी। पत्रकार अपने समय के लोकनायक के रूप में जनता में परिचित थे। डेढ़सौ साल तक अंग्रेजों की गुलामी करने वाले देश के दिल दिमाग पर सही मायने में तत्कालीन पत्रकारिता ने गहरा असर डाला। उन्होंने यहां की जनता को सामाजिक तथा राजनीतिक संस्कार किये। युगों युगों भारतीय समाज की सामाजिक बुराइयों को झेल रहा था उसे दूर करने का काम पत्रकारिता ने किया, और समाज सुधार की एक नई राह बताइ। एक और पत्रकारिता समाज का नेतृत्व कर रही थी तो दूसरी ओर समाज को सलाह भी दे रही थी। जातिभेद, धर्मभेद, भाषाभेद, प्रांतभेद से देश बिखर रहा था, ऐसी विपरीत स्थिति में सबको एकता का संदेश देते हुए, देश के स्वाधीनता की लड़ाई में सहयोग देने के लिए तत्कालीन पत्रकारिता ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। स्वतंत्रता आंदोलन के समय की पत्रकारिता समाज में संस्कार विकसित करने का कार्य कर रही थी।

संदर्भ सूची

1)हिंदी भाषा के सामयिक पत्रोंका इतिहास :श्री राधाकृष्ण दास पृ.सं. 12

2)हिंदी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास :डॉ रमेशकुमार जैन पृ.सं117

3)स्वतंत्रता संग्राम और हिंदी :संपा.श्रीमती मीना गौतम पृ.सं.49

इक्कीसवीं सदी की हिंदी उपन्यास साहित्य में व्यक्त आदिवासी विमर्श, अस्मिता एवं चुनौतियाँ

सिनगरवार पांडूरंग गिरजप्पा

शोधछात्र हिंदी विभाग रामकृष्ण परमहंस महाविद्यालय, उस्मानाबाद,

महाराष्ट्र – 413602 घुमंतू 9096909936

शोधसार:

आदिवासी शब्द से स्पष्ट बोध होता है कि, जो पहले से यहाँ रह रहे हो, आदिवासी (आदि$वासी) रहे हो। इन्हें संविधान की पंचम् अनुसूची में 'जनजातियाँ' इस शब्द से परिभाषित किया है। साथ ही इन्हें वनवासी, आत्विका, गिरिजन, वन्यजाति या आदिमजाति भी कहा जाता है। इक्कीसवीं सदी के आदिवासी साहित्य पर जब हम विचार करते हैं तो निश्चित रूप से आदिवासी जनजातियों में जगा 'आत्मभान' हमारा ध्यान खींचता है। आज भारतीय स्तर पर आदिवासी साहित्य की चर्चा शुरू है। अनेक भारतीय भाषाओं में आदिवासियों की जीवन समस्या, जीवन संघर्ष और शोषण को लेकर साहित्य लिखना आरंभ हुआ है। यह साहित्य आदिवासियों की 'जल-जमीन-जंगल' से खदेड़ने की त्रासदी को डंके की चोट पर व्यक्त कर रहा है। आदिवासी साहित्य स्पष्ट कर रहा है कि हम यहाँ के मूल निवासी हैं और आज हमें ही निर्वासित किया जा रहा है। हिंदी में आदिवासियों पर अनेक विधाओं में साहित्य सृजन का आरंभ हुआ है, भले ही वह अभी सशक्त न हो। साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में आदिवासी साहित्य लेखन कुछ जादा है और उसमें भी आदिवासी अस्मिता सशक्त दिखाई देती है। हिंदी आदिवासी साहित्य का जब अध्ययन करते हैं, तो स्पष्ट होता है कि, साहित्यकारों ने उन पहलुओं को उजागर किया है, जिनपर अबतक किसी ने प्रकाश नहीं डाला था। हिंदी साहित्यकार स्पष्ट करते हैं कि, आदिवासी यहाँ के मूल निवासी होकर भी उन्हें उपेक्षितों का जीवन जीना पड़ रहा है। उन्हें यहाँ की समाज व्यवस्था ने हाशिये पर रखकर आज भी आदिम रूप में जंगलों में रहने के लिए बाध्य किया है। उनतक मूलभूत सुविधाओं को भी पहुँचने नहीं दिया। यह जनजातियाँ आज भी वरुण, सिंगबोंगा जैसे देवताओं के चक्रव्यूह में फँसी गिरी-कंदाहरों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी जीवन जी रही हैं। उन्हें औद्योगीकरण के नाम पर जल-जमीन-जंगलों से निर्वासित किया जा रहा है।

ऐसी अनेक समस्याओं को हिंदी साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से उकेरा है, और इन्हें हाशिये से निकालकर हम भी मानव हैं, हमें भी उतना ही हक है जितना यहाँ के गावों में, नगरों में रह रहे मानवों को है का संदेश आदिवासियों एवं अभिजात जातियों, धर्मों के लोगों को दिया है।

प्रस्तावना:

भारतीय साहित्य में आदिवासी शब्द के अर्थ के पर्याय रूप में अनेक शब्दों का प्रचलन मान्य है। यथा बनवासी, आदिम जाति, गिरिजन, रानीपरज, जनजाति आदि। जिनका अंग्रेजी अनुवाद ।ठव्त्प्ळप्छ।स् (एबोरिजनल) के रूप में मान्य है।

'आदिवासी' शब्द सामने आते ही ऐसी सभ्यता और संस्कृति की ओर हमारा ध्यान जाता है, जो सदियों से जंगलों में फल-फूल रही हैं। किन्तु आदिवासी शब्द और आदिवासी मनुष्य को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद है। फिर भी सामान्यतः हम उसे आदिवासी मानते हैं, जो "सदियों से छला-सताया, नंगा किया और सोची-समझी साजिश के तहत वन-जंगलों में जबरन भगाया जाता रहा एक असंगठित मनुष्य। वह मनुष्य, जो अपनी स्वतन्त्र परम्परा सहित, सहस्त्र सालों से गाँवों-देहातों से दूर घने जंगलों में रहने वाला सन्दर्भहीन मनुष्य हैं- जो एक विशेष पर्यावरण में अपने सामाजिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों को जान की कीमत पर संजोये, प्रकृतिनिष्ठ, प्रकृति-निर्भर, कमर पर बित्ते भर चिन्दी लपेटे, पीठ पर आयुध लेकर, भक्ष्य की खोज में शिकारी बना, मारा-मारा भटक रहा है। कभी राजनीतिक तथा सांस्कृतिक वैभव से इतराने वाला यह कर्तव्यशील मनुष्य, परन्तु वर्तमान में लाचार,

अन्यायग्रस्त तथा पशुवत् जीवन-यापन करने वाला मनुष्य। यही उसका कुल जीवन है, वेदना से भरा लोकाचार है।''1

भारत में अनेक जनजातियाँ हैं, जिन्हें सात विभागों में बाटा जाता है, उत्तर, पूर्वोत्तर, पूर्वी, मध्य, पश्चिम, दक्षिण और द्विपीय क्षेत्र। आदिवासियों का अपना धर्म है, वे प्रकृति पूजक हैं। उनमें से कुछ लोगों ने हिंदू, ईसाई, बौद्ध एवं इस्लाम धर्म भी अपनाया है। भारत में प्रमुख रूप से भील, गोंड, संथाल, मीजी, असुर, न्यीशी, हो, गालो, मोमपा, तागीन, खामती, मेमबा, नाक्टे, कंजर, कबूतरा, आपातानी, मुंडा, सांसी, मदारी, सँपेरे, दरवेशी, पासी, बोरी, समोड, कोल, पादाम, मिन्योंग, देववर्मा, रियाँग, नोवतिया, उचई, चाकमा, डोंबारी, कोली, पारधी, मीणा, आन्गे, गरसिया, सहरिया, लेपचा, थारू, उराँव, भवघूरा, बोंडा आदि जनजातियाँ आदिवास करती हैं, जिन्हें आदिवासी कहा जाता है। ऐसे अनेक आदिवासियों को केंद्र में रखकर भारतीय स्तर पर अनेक भाषाओं में साहित्य लिखा जा रहा है। जिसमें महाश्वेता देवी, बाबा भांड, भुजंग मेश्राम, विमल मिश्र, टे. शी. नेगी, सुरेश मिश्र,आदि साहित्यकार अपनी-अपनी ओर से योगदान दे रहे हैं।

इक्कीसवीं सदी में लिखे गये, आदिवासी हिंदी उपन्यासों पर चर्चा करने से पहले बीसवीं सदीं में लिखे आदिवासी जीवन केंद्रित हिंदी उपन्यासों पर दृष्टिक्षेप करना असंगत न होगा। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में मुख्यतः आदिवासियों को हिंदी उपन्यासों में मुख्य रूप से स्थान मिला है। जिसमें इन उपन्यासों के नाम लिये जा सकते हैं। 'रथ के पहिए' (देवेन्द्र सत्यार्थी-1952), 'कब तक पुकारूँ' (रांगेय राघव-1958), 'सूरज किरण की छाँव' (राजेन्द्र अवस्थी-1958), 'जंगल के फूल' (राजेन्द्र अवस्थी-1998), 'जंगल के आस-पास' (राकेश वत्स-1985), 'धार' (संजीव-1990), 'गगन घटा घहरानी' (मनमोहन पाठक-1991), 'पाँव तले की दूब' (संजीव-1995), 'जहाँ बास फूलते हैं' (श्री प्रकाश मिश्र-1997), 'अल्मा-कबूतरी' (मैत्रेयी पुष्पा-2000), जंगल जहाँ शुरू होता है (संजीव-२०००), सावधान! नीचे आग है (संजीव-२०००) आदि ।

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में लिखें इन उपन्यासों में कबूतरा, मुंडा, गोंड, मिजो, करनटो, नटो, संथाल, उराँव आदि जनजातियों के सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन के साथ-साथ उनपर हो रहे अन्याय-अत्याचार, शोषण, पिछड़ेपन को भी उपन्यासकारों ने अभिव्यक्त किया है, ''महाजनी और सामंती दखलंदाजी की मिसालें सावधान! 'नीचे आग है' तक पसरी हुई हैं। इसी तरह 'पाँव तले की दूब' में जनजातीय समाज की नवीनतम आकांक्षाओं और संघर्षों को वैज्ञानिक आलोड़नों के साथ उत्कर्षित किया गया है।''2 बीसवीं सदी के इन उपन्यासों की इस परंपरा को आगे बढानेवाले और आदिवासी शोषण के विरूद्ध आवाज बुलंद करनेवाले उपन्यास इक्कीसवीं सदी में लिखे गये हैं लिखे जा रहे हैं।

इक्कीसवीं सदी के यह उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता', दिकू और कज्जाओं (उद्योजक , व्यापारी, पुलिस प्रशासक, राजनेता, पूँजीवादी) के शोषण को बडी संवेदनशीलता के साथ उजागर करते हैं । जो इस प्रकार हैं, 'आदिभूमि' (प्रतिभा राय-2002), 'काला पादरी' (तेजिन्दर 2002), 'पठार पर कोहरा' (राकेशकुमार सिंह-2003), 'रेत' (भगवानदास मोरवाल-2008), 'धूणी तपे तीर' (हरिराम मीणा-2008), 'ग्लोबल गाँव के देवता' (रणेन्द्र-2009), 'अरण्य में सूरज' (श्रीमती अजित गुप्ता-2009), 'मरंगगोड़ा नीलकंठ हुआ' (महुआ माजी-2012) आदि ।

प्रतिभा राय का 'आदिभूमि' यह उपन्यास उडीसा के आदिवासी 'बोंडा' जनजाति पर लिखा गया है। यह उपन्यास बोंडा के जीवन-व्यवहार, हिंसा, प्रतिहिंसा, प्रतिरोध, सरलता, लोकरूढि, लोकविश्वास, स्त्री-पुरूष संबंध, स्त्री शोषण आदि को सशक्त रूप में उजागर करता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी इनके शोषण का सिलसिला जारी होने के सत्य को प्रतिभा राय उजागर करती हैं। इस उपन्यास में सरकारी योजनाओं (इंदिरा आवास योजना,

साक्षरता आदि) की धोखाधडी झूठ-फरेब, भ्रष्टाचार, स्त्रियों का यौन शोषण आदि को अभिव्यक्त किया है। उपन्यास में शिक्षा के प्रति आदिवासियों की रूचि बढ़े इसलिए मास्टर सीतानाथ के माध्यम से उपन्यासकार अपनी बात रखती हैं।

आदिवासी इलाकों में समाज सुधार करना आसान नहीं है, क्योंकि कई लोगों के स्वार्थ वहाँ पर अटके हुए होते हैं। उनमें प्रशासक बी. डी. ओ., पुलिस, राजनेता, एम. एल. ए. जैसों का समावेश होने की बात उपन्यासकार करती हैं। उपन्यास का सीतानाथ, अपनी निष्ठा के बल पर इस जंगली झुंड को 'आदमी' बनाने पर तुला हुआ है।"3 किंतु अवसरवादी उनका तबादला दूसरी जगह कर देते हैं। इस प्रकार आदिवासी जीवन समस्याओं के साथ-साथ प्रकृति की सम्पन्नता को भी उपन्यासकार 'प्रतिभा राय' उजागर करती हैं ।

'पठार पर कोहरा' झारखंड के 'मुंडा' आदिवासियों की करुण कथा है। राकेशकुमार सिंह ने आजादी के बाद भी आदिवासियों के जीवन समस्याओं का कोहरा न हटने की बात उपन्यास में की है। उपन्यास में साहू, बाबू और बंदूकधारी संस्कृति की पोल खोल दी है, जो अंग्रेजों के झारखंड छोड़ने पर शोषण का काम रहे हैं। उपन्यास की शुरूआत ही इस प्रकार हुई है, "जंगल यहाँ से शुरू होता है, बहुत जहरीला होता है,कौमनिष्ट दिकू....! दीकू...यानी वह व्यक्ति जो जन्मना जंगल का वासी न हो जो जंगल के बाहर का हो। गैर-आदिवासी हो। दीकू... यानी वह जो दिक्कत का कारण बने। दिक्कते पैदा करे।... बाघ, भालू, गीध, कौए और सियार से भी ज्यादा खतरनाक होता है दिकू । और उसमें भी कौमनिष्ठ ।"4

उपन्यास में सरकारी योजनाओं के भ्रष्टाचार का भंडा-फोड़ किया है। राजीव गांधी की सरकारी योजनाओं के बारे में दस प्रतिशतवाली बात को उपन्यासकार आदिवासियों की योजनाओं में हो रहे भ्रष्टाचार के रूप में इस प्रकार व्यक्त करता है, "आजादी के बाद आदिवासियों की कल्याण की सैंकड़ों योजनाएँ बनी हैं पर उनके क्रियान्वयन का क्या हुआ? आबंटित राशि का दस प्रतिशत भी देश के आदिवासियों तक नहीं पहुँच रहा है। कई योजनाएँ कागज पर चलती रहती हैं। कई योजनाएँ तो फाईलों की कब्र में ही दफन हो गयी... यदि अफसरशाही और राजनीति का यही तालमेल कायम रहा तो पता नहीं कितने समय तक आदिवासी समाज इसी तरह अपढ़, असंस्कृत, भूखा, नंगा, शोषित, उपेक्षित और लोकतंत्र के ज्ञान एवं विज्ञान से कटा रहेगा।"5

तेजिन्दर का 'काला पादरी' मध्यप्रदेश की 'उराँव' जनजाति की समस्याओं को व्यक्त करनेवाला उपन्यास है। उपन्यासकार आदिवासियों का उपनिवेशिक व्यवस्था में फंसे होने का वास्तव सामने रखता है। साथ ही आदिवासी भूख, अभाव, दारिर्द्य, शोषण आदि से परेशान होकर ईसाई, हिन्दू, बौद्ध धर्म में दीक्षित होने के ऐतिहासिक वास्तव की ओर भी संकेत करता है। आदिवासियों के भूख, अभाव और दारिर्द्य को व्यक्त करता हुआ वह लिखता है, "साहब रात में बच्चा मर गया। उसकी माँ ने कई दिनों से कुछ खाया नहीं था। उसको गोद में लेकर उसकी माँ भी मर गयी। उसने भी कई दिनों से कुछ खाया नहीं था।"6

उपन्यास में भूख मिटाने के लिए जहरीली वनस्पतियाँ, बुटियाँ और बिल्लियों का मांस खाने का वास्तव सामने रखा, वास्तव में 'काला पादरी' उपन्यास में भारत के सर्वाधिक उत्पीड़ित व उपेक्षित आदिवासियों की जीवन स्थितियों के अनेक पहलुओं को लेखक ने समाजशास्त्रीय दृष्टि, किन्तु साथ ही लेखकीय संवेदना से इस ढंग से चित्रित किया है कि भारतीय समाज की जटिलता भी उभरकर सामने आती है और साथ ही आदिवासियों के जीवन की पीडा का मार्मिक अंकन भी लेखक की कलम से होता चलता है।"7 उपन्यास में ईसाई मतों के प्रचार-प्रसार की ओर भी ध्यान खींचा है।

प्रस्तुत उपन्यास में परेशानियों से घिरी एक लड़की की जद्दोजेहद भी है, नारी मुक्ति की आकांक्षा भी है और मुंडा जनजाति के शोषण, उत्पीड़न, अभाव, अन्याय-अत्याचार की वास्तविकताएँ भी हैं। यह उपन्यास केवल शोषण की बात ही नहीं करता तो शोषण के विरोध में आवाज भी उठाता है।

हरिराम मीना का 'धूणी तपे तीर' 17 नवम्बर, 1913 के दिन घटित मानगढ (राजस्थान) की घटना पर आधारित है। इस घटना की ओर इतिहासकारों ने अनदेखा किया था । इस उपन्यास के माध्यम हरिराम मीना ने 'भीलो'-'मीनो' के ऐतिहासिक योगदान को उजागर करने की कोशिश की है। उपन्यास के केंद्र में हैं गोविंद गुरू का ऐतिहासिक योगदान । उपन्यास में उपन्यासकार ने स्पष्ट करने की कोशिश की है कि, कैसे गोंविद गुरू ने मीणों को संगठित किया, उनमें कैसी जागृति भर दी, उन्हें बलिदान के लिए कैसे तैयार किया। यही इस उपन्यास की कथावस्तु है। इस उपन्यास पर प्रकाश डालते हुए स्वयं उपन्यासकार लिखते हैं, "देश का पहला 'जालियांवाला काण्ड' अमृतसर (1919) से छः वर्ष पूर्व दक्षिणी राजस्थान के बासंवाडा जिला के मानगढ़ पर्वत पर घटित हो चुका था जिसमें जालियांवाला से चार गुणा शहादत हुई थी ।"8

रणेन्द्र का उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' झारखंड के 'असुर' जनजातियों के शोषण, विस्थापन को उजागर करता है। आज वैश्वीकरण के इस युग में एक ओर हम विकास कर रहे हैं तो दूसरी ओर प्राकृतिक संसाधनों का अमर्याद उपयोग करके प्रकृति को दूषित कर रहे हैं। वहाँ के आदिवासिओं, वनवासियों को उनके जंगलों से खदेड़ रहे हैं। इसी अमानवीय बातों को रणेन्द्र ने इस उपन्यास में अभिव्यक्त किया है। उपन्यास में असुर याने राक्षस, बड़े-बड़े दातों, सिंगोवाला कोई जीव इस संकल्पना को भी तोड़ा है। उपन्यास में वैश्वीकरण, औद्योगीकरण के कारण आदिवासी आदिवासियों पर हो रहे अन्याय-अत्याचार को भी व्यक्त किया है। उपन्यासकार लिखते हैं, "आकाशचारी देवताओं को जब अपने आकाशमार्ग से या सेटेलाईट की आँखों से छत्तीसगढ़, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, झारखंड आदि राज्यों की खानिज सम्पदा, जंगल और अन्य संसाधन दिखते हैं तो उन्हें लगता है कि राष्ट्र-राज्य तो वे ही हैं, तो हक तो उनका ही हुआ। सो इन खनिजों पर, जंगलों में, घूमते हुए लँगोट पहने असुर-बिरिजिया, उराँव-मुंडा आदिवासी, दलित-सदान दिखते हैं तो उन्हें बहुत कोफन होती है । वे इन कीड़े-मकोड़ों से जल्द निजात पाना चाहते हैं।"9

उपन्यास में 'ग्लोबल गाँव के देवता'ं में उद्योगपति (टाटा, वेदांग), पूँजीपति, पुलिस, व्यावसायिक, राजनेता, ठेकेदार आदि आकाशचारियों का समावेश है । जो आदिवासियों का इस वैश्वीकरण के युग में शोषण कर रहे हैं । उपन्यास में शोषण के साथ-साथ आदिवासी संस्कृति के बारे में भी जानकारी मिलती है । उनमें व्याप्त अंधविश्वास, विवाह पद्धति, स्त्री-पुरूष संबंध, पौराणिक मिथक, प्रकृति पूजा आदि अंग स्पष्ट रूप से उपन्यास में व्यक्त हुए हैं।

श्रीमती अजित गुप्ता का 'अरण्य में सूरज' राजस्थान की 'भील' जनजाति की जीवन वास्तविकता को स्पष्ट करता है। उपन्यासकार भीलों के परंपरागत जीवन को उनकी रूढ़ियों, मिथकों, अंधविश्वासों, दंतकथाओं के माध्यम से पाठकों के सामने रखती हैं। उपन्यास में शिक्षा को आदिवासियों के जीवन सुधार के एक पर्याय के रूप में रखा गया है। वैश्वीकरण, बाजारवाद का यह युग भी भीलों की मानसिकता आसानी से न बदल सकने की बात उपन्यासकार करती है। इस उपन्यास में बाल-विवाह, बेरोजगारी एड्स जैसी बीमारी, अंधविश्वास, दारिद्र्य, शोषण, व्यसनाधिनता, विस्थापन, अशिक्षा जैसी समस्याओं को अभिव्यक्त किया है।

महुआ माजी का 'मरंगगोडा नीलकंठ हुआ' झारखंड के 'हो' आदिवासी जनजाति को केन्द्र में रखकर लिखा गया उपन्यास है। इस उपन्यास में मुख्यतः अणु-परमाणु, नाभिकीय उर्जा के आदिवासी जीवन पर हो रहे दुष्परिणामों की ओर ध्यान खींचा है। रणेन्द्र ने इस कृति को वैज्ञानिक संस्थानों के गहन झूठ के खिलाफ हिंदी में लिखी पहली कृति माना है। 'जादूगोड़ा' (उपन्यास में मरंगगोड़ा) हावडा मुम्बई रेल लाइन पर टाटा नगर (जमशेदपुर) रेलवे स्टेशन से 24 किलोमीटर की दूरी पर है। 1967 ई. से यूरेनियम कॉरपोरेशेन ऑफ इंडिया लिमिटेड यहाँ की खदानों से यूरेनियम का खनन करवा रहा है, जिसका शोधन भी जादूगोड़ा में ही होता है ।

प्रतिवर्ष तीन लाख टन रेडियोधर्मी कचरे की डम्पिंग भी इसी इलाके में होती है। खदान से निकलनेवाला कचरा इससे दस गुणा ज्यादा यानी तीस लाख टन प्रतिवर्ष होता है।"10 ऐसी अनेक गहन समस्याओं पर यह उपन्यास विचार-विमर्श करने के लिए प्रेरित करता है।

भगवानदास मोरवाल का 'रेत' उपन्यास हरियाना के 'कंजर' जनजाति के सामाजिक-सांस्कृतिक संरचनाओं को प्रस्तुत करता है। 'कंजर' अर्थात् काननचर याने जंगल में घूमनेवाले। यह कंजर अपने आप को 'माना गुरू' और श्माँ नलिन्या की सन्तान मानता है।

प्रस्तुत उपन्यास एक ओर आदिवासी विमर्श की कृति है, तो दूसरी ओर आदिवासी स्त्री विमर्श की भी कृति है । सामान्य तौर पर कंजरों को (जरायमपेशा) चोरी करनेवाली जनजाति समझा जाता है। अंग्रेज सरकार ने इन पर कई बंधन डाल दिये थे जिसे उपन्यासकार ने थानेदार केसर सिंह के माध्यम से कहलवाया है। केसर सिंह कबीले के मुखिया से कहता है, यही की बिना इजाजत या इत्तिला दिए कोई कंजर गाँव छोड़कर नहीं जा सकता ...औ जाता है तो मुखिया को इसकी जानकारी होनी चाहिए, जिसकी इत्तिला मुखिया को थाने में देनी होती है।"11 इनकी महिलाओं को भी थाने जाकर हाजरी देनी पड़ती है। घर के पुरूष जेल में या बाहर होने के कारण इन्हें मजबूरी वश वेश्या-व्यवसाय करना पड़ता है। इन्हीं बातों को उपन्यासकार ने बडी स्पष्टता से उपन्यास में रखा है। उपन्यास में कंजरों के पुलिसों, अफसरों, प्रशासकों द्वारा हो रहे शोषण को व्यक्त किया है । साथ ही यह उपन्यास यौन सुचिताओं की सभी सीमाएँ तोड़ देता है।

आदिवासी जीवन की वर्तमान चुनौतियाँ:

वर्तमान समय में विश्व के सभी मानव समाज संक्रमण के दौर से गुजर रहे हैं। जिसमें मनुष्य का व्यवहार उसके परिवेश का प्रतिबिम्ब है, यद्यपि भिन्न-भिन्न समाज में समस्याओं का स्वरूप भिन्नता लिए हुए हैं। आज समूचे भारत में आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र असन्तोष का जीवन जी रहा है। जिनकी समस्याएं बहुआयामी रूप धारण कर चुकी हैं। भारत में इनकी बसावट एक सी नहीं होने के कारण उनकी समस्याओं में भी भिन्नता है। झारखण्ड, बिहार, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़िसा, असम, अरूणांचल प्रदेश, मिजोरम, नागालैण्ड, मणिपुर, राजस्थान और द्वीप समूहों आदि राज्यों में आदिवासी अधिक संख्या में मिलते हैं। बाकी राज्यों में उनकी संख्या कम हैं। जहाँ पर वे बनाधिकार कानून के विरूद्ध एवं संस्कृति और जीवन बचाने को संघर्षरत करना यह बहोत बडी चुनौती हैं।

सरकार देश के विकास के नाम पर वहाँ के नदी, पहाड़ व जंगल को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हवाले करने की मानसिकता से ग्रसित हैं, ताकि सरकार पर नियन्त्रण रखने वालू पूँजीपति उद्योगपतियों को भारत की प्राकृतिक सम्पदा को बे रोक-टोक के दोहन करने में आसानी हो। भारत के बदलते हुए परिवेश में विभिन्न क्षेत्रों के आदिवासी भिन्न-भिन्न तरह के समस्याओं का सामना करने लगे है जो उनके अस्तित्व को बनाये रखने में कठिन चुनौती बनी हुई है। ये समस्याएं इतनी विविधतापूर्ण हैं कि जिनकी स्पष्ट सूची तैयार करना कठिन कार्य है।

आदिवासी संस्कृति को बचाने की चुनौती:

भारतीय आदिवासियों की युगो-युगो से अपनी एक पृथक प्रकृति धर्म पर आधारित स्वालम्बन की संस्कृति रही है। जिसमें समय-समय पर आर्यो, यवनों एवं अंग्रेजों की संस्कृतियों से संक्रमण होता रहा है। जिसके फलस्वरूप उनकी मूल पहचान में दाग लगती रही है। आदिवासियों के अपने संस्कृति को खोने की स्थिति पर अपना विचार व्यक्त करते हुए हेराल्ड एस. लोपनों ने लिखा है, "जनजातियों के ऊपर भयानक संकट खड़ा हैं यह संकट केवल औद्योगीकरण और शहरीकरण के फैलाव से ही उत्पन्न नहीं हुआ है। बाहरी लोग अब उनकी सीमा के अन्दर घुस चुके हैं, जो उनकी उस स्वतन्त्रता को बाधित कर रहे हैं, जिसमें अब तक आदिवासी उन्मुक्त रूप से आनंदित रहते थे।"12 आदिवासियों की पारिवारिक व्यवस्था, नातेदारी, विवाह प्रथा, धार्मिक विश्वास, खान-पान, वेशभूषा, भाषा व व्यवहार अन्य भारतीय समाज से बिल्कुल भिन्न थे। इन्हीं की वजह से इन लोगों का जीवन पूर्णतया आत्म-निर्भर था। और आदिम मानव के प्रतिनिधित्वकर्त्ता थे। इसके पश्चात् आर्य संस्कृति, इस्लाम संस्कृति व ईसाई

संस्कृति के प्रभाव स्वरूप अनेकों समस्याएं उत्पन्न होने लगीं। जो आज उनके अस्तित्व के लिए चुनौतियाँ बनी हुई हैं।

आर्थिक विपन्नता को दूर करने की चुनौती:

प्राचीन काल में आदिवासी समाज में आवश्यकता से अधिक धन संचय की प्रवृत्ति को हेय समझा जाता था। वे प्राकृतिक सम्पदाओं को सर्वजनिक उपभोग की वस्तु समझते थे। किन्तु आज का आधुनिक समाज धन संचय पर आधारित है। जो सारी बुराईयों की जड़ बन गई है। जिससे धन प्राप्ति में आदिवासी समाज पिछड़ा है, जो सरकार की गलत नीतियों, असन्तुलित विकास कार्यक्रमों तथा संस्कृति सम्पर्क व बाजारवाद का परिणाम है। ये आदिम लोग आज भी प्रकृति की गोद में निवास करते हैं और इनकी आजीविका प्रकृत प्रदत्त वस्तुओं पर निर्भर है। जंगलों से खाद्य एवं लघु वन पदार्थ संग्रह करना, नदी-नालों से मछली पकड़ना तथा घाटियों व पहाड़ी ढलानों पर स्थानांतरित कृषि करना इनकी आय व जीविका के प्रमुख साधन हैं। ऐसी दशा में वे वर्तमान तकनीकी प्रधान समाज में उनके सामने समस्याओं का पुंज दिखता है।

आदिवासियों द्वारा हस्तगत तैयार की गई वस्तुए बाजार की मशीनों द्वारा बनाई गई वस्तुओं के सामने ग्राहकों को नहीं लुभा पाती जिसके कारण उनके लघु उद्योग बन्द हो गए और वे बेरोजगार हो गए। साथ ही जब से उनके क्षेत्रों में बनाधिकार कानून लागू हुई तब से आदिवासियों का वनों में स्वच्छन्द विचरण में बाधा उपस्थित हुई है। पहले ज्यादातर इनका घर जंगलों में होते थे और उनसे विभिन्न प्रकार के वस्तुओं का निर्माण करके उसे अपने नजदीकी बाजार में बेचकर अपने उपयोग की वस्तुए एवं अर्थ संग्रह करते थे। किन्तु आज वन उनके अधीन नहीं हैं। जिससे आये दिन वन अधिकारियों द्वारा उनके पशु चराने, सूखी पत्तियों व सूखी लकड़िया बीनने आदि को रोकने से इनका झगड़ा होता रहता है, जिसके कारण उनके जीवन में तनाव की स्थिति पैदा होती है। सरकार द्वारा वन के कीमती पेड़ों को ठेकेदारों को देकर कटवाया जाता है। ये ठेकेदार आदिवासियों को मजदूर के रूप में काम तो लेते हैं किन्तु मजदूरी के रूप में कम पैसे देते हैं। उनके द्वारा इस हद तक शोषित होते हैं कि अपने जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं रोटी, कपड़ा और मकान को भी पूरा नहीं कर पाते हैं।

भारत में सूदखोर महाजन प्रणाली आदिवासियों के गरीबी व भूखमरी का एक प्रमुख कारण है। परम्परागत रूप से इनकी अर्थ व्यवस्था वस्तु-विनियम के द्वारा अपनी अधिकांश जरूरतों को पूरा करते थे। इनके सीधे व भोलेपन को देखते हुए इनके यहां घात लगाकर मैदानी क्षेत्रों के उच्च जाति के व्यापारियों और सहूकारों ने आकर पहले तो उनको वस्तुएं उधार देकर आदी बनाया, और एक बार कर्ज में डूबने के बाद ये लोग कर्ज वापसी की कूबत नहीं जुटा सकें। फिर धीरे-धीरे सूदखोर साहूकारों की जाल में फस कर पीढ़ी दर पीढ़ी कर्ज में पिसते हैं। जिससे आज आदिवासी अभिशाप के रूप में कर्ज में जन्म लेता है, बधुवामजदूर बनकर जीवन जीता है और अपने वारिस को कर्ज में डूबोकर मर जाता है। जिससे निकलना इनके लिए बहुत बड़ी चुनौती है।

शिक्षा प्राप्त करने की चुनौती:

प्राचीन काल में आदिवासी औपचारिक शिक्षा की प्राप्ति के लिए गुरूकूलों में न जाकर अपने गाँव के घोटूलो व युवा गृह से प्राप्त करता था। जिसमें बाण चलाने की विद्या, औषधिज्ञान आदि की जानकारी प्राप्त करते थे। परन्तु हजारों वर्ष पहले देश, विदेशी-शासकों के अधीन होने पर उनके द्वारा आदिवासियों को शिक्षा से वंचित रखा गया था। जिसके वजह से वे लोग अधिक पिछड़ गये। परन्तु आजाद भारत में भी 1950 ई. सन् तक इनको शिक्षित करने के लिए सरकार द्वारा कोई भी कारगर योजना नहीं बनायी गई थी। आज भी इनमें शिक्षा का स्तर बहुत कम है, यह समस्या इस तथ्य से स्पष्ट हो जाती है कि ई. सन् 1981 की जनगणना में 12.5 प्रतिशत ही आदिवासी साक्षर थे। "जनजातीय जनसंख्या में औपचारिक शिक्षा के विस्तार का अनुमान जनगणना के आकड़ों से लगाया जा सकता है। ई. सन् 1931 की जनगणना के अनुसार केवल 0.7 प्रतिशत जनजातीय लोग ही शिक्षित थे। ई. सन् 1991 में यह संख्या बढ़कर 29.60 प्रतिशत हो गयी जबकि पूरे देश में लगभग 50 प्रतिशत शिक्षित थे।"13 जिनके वजह से ये लोग रूढ़िवादी एवं अंधविस्वासी होते हैं।

वर्तमान समय की सरकारें आदिवासियों को शिक्षित करने के प्रयास का दावा तो करती हैं, लेकिन उनको शिक्षा प्राप्ति में पड़ने वाली अड़चनों को दूर नहीं करती। प्राथमिक स्तर पर शिक्षा प्राप्ति का माध्यम मातृ भाषा होना चाहिए लेकिन सरकारें उनकों मातृ भाषा से ईतर किसी दूसरी भाषा में शिक्षित करना चाहती है। साथ ही जो पाठ्यक्रम उनको पढ़ाने के लिए लागू किया जाता है, उनमें आदिवासियों की संस्कृति व समाज को हेय साबित करने का पूरा षड़्यन्त्र भरा होता है। उनके गौरवमयी पूर्वजों के संघर्षपूर्ण जीवन के इतिहास को पाठ्यक्रम से बाहर रखा जाता है। "1857 से 99 वर्ष पहले झारखण्ड के पहाड़िया आदिवासियों ने रमना अल्हाडी के नेतृत्व में अंग्रेजों के विरूद्ध सशस्त्र युद्ध छेड़ा था। ई. सन् 1922 में आंध्र प्रदेश के श्रीराम राजू ने अंग्रेजों के विरूद्ध 'फितूरी' (संग्राम) छेड़ा था, जो भारत में अंग्रेजों के खिलाफ हुए युद्धों में अन्तिम सशस्त्र युद्ध था, उसका कहीं जिक्र नहीं। न इतिहास में, न पाठ्यक्रम में, न साहित्य में। स्कूलों के पाठ्यक्रम में पढ़ाया जाता है, 'भील एक जनजाति है। भील चोर होता है।"14 इस प्रकार आदिवासी लोगों को अपने लोक व्यवहार के अनुरूप शिक्षा न मिलने से सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली औपचारिक शिक्षा से वे दूर भागते हैं और यदि कुछ लोग शिक्षा प्राप्त भी कर लेते हैं तो वे अपनी संस्कृति के प्रति उदासिन हो जाते हैं। इनके यहाँ कृषि शिक्षा व औद्योगिक शिक्षा का अभाव है, जिसके वजह से उनके जीवन में शिक्षा को अधिक उपयोगी नहीं बनाया जा सका। फिर भी कुछ लोगों में शिक्षा का असर पड़ा लेकिन उनमें आर्थिक विकास की हानि हुई। जहाँ इनके समाज में परिवार के प्रत्येक सदस्य को जीविकोपार्जन के लिए श्रम करना पड़ता है, तब जाके कहीं दो जून की रोटी नसीब होती है। यदि बच्चे काम छोड़कर स्कूल जाने लगते है तो उनके भरण-पोषण करने में इनके माता-पिता चुक जाते हैं और अन्ततः बच्चे का स्कूल जाना बन्द हो जाता है। इस प्रकार की कठिनाईयों के वजह से आज भी आदिवासी शिक्षा से वंचित रह जाता है, जो उनके जीवन में शिक्षा प्राप्ति के लिए चुनौती बना हुआ है। जो सारी समस्याओं का मूल है।

निष्कर्ष:

मनुष्य आदिवासी इलाकों में जाकर उनकी जमीन छिनकर वहाँ बड़े-बड़े कारखाने उद्योग स्थापित कर रहे हैं तथा आदिवासियों की पीढ़ियों को बरबाद कर रहे हैं । आदिवासी सांस्कृति, प्राकृतिक जीवन को नष्ट करना चाहते है। यही विषय उन्होंने उठाया है। जिनमें आदिवासी साहित्यकारों की प्रमुख भूमिका रही है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि, इक्कीसवीं सदी के आदिवासी हिंदी उपन्यास 'हो', 'उराँव', 'मुंडा', 'असुर', 'भील', 'बोंडा', 'कंजर' आदि जनजातियों को केंद्र में रखकर लिखे गये हैं, जो राजस्थान, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, झारखंड, हरियाना इन राज्यों में स्थित हैं । मुख्यतः यह उपन्यास एक ओर हमारी जगमगाती सम्पन्नता, औद्योगिक विकास, नागरीकरण, वैज्ञानिक सफलता आदि को व्यक्त करते हैं, तो दूसरी ओर आदिवासी जनजातियों की विपन्नता, विस्थापन, दारिद्र, शोषण, बीमारियाँ, अन्याय-अत्याचार, विषमता, पराधीनता, अभाव, भूख, अमानवीय जीवन, धर्मांतरण, प्राकृतिक Úहास आदि को व्यक्त करते हैं। साथ ही इन समस्याओं से उभरकर निकलने के लिए संघर्ष करते आदिवासियों की जद्दोजेहद को भी व्यक्त करते हैं। उपन्यासकार केवल आदिवासियों की जीवन समस्याओं, शोषण को ही नहीं उनके सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन को, उत्सव, पर्व-त्यौहार, अंधविश्वास, आवास-निवास, रूढ़ि, परंपरा, आचार-विचार , संसाधन आदि को भी हमारे सामने रखते हैं।

संदर्भ

1. उद्धृत, डॉ. लक्ष्मणप्रसाद सिन्हा, भारतीय आदिवासियों की सांस्कृतिक प्रकृति-पूजा और पर्व-त्यौहार, पृ. 88
2. विद्याभूषण, बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में, पृ. 68
3. कृष्णचंद्र गुप्त, बोंडा जाति का औपन्यासिक समाजशास्त्र, हंस-फरवरी, 2002, पृ. 88
4. राकेशकुमार सिंह, पठार पर कोहरा, पृ. 1
5. वही, पृ. 137
6. तेजिन्दर, काला पादरी, पृ.21

7. प्रो. चमनलाल, दलित साहित्य: एक मूल्यांकन, पृ. 166
8. हरिराम मीणा, धूणी तपे तीर के बारे में भूमिका
9. भगवानदास मोरवाल, रेत, पृ. 51
10. हरिराम मीणा, धूणी तपे तीर के बारे में भूमिका
11. रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव के देवता,
12. भगवानदास मोरवाल, - रेत, पृ. 51
13. जनजातीय भारत, नदीम हसैन, प्रकाशक, रवि मजूमदार, जवाहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, सातवा संस्करण, पृ. 178
14. आदिवासी अस्मिता का संकट रमणिका गुप्ता, पृ. 11

हिंदी उपन्यासों में कृषक विमर्श : एक चिंतन

डॉ. प्रीती यादव
पीपल्स कॉलेज नांदेड़ ,मो. क्र.7219434054, priyamprashashti@gmail.com

भारत देश एक कृषि प्रधान देश है। इस देश में प्राचीन समय से लेकर अब तक खेती की परंपरा चलती आ रही है। यह ग्राम जीवन का एक मुख्य अंग है। वैसे देखा जाए तो भारत ग्रामों से बना हुआ एक देश है। यहां रहनेवाले अधिकतर लोग कृषि से ही संबंध रखते हैं। कृषि के माध्यम से ही उनके जीवन की दिनचर्या शुरू होती हैं। इस देश का भारतीय किसान हमेशा से ही दरिद्रता, शोषण और निरक्षरता का शिकार होता रहा है। इसी कारण वह दिन-ब-दिन गरीब होने लगा है। इसी कारण आज आर्थिक असमानता देसी-विदेशी ठेकेदारों का बोलबाला, जमींदारों, सेठ, साहूकारों, व्यापारियों, और उद्योगपतियों आदि के कारण किसानों की दयनीय अवस्था हो चुकी है। इस के संदर्भ में डॉ. मोहम्मद जमील कहते हैं, कि "आजकल ऋण बैंक सहकारिता बैंक, लेसैंड बैंक और गैर लेसैंड बैंक भी देने लगे हैं। ऋण का अर्थ है, लोन। वर्तमान ग्रामीण समाज में बैंकों से ऋण ले लेना एक फैशन बन गया है। जब किसान अकाल के कारण या फसल ठीक न होने के कारण ऋण चुका कर के भी वह कष्टों के बवंडर में गिर जाता है, तब सहायता करने वाले बैंक भी किसानों को सताते हैं। ऋण वसूल करने के लिए वह इंसान को सताते हैं और अपमान करते हैं। घर के दरवाजे भी खींच ले जाते हैं। कोई इज्जतदार अपना सर्वस्व बेच कर ऋण चुकाता हैं। जब ऋण नहीं चुका सकता तब वह बेइज्जती का या आत्महत्या का भागी बन जाता है।"1जैसे- जैसे मानव के अंदर संग्रह की प्रवृत्ति बढ़ती गई । वैसे-वैसे मानव अधिक लालची बनता चला गया। उसमें द्वेष और दंभ की भावना बढ़ती चली गई। सभ्यता और विज्ञान के विकास ने मनुष्य के अंदर श्रम के प्रति घृणा का भाव भर दिया हैं। इसी कारण मेहनत करने वाले किसान के प्रति भी वही भावना लोगों के मन में दिखाई देने लगी हैं।

हिंदी साहित्य में किसान को लेकर बहुत सारी विधाओं में चर्चा हुई है। हिंदी की अलग-अलग विधाओं में उपन्यास विधा प्रसिद्ध है। हिंदी उपन्यासों में भारतेंदु युग से लेकर आज वर्तमान युग तक किसान विमर्श की चर्चा हुई है। भारतेंदु युग में किसान को लेकर कम उपन्यासों में चर्चा हुई है। द्विवेदी युग में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी 'संपत्तिशास्त्र' नामक पुस्तक में किसानों की तबाही और खुशी की बर्बादी को लेकर पहली बार निबंध लिखा। जिसमें अंग्रेजी सरकार किस प्रकार किसानों से लगान वसूल करती हैं इसका दर्दनाक चित्रण किया है। रामविलास शर्मा द्विवेदी युग में कहते हैं - "यदि कृषकों से लगान मिलना बंद हो जाए तो बड़े-बड़े राजा महाराजाओं और तालुकेदारों की दुर्गति का ठिकाना ना रहे सरकार के शासन चक्र का चलना बंद हो जाए वकीलों और बैरिस्टरों के गाड़ी घोड़े बिक जाए तथा व्यापारियों और महाजनों को शीघ्र ही टाट उलट ना पड़े।"2

प्रेमचंद युग में स्वयं प्रेमचंद उपन्यास को कल्पना जगत से उठाकर यथार्थता प्रदान की थी। प्रेमचंद के उपन्यास में किसान का दर्द झलकता है। 'प्रेमाश्रम' जब प्रकाशित हुआ तब इसी समय भारत के कुछ प्रांत में किसान आंदोलन चल रहे थे। इसका जिक्र 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में किया गया है। किसानों के शोषण का चित्रण प्रेमचंद ने 'प्रेमाश्रम' में प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में किसानों की दुर्दशा, जमींदारों के अत्याचार, पुलिस के हथकंड, वकीलों की चालबाजी, न्याय व्यवस्था का चित्र बड़ी सजगता के साथ किया है। डॉ रामविलास शर्मा इस उपन्यास के संदर्भ में कहते हैं - "यह उपन्यास असहयोग आंदोलन के बाद छपा या हमारा दुर्भाग्य था फिर भी उसने स्वाधीनता आंदोलन को दूर करने के लिए उसे एक नई गति देने में किसान समस्या को आजादी की मूल समस्या के रूप में स्वीकार करने में बहुत बड़ा काम किया है। "3

सदियों से चले आ रहे किसानों और मजदूरों के शोषण के विकृत यथार्थ का हमारे हिन्दी साहित्यकार विशेष रूप से कथाकार अपने रचनाओं में यथा संभव चित्रण करते हुए उसे सुधारने के उपाय भी प्रस्तावित करते

आ रहे हैं। यह तो सर्वविधित बात है कि किसान और मजदूर वर्ग के लोग या तो अशिक्षित होते हैं अथवा अर्द्ध शिक्षित होते हैं और इसीलिए ऐसी कृतियों का पठन और अध्ययन कदाचित ऐसे लोगों के लिए संभव नहीं हो पाये| अत: ऐसी कृतियों में चित्रित वर्तमान युग के किसानों की समस्याओं और उनके समाधान से संबंधित वस्तु चेतना का प्रचलन ऐसे लेखों से संभव हो सकता है और इसी आशय की पूर्ती हेतु यह निबंध प्रस्तुत है।

हिन्दी कथा साहित्य में उपन्यास सम्राट माने जाने वाले मुंशी प्रेमचंद जी ने कृषक जीवन से संबंधित समस्याओं का अपने कथा साहित्य में व्यापक चित्रण किया है। उनका उपन्यास 'गोदान' किसानों की ऋण समस्या को केंद्र में रखकर लिखा गया वह दस्तावेज है जो किसानों की आपबीती मानी जा सकती है। गोदान प्रेमचंद का यथार्थवादी उपन्यास है। उपन्यास का नायक होरी अपने जीवन में पग-पग पर तरह-तरह के कठिनाइयों का सामना करते हुए भी सदैव अपने मूल्यों और आदर्शों पर स्थिर रहता है।

महाजनों के षड्यंत्र से होरी कर्ज के दलदल में फंसता चला जाता है। बाप-दादाओं की जमीन भी उसके हाथ से चली जाती है। हार कर वह दातादीन से आधे रहन पर काम करता है परंतु ईख के फसल की सारी कमाई झिंगुरीसिंह और गोरखराम ले लेते हैं जिससे अब वह पूरी तरह से दातादीन का मजदूर बन जाता है। एक दिन काम करते समय लू लगने के कारण वह बीमार पड़ जाता है जिससे धनिया उसे काम पर जाने से रोकती है तो वह कहता है "बीमार वही पड़ते हैं जिन्हें बीमार पड़ने की फुरसत होती है।"4 ऐसे कर्मठ होते हैं हमारे किसान | जिसे अपने जीवन से भी अधिक अपने काम से प्रेम होता है। ""कृषक वर्ग जन्म से ही अभावग्रस्त है, इसीलिए उसे कभी अपने पेट पालने के लिए ऋण लेना पड़ता है तो कभी प्रकृति के प्रकोप के शिकार होने के कारण ऋण लेना पड़ता है। कभी बीज के लिए ऋणग्रस्त होना पड़ता है तो कभी लगान चुकाने के लिए। इसी तरह होरी भी ऋण का शिकार होता है और अपने ही खेती में नौकर बन जाता है।"5 मनुष्य दुख को सहता है, हारता है फिर भी जीवन लड़ता है। प्रेमचंद होरी के मनोबल को कहते हैं "जीवन के संघर्ष में उसे सदैव हार हुई, पर उसने कभी हिम्मत नहीं हारी। प्रत्येक हार जैसे उसे भाग्य से लड़ने की शक्ति दे देती थी।"6

प्रेमचंद युगीन कथा साहित्य से हमें पता चलता है कि उस समय खेतीबाडी करने वाले किसानों पर मात्र पूंजीपतियों और महाजनों का नियंत्रण रहा करता था। परन्तु यह तो एक सर्वविदित तथ्य है कि वर्तमान युग के किसानों पर उनके अलावा सरकारी पदाधिकारियों एवं राजनैतिक कार्यकर्ताओं का भी हाथ है जो उन्हें काफी परेशान करते रहते हैं। इसी स्थिति का व्यापक एवं प्रभावी चित्रण तथा उसे सुधारने के प्रस्ताव वर्तमान औपन्यासिक कृतियों में देखने को मिलते हैं।

रणेंद्र कृत 'ग्लोबल गाँव के देवता' नामक उपन्यास में समसामयिक भारत के आदिवासी जीवन की प्रतीकात्मक एवं सांकेतिक भाषा में चित्रित करते हुए खेती-बाड़ी करने वाले किसान मजदूरों को असुरों की कोटी में दर्शाया गया है और उनकी दुखद स्थिति का प्रभावी चित्रण किया गया है। रणेंद्र ने अपने उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' में अत्यंत सृजनात्मक प्रयास किया है। जिसका संक्षिप्त विवेचन निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है। जब सोमा के बाबा घर वालों को बिना बताए पांच हजार रुपए में एक एकड़ खेत एक खदान दलाल को दे देता है तो गांव में हल्ला मच जाता है। सब लोग फुसफुसाने लगते है कि आये दिन ये दलाली लोग कमजोरों को अपने चंगुल में फंसाकर असुरों की रैयती जमीन हड़प रहे हैं। ऐसी स्थिति से बचने के लिए लालचन और रिमझुम जैसे लोग उन्हें सचेत करते रहते हैं। वे लोग यह भी चाहते हैं कि ऐसे विकृत यथार्थ के विरुद्ध आम जनता की ओर से आंदोलन हो और स्थिति में सुधार आए। इस संदर्भ में डॉक्टर साहब का कथन दृष्टव्य है "लड़ाई अकेले जीती नहीं जा सकती। यह केवल लालचन के चाचा के पांच एकड़ का सवाल नहीं है.... अवैध खनन के लिए पांच-दस असुरों को रोज फुसलाया जाता है। हर संभव उपाय से उनकी जमीन हथियाई जाती है। बाक्साइट निकाल-निकाल कर मौत की खाईयां छोड़ी जा रही हैं। इन सब सवालों को जोड़िये, तभी असुरों के साथ उरांव, खेरवार, सदान सब आपकी लड़ाई में जुटेंगे।... कनारी के नवयुवक संघ के साथियों को अपनी लड़ाई में शामिल करना मजबूरी है।"7 और ऐसा करने से ही समस्या का सामाधान हो सकता है।

संजीव जी के उपन्यास 'फाँस' में विदर्भ के किसानों की दयनीय दशा का विवरण मिलता है। फाॅंस उपन्यास 21वीं सदी के महाराष्ट्र के आत्महत्या करने वाले किसानों की दुखद कहानी है।संजीव जी ने इसे एक ओर समस्या ग्रस्त के रूप में चित्रित किया है तो दूसरी और उर्वरक, बीज, पानी, बिजली की कमी के कारण भारत में कई किसान आत्महत्या के शिकार हो रहे हैं, इस पर भी प्रकाश डाला है।सरकार भी इन किसानों की अनदेखी कर रही है। जब शिबू के घर में किसान लल्लू की आत्महत्या की चर्चा होती है तो उसकी पत्नी शकुन कहती है "इस देश का किसान कर्ज में जन्म लेता है, कर्ज में जीता है, और कर्ज में ही मर जात है।"8 इस पर कर्ज में डूबा शिबू कहता है "इस बार तो फसल की कोई उम्मीद नहीं, दो- चार किलो तुअर, बाकी कुछ नहीं, मुझे लगता है मैं बीच मझधार में फंस गया हूॅं। न आगे बढ़ सकता हूं, न लौट पा रहा हूं, मेरी हालत लालू जैसी होती जा रही है।"9 वह अपनी बेटियों की शादी नहीं कर पाता। सारी परिस्थितियों से हार मान लेता है और गले में फाँसी डाल कर अपना जीवन समाप्त कर लेता है।

अकाल में उत्सव उपन्यास में पंकज सुबीर ने ग्रामीण परिवेश का चित्रण किया है। जहां किसान हमारी भ्रष्ट शासन-व्यवस्था, गरीबी, साहूकारी, सामंतशाही और समाजव्यवस्था के शिकंजे में फंसा है। ये जो व्यवस्था है वो किसान को न ही चैन से जीने देती है, न ही मरने देती है। "रामप्रसाद का पिता जब मरा, तो जमीन के साथ बैंक का, सोसायटी का, सूदखोरों का सूद बड़े विचित्र तरीके से चलता था।"10 अगर कोई किसान 1000 रुपए का कर्जा लेता है तो वो अगले महीने 2000 रुपए हो जाता है। अगर 10,000 रुपए छह महीने के ब्याज पर लेता है तो किसान के हाथ में सिर्फ 4000 रुपए आते हैं। रामप्रसाद अपनी पत्नी और तीन बच्चों के साथ रहता है। छोटे भाई ने शहर में परिवार बसाया है। पैसों की कमी और भूखमरी के कारण रामप्रसाद बच्चों को सरकारी स्कूल में डालता है जहाँ दोपहर के भोजन के सिवा कुछ नहीं मिलता। रामप्रसाद की पत्नी शादी के वक्त जेवरों से लदी थी। जिसके पास आज नाम के लिए भी जेवर नहीं है। पिता मरते समय रामप्रसाद के कंधे पर कर्ज का बोझ तो रखते ही हैं, साथ में उसे तीन बहनों का पिता भी बनना पड़ता है। जो बेटी के हर सुख-दुःख में सहभाग लें। कई महीनों से थका बिजली का बिल भरने के लिए भी रामप्रसाद के पास पैसे नहीं तो वो पत्नी के तोड़े बेचता है, जो कि अंतिम वस्तु कमला के पास थी। बिजली का बिल भकर बचे पैसे रामप्रसाद ने पत्नी और बच्चों के कपड़ों के लिए रखे थे जिन्हें बहन की सास की बीमारी पर खर्च करने पड़ते हैं। जिनकी मृत्यु पर गिरवी रखी तोड़ी रामप्रसाद को मजबूरी में बेचनी पड़ती है। रामप्रसाद आनेवाली फसल पर आशा लगाए था, पर शायद भगवान को मंजूर न था। जैसे कि रामप्रसाद की मौत ही दरवाजे के बाहर खड़ी थी। जोरों की हवा के साथ बारिश का आगमन। जिसमें सफेद ओलों ने भयावहता डाल दी थी। रामप्रसाद और कमला के सपने बारिश के पानी के साथ चूर-चूर होकर बह रहे थे। कमला रो रही थी। बारिश के बढ़ते प्रभाव से छप्पर टूट गया तो? इस भय से बच्चों को खटिया के नीचे रखा था। दोनों की आँखों के सामने सबकुछ समाप्त हो रहा था। कमला की भगवान से मिन्नते बंद हो चुकी थी। पूरे खेत को ओले के सफेद कफन ने ढक लिया था। इस भयावह रात ने रामप्रसाद को पत्थर बना दिया था। अब कर्जा चुकाने के लिए (जो उसने लिया ही नहीं) उसके पास कुछ भी बचा नहीं था। इससे मुक्तता के लिए रामप्रसाद पटवारी से लेकर कलेक्टर तक सबके पैर पकड़ रहा था। पर कोई उसकी तरफ ध्यान नहीं देता। हरएक अधिकारी उसका अपमान करता है पर एक अनपढ़ किसान को मान-अपमान से क्या मतलब। इसी विडंबना में फँसकर बेचारा रामप्रसाद अपनी जीवनयात्रा को समाप्त करता है। जिसे नहीं पता की उसकी आत्महत्या के बाद उसकी पत्नी और बच्चों का क्या होगा। क्या वे जीवित रह पाएँगे।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं, कि हिंदी उपन्यास में किसान विमर्श की सफल चर्चा करने का प्रयास किया गया है। प्रेमचंद से लेकर पंकज सुबीर तक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास के माध्यम से किसान समस्याओं का चित्रण किया है। जब-जब किसान विमर्श की बातें होती है, तब तक इन हिंदी उपन्यासकारों के बिना यह विषय अधूरा है। साहित्यकारों ने किसान की आत्महत्या, भूमिहीन किसान, बेघर किसान, सूखा, अकाल, बाढ़,

जमींदारी प्रथा, किसान के खिलाफ राजनीति आदि विषयों को अपने उपन्यास में रेखांकित किया है। किसान के प्रति सिर्फ आदर्श बातें करके समस्या खत्म नहीं होगी। किसान को सिर्फ बड़ी-बड़ी बातों से सुकून नहीं मिलेगा उनके लिए सभी को कार्य करना होगा। किसान इस देश का आत्मसम्मान है। किसान के सम्मान को ठेस पहुंचाने का किसी को अधिकार नहीं है। किसान के लिए सिर्फ आदर्श घोषणाओं की जरूरत नहीं है उसके लिए भी सरकार को अच्छा कार्य करना होगा। सरकार को किसानों के प्रति सोच बदलनी होगी। हिंदी उपन्यास के माध्यम से किसान के प्रति अनेक उपन्यासकारों ने चिंता व्यक्त की है।

संदर्भ ग्रंथ:-

1- डॉ. मोहम्मद जमील अहमद, अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का चित्रण, पृष्ठ 164

2- महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण (भूमिका) रामविलास शर्मा, पृष्ठ 31

3- प्रेमचंद और उनका युग, रामविलास शर्मा, पृष्ठ 55

4- मुंशी प्रेमचन्द, गोदान, इलाहाबाद संस्करण, 2014, पृष्ठ 306

5- डॉ.एस कृष्ण बाबू , हिंदी का उपन्यास साहित्य : मिथकीय चेतना और सामाजिक सरोकार,प्रथम संस्करण 2021, पृष्ठ 164

6- मुंशी प्रेमचंद, गोदान, इलाहाबाद संस्करण,2014, पृष्ठ 258

7- रणेंद्र, ग्लोबल गांव के देवता, प्रथम ज्ञानपीठ संस्करण, 2010 पृष्ठ 48

8- संजीव, फांस, वाणी प्रकाशन,2016, पृष्ठ 15

9- वहीं, पृष्ठ 15

10- पंकज सुबीर, अकाल में उत्सव, पृष्ठ 8

संवैधानिक मूल्य और दलित साहित्य

सहा.प्रा. योगेश्वर रामजी कु-हाडे

राजर्षी शाहू महाविद्यालय, परभणी ,मो. ९४०५११५०१६ ,मेल :kurhadeyogesh5@gmail.com

प्रस्तावना :

स्वातंत्र्योत्तर काल के हिंदी साहित्य में समाज और साहित्य से उपेक्षित और दुर्लक्षित वर्ग की समस्याओं को लेकर साहित्य लिखा जाने लगा। समाज का शोषित पीडित और उपेक्षित वर्ग अब साहित्य के मुख्य विषय बन गये है। स्त्री, दलित. आदिवासी और अल्पसंख्यांक वर्ग साहित्य के केंद्र में आकरचिंतन और चर्चा का विषय बन चुके है। म. फुले और डॉ.बाबासाहब आंबेडकर की क्रांतिकारी विचारधारा से प्रभावित होकर अब दलितव्यक्ति जागृत हो रहा है। पढ-लिखने के कारण उन्हें साहित्य में अपनी अनुपस्थिति का एहसास होने लगा। परिणाम स्वरूप दलित लेखकों ने कलम उठाई और अपनी स्वानुभूति को कागज पर उतार दिया। साहित्य के क्षेत्र में यह एक नया आंदोलन था। उस साहित्यिक आंदोलन को 'दलित विमर्श' के नाम से जाना जाता है।आंबेडकरी प्रेरणा से जन्मे दलित साहित्य ने परंपरागत साहित्य के कल्पनाविलास और रंजकता को ठुकराकर, उसकी जगह अपना भोगा हुआ जीवनसत्य, और सामाजिक धार्मिक शोषण व्यवस्था का यथार्थका चित्रण किया है।दलित साहित्य शोषण व्यवस्था के विरुध्द आवाज उठाता है। सभी प्रकार की गुलामी और शोषण से मुक्ति की माँग करता है। साथ ही स्वातंत्र्य, समता, बंधूता और न्याय आदि संवैधानिक मूल्यों का आग्रह करता है।

डॉ. बाबासाहब आंबेडकर द्वारा निर्मित भारतीय संविधान २६ जनवरी १९५० से भारत में कार्यान्वित हुआ। जिसके कारण सदियों से शोषित पीडित बहूजन समाज को अपनी दयनीय स्थिति में सुधार का विश्वास निर्माण हुआ। भारतीय संविधान केवल शासनसंचालन की व्यवस्था मात्र नही है,अपितु सामाजिक परिवर्तन की व्यवस्था का निर्धारण भी है। संविधान नागरीको में विश्वास जगाता है कि उनके अधिकारो की प्राप्ति के प्रावधान संविधान में दिये गये है। संविधान की उद्देशिका में ही भारतीय संविधान का सार छुपा है, जो भारत के समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय का विश्वास देता है।

भारतीय संविधान ने देश के सभी नागरीकों को विचार अभिव्यक्ति, विश्वास,धर्म और उपासना की स्वतंत्रता बहाल की है। दलित रचनाकार भी इसी स्वतंत्रता का आग्रह करता है। क्योंकि भले ही संविधानिक स्तर पर स्वतंत्रता मिली हो परंतु आझादी के ७५ साल बाद भी दलित शोषण की घटनाएँ कम नहीं हुई है। आज भी दलितों को केवल मुँछे रखने पर पीटा जाता है, दुल्हे को घोडी पर बैठकर बारात निकालने से रोका जाता है। सवर्ण जातियाँ आज भी दलितों को भयभीत रखने के लिए अमानवीय अत्याचार करती है। दलित साहित्यिक ऐसी मनुवादी मानसिकता का पुरजोर विरोध करते हुए दलितों के संबैधानिक अधिकारो की माँग करता है। ओमप्रकाश वाल्मिकी ने 'सलाम' कहानी में समाज में प्रचलित ऐसी ही कुप्रथाओंका विरोध किया है। वह विवाह के बाद दलितों को सवर्णो के घर जाकर सलाम करने की पद्धतिकरते है और इसे दलितो के स्वाभिमान को तोडने की साजीश मानते है। 'सलाम' कहानी का नायक हरीश कहता है कि, ... "आप चाहे जो समझो मै इस रिवाज को मै आत्मविश्वास तोडने की साजीश मानता हुँ। यह सलाम की रस्म बंद होनी चाहिए।"[१]

शिक्षा सामाजिक सुधार का प्रमुख और प्रभावी अस्त्र है। देश के म.फुले, संत गाडगे महाराज ,कर्मवीर भाऊराव पाटील जैसे सामाज सुधारको ने शिक्षा को महत्व दिया है। ज्ञान के प्रतीक(SYMBOL OF KNOWLEDGE) माने जानेवाले डॉ. बाबासाहब आंबेडकर ने बहुजनो को शिक्षित बनो, संघटीत बनो और संघर्ष करो का संदेश दिया है। बाबासाहब को अपनी प्रेरणा माननेवाले दलित समाज के युवक उच्च शिक्षा प्राप्त कर शासन और प्रशासन में प्रतिष्ठित पद प्राप्त कर रहे है। परंतु शिक्षा के क्षेत्र में भी दलितों का शोषण किया जाता है। उन्हें उच्च शिक्षा लेने से रोकने की कोशिश होती है। दयानंद बटोही की 'सुरंग' कहानी उसका वास्तव चित्र प्रस्तुत करती है। दलित छात्र विश्वविद्यालय जैसी उच्च संस्थानो में भी जातीवाद का शिकार हो रहे है। कहानी के नायक को पी.एचडी. के प्रवेश के लिए पर्याप्त अंक होने पर भी प्रवेश नही दिया जाता। बल्की सवर्ण जाति के छात्रों को उनसे कम अंक होने पर भी बडी आसानी प्रवेश दिया जाता है। मोहनदास नैमिशराय के 'मुक्तिपर्व' उपन्यास में इस समस्या को उजागर किया है। उपन्यास का नायक सुनीत को ब्राम्हण शिक्षक उच्च शिक्षा लेने में बाधाए निर्माण

करते है । दलित समाज अब शिक्षा का महत्व जान चुका है । गरीबी से संघर्ष करके अपने बेटे को पढा रहे है, परंतूविषमतावादी व्यवस्था उन्हें पढने नहीं देना चाहती । सत्यप्रकाश की 'बिरादरी भोज' कहानी में ऐसी मानसिकता का पर्दापाश किया गया है । जमीदार चन्नी के बेटे की शिक्षा के लिए दो सौ रपये नही देता, परंतु चन्नी की मृत्यु पर बिरादरी भोज के लिए दस हजार रुपये देता है । आज भी समाज में ऐसी प्रवृत्ती के लोग है, जो दलितों गुमराह करते है । उनका मकसद है दलितों को मजदूर और मजबूर बनाकर रखना और उनसे अपनी सेवा करा लेना । सुशीला टाकभौरे 'मनु का मकसद' कविता में भी इस प्रवृत्ती का चित्र प्रस्तुत करती है । वह कहती है –

"मनु का मकसद, मै दलितों में रोटी बाँटू
आंबेडकर का मकसद, कोई हाथ ना फैलाए ।"[२]

व्यक्ति पढ-लिखकर किसी बडे और प्रतिष्ठित पद पर भी क्यो न चला जाये, पर उसकी पहचान उसके पद से नही तो उसकी जाति से होती है । इस अवस्था को व्यक्त करनेवाली जयप्रकाश लीलवान के कविता की कुछ पंक्ति ....

"मै इस देश में जहाँ भी रहता हूँ
आदमी मुझे नाम से नही,
जाति से पहचानता है,
और जाति से सलूक करता है ।"[३]

हिंदी में ऐसे बहुत सारे दलित साहित्यिक है, जिनकी रचनाएँ संवैधानिक मूल्यों की परंपरा को विकसित करने का प्रयास करती है ।धर्म, वर्ण, जाति, और संप्रदाय से उपर उठकर देश की एकता और अखंडता के लिए बाधक, दमन और शोषण करनेवाली व्यवस्था का वह विरोध करता है । ऐसी मनुवादी,जातिवादी, विषमतावादी,संविधानविरोधी विचारधारा देश की एकता और अखंडता के लिए बाधक है । दलित साहित्यिक इस मनुस्मृति पर आधारित विषमतावादी व्यवस्था को कब्र में गाडना चाहता है । डॉ. एन.सिंह के शब्दो में ...

मेरे हाथ की कुदाल
धरती पर कोई नींव खोदने से पहले
कब्र खोदेगी उस व्यवस्था की
जिसके संविधान में लिखा है –
तेरा अधिकार सिर्फ कर्म में है , श्रम में है
फल पर तेरा अधिकार नही ।"[४]

दलित रचनाकार भारतीय संविधान पर आस्था और विश्वास रखता है और पुरानी विषमतावादी समाजव्यवस्था को नकारकर समतामूलक समाज का सपना देखता है । जिसमे किसी भी प्रकार का भेदभाव ना हो । जो भारतीय संविधान का उद्देश भी है । कवि जयप्रकाश कर्दम के शब्दो में ...

"मै समता के राजपथ पर चलना चाहता हूँ
मै घृणा नही प्यार चाहता हूँ
हिंसा का नकार चाहता हूँ
मै विद्वेष नही सामंजस्य चाहता हूँ
बर्बरता और दमन का प्रतिकार चाहता हूँ ।"[५]

भारतीय वर्णवर्चस्ववादी समाज व्यवस्था ने सदियों से दलितों को उनके मानवीय अधिकारों से वंचित रखा था । परंतु भारतीय संविधान ने दलितों की सामाजिक आर्थिक और रानितिक स्थिति में सुधार लाने के लिये आरक्षण का प्रावधान किया, और उसे कानुनी सुरक्षा भी प्रदान की है । सामाजिक न्याय के तहत आरक्षण जरुरी है । संविधानिक तत्वो के अनुसार आरक्षण शोषित पीडित समूह को समाज में प्रतिष्ठा प्रदान करता है, और पिछडे वर्ग को विशेष अधिकार देकर समाज के अन्य वर्ग के बराबरी पर लाने का अवसर देता है । अर्थात संविधानिक भाषा में व्यक्ति को प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने का निश्चय संविधान करता है । परंतु आज भी जातिवादी मानसिकता के लोग आरक्षण को एक प्रकार की भीख समझते है, देश की बर्बादी का कारण मानते है । दलित समाज आरक्षण का लाभ लेकर अब समाज के मुख्य प्रवाह में आ रहा है तोसवर्णो को यह बात खटकती रहती है । इसी कारण वह दलितों के आरक्षण का विरोध करते है । ओमप्रकाश वाल्मिकी जी ने सवर्णो की इसी संकीर्ण मानसिकता को उनकी 'घूसपैठ' नामक कहानी में दर्शाया है । सवर्ण छात्रों को लगता है कि आरक्षण के माध्यम से

दलित छात्र मेडिकल जैसी उच्च शिक्षा में घूसपैठ कर रहे है। आज सवर्ण लोग प्रगतिशिलता की और खुलेपन की बात करते है, परंतु उनका छुपा एजेंडा कुछ और ही होता है।

भारतीय संविधान भारत के सभी लोगों को सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक न्याय देने का विश्वास देता है। चाहे वह व्यक्ति किसी भी जाति का या धर्म का हो। इसलिए हमारे संविधान ने सरकार को कानून बनाने का अधिकार दिया, साथ ही उसे लागू करने की व्यवस्था भी दी। पर यह व्यवस्था ही संविधान विरोधी लोगों के हाथ में चली जाने के कारण संविधान का ठीक तरह से अंमल नही हो पा रहा है। परिणाम स्वरूप समाज का पिछडा वर्ग आज भी सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक न्याय की प्रतीक्षा में है। ऐसे समय में दलित साहित्यिक सरकार की गलत नीतियो के विरोध में लिख रहा है।

निष्कर्ष : उपरोक्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि साहित्य में संवैधानिक मूल्यों की स्थापना करने में दलित साहित्यकारो की बडी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। दलित रचनाकारों ने सामाजिक विकलांगता,जातिव्यवस्था, आर्थिक असमानता, सामाजिक कुरीतियाँ आदि विभिन्न समस्याओंपर अपनी कलम चलाई है। साथ ही समता, स्वतंत्रता बंधूत्व और न्याय आदि संविधानिक मूल्यो को समाज में स्थापित कर एक नया समतामूलक समाज का निर्माण करना चाहतां है।

संदर्भसूची :

१. सलाम कहानी - ओमप्रकाश वाल्मिकी

२. सुरंग – दयानंद बटोही

३. मुक्तिपर्व - मोहनदास नैमिशराय

४. बिरादरी भोज – सत्यप्रकाश

५. हमारे हिस्से का सूरज– सुशीला टाकभौरे

६. घूसपैठीये कहानी - ओमप्रकाश वाल्मिकी

७. सतह से उठते हुए – डॉ. एन सिंह

८. बस्तियो से बाहर – जयप्रकाश कर्दम

९. समय की आदमखोर धून –जयप्रकाश लीलवान

वर्तमान समय में प्रयोजनमूलक हिंदी की स्थिति: एक चिंतन

सागर यादव

शोधार्थी स्वामी रामानंद तीर्थ मराठवाड़ा विश्वविद्यालय,नांदेड़

भाषा के माध्यम से विचारों का आदान-प्रदान होता है। इसीलिए भाषा के अभाव में समाज की कल्पना करना भी असंगत लगता है। क्योंकि विचारों के आदान-प्रदान से ही लोगों में व्यवहार, प्रेम, विकास आदि कार्य सुचारू रूप से होते हैं। कार्य के इसी सुचारू रूप से उनमें घनिष्ठता भी आ जाती है। घनिष्ठता के अभाव में स्वस्थ समाज का निर्माण नहीं हो सकता। अब यहां पर यह कहने की आवश्यकता नहीं रही कि समाज के उद्भव एवं विकास में भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। हिंदी हमारी राजभाषा है और साथ ही राष्ट्रभाषा बनने की अधिकारिणी भी। वर्तमान युग में वैज्ञानिक, कंप्यूटर तथा तकनीकी क्षेत्र में हिंदी भाषा का प्रयोग तथा उसके नए आयाम हमारे सामने प्रस्तुत हुए हैं। जिससे राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी भाषा को नई पहचान मिली है। हिंदी की यह नई पहचान न केवल हिंदी भाषा के विकास हेतु बल्कि संपूर्ण राष्ट्र उत्थान के लिए महत्वपूर्ण है। भाषा के इसी व्यावहारिक रूप को प्रयोजनमूलक हिंदी कहा जाता है। इसी संदर्भ में डॉक्टर नरेश मिश्रा जी ने कहा है-"भाषा अध्ययन के मुख्यतः दो पक्ष हैं प्रथम संरचनात्मक और द्वितीय प्रयोजनमूलक।प्रयोजनमूलक भाषा का संरचनात्मक पक्ष व्याकरण से संबंधित होता है ,तो प्रयोजनमूलकता उसके प्रयोग और संप्रेषण पर आधारित होती है।"[1] इस परिभाषा के आधार पर हम यह कह सकते हैं की संरचनात्मक पक्ष जहां व्याकरणिक नियमों में बंधा हुआ होता है तो वही प्रयोजन्मूलकता विशिष्ट प्रकार के प्रयोजनमूलक या कार्य सिद्धि की ओर संकेत करता है। वैसे मोटे तौर पर देखा जाए तो भाषा के यह दोनों ही रूप एक दूसरे के पूरक हैं। कुछ समय तक संरचनात्मक भाषा प्रयोग में लाई जाती रही है किंतु संसार की परिवर्तन शक्ति तो सर्वमान्य है यह सार्वभौमिक सत्य है कि संसार के किसी वस्तु में अचलता नहीं है अर्थात कोई वस्तु स्थिर नहीं है। अर्थात संसार कि प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है। इसके साथ मानव भाव भी परिवर्तन ग्रस्त होते हैं।

जब संसार की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है तो भाषा भले ही कैसे अपरिवर्तनशील हो सकती है? भाषा के इसी बदलते स्वरूप पर अपना मंतव्य रखते हुए पृथ्वीराज पांडे जी ने कहा है कि-"पुरातन काल से मनुष्य की भाषा अपना स्वरूप बनाती बिगाड़ती आई है।जिस प्रकार कोई भाव कल व्यक्त किया जाता है, वह उसी प्रकार आज व्यक्त नहीं किया जा सकता,जो रूप आज है उसपर भी परिवर्तन का प्रभाव आ जाता है। वह उसी प्रकार आज व्यक्त नहीं किया जा सकता।जरूर आज है उस पर भी परिवर्तन का प्रभाव हाथ बढ़ाया दिखता है यह गति अनादि काल से है।मनुष्य की सभ्यता का प्रभाव अनायास पड़ा करता है उसी प्रकार जलवायु और स्थल की छाव भी उस पर विद्यमान रहती है।स्थान अथवा जलवायु में हेर फेर होते ही भाषा में भी भेद कार्यरत हो जाता है। जिससे नए शब्द बनते हैं और पुराने लुप्त हो जाते हैं।अथवा परिवर्तित हो जाते हैं। यही कारण है कि किसी भाषा के इतिहास में भिन्न-भिन्न प्रकार के शब्द मिलते हैं उसमें एक अर्थ के अनेक शब्द होते हैं।अथवा एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं।"2 पृथ्वीनाथ पांडे जी की टिप्पणी के आधार पर हमें अब यह देखना है कि ऐसी क्या जरूरत आन पड़ी थी कि भाषा का संरचनात्मक रूप भाषा अभिव्यक्ति में अपने आपको असमर्थ मान रहा था और उसके परिणाम स्वरुप प्रयोजनमूलक हिंदी की आवश्यकता महसूस हुई।

हिंदी के संदर्भ में भले ही प्रयोजनमूलक शब्द का प्रयोग अभी बहुत हाल ही में शुरू हुआ है लेकिन ऐसा नहीं है कि इस शब्द के प्रयोग से पहले हिंदी भाषा निष्प्रयोजन थी। कल की तरह आज भी वहप्रयोजनपरक है और आने वाले समय भी में भी प्रयोजनमूलक ही रहेगी। यह और बात है कि इस शब्द के स्थान पर पहले कामकाजी हिंदी के साथ-साथ व्यवहारिक हिंदी और अनुपयुक्त हिंदी जैसे शब्द प्रयोग में लाये जाते थे। डॉ नरेश मिश्रा जी ने प्रयोजनमूलक हिंदी के शब्द का शाब्दिक अर्थ पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि-"हिंदी भाषा का वह विशिष्ट स्वरूप जो मनुष्य के ज्ञान विज्ञान से संबंधित संदर्भों को अभिव्यक्ति प्रदान करता है उसे प्रयोजनमूलक हिंदी कहते हैं।"[3] बौद्धिक संपदा में मनुष्य सर्वोपरि है। इसलिए वह चिंतनशील प्राणी है उसका कोई भी कार्य निष्प्रयोजन नहीं होता उसके इन कार्यों को प्रतिपादित करने के लिए भाषा की भारतीय आवश्यकता होती है। जहां साहित्यिक भाषा को संरचनात्मक भाषा जवाब दी जाती है वहां प्रयोजनमूलक भाषा सहायक सिद्ध होती है। वर्तमान युग को औद्योगिक योग व्यावसायिक योग वैज्ञानिक एवं तकनीक का युग कहा जाता है इस युग को मशीनी युग तथा यांत्रिक युग या फिर कंप्यूटर योग अधिनामों से भी पहचाना जाता है या संबोधित किया जाता है। कंप्यूटर के आविष्कार से मनुष्य जीवन गतिमान हुआ। भाषा भी कंप्यूटर के कारण विकसित हुई और हो रही है। कंप्यूटर के इस युग में वही भाषा अपनी महत्ता बन सकती है जो जन-जन की भाषा बनने योग्य है और जिसमें भावाभिव्यक्ति की प्रबल क्षमता है। इस आधार पर हिंदी सर्वकालिक महत्वपूर्ण भाषा है। प्रयोजनमूलक हिंदी का प्रयोग समाज की उन्नति और विकास के लिए बोलचाल और साहित्य से भिन्न-भिन्न प्रयोजनों को जाता है।

आधुनिक युग में प्रयोजनमूलक हिंदी के महत्व और उसकी प्रासंगिकता से कोई भी अनभिज्ञ नहीं है। व्यवसाय संचार राजनीतिक कार्यालय शिक्षा के क्षेत्र में और समाज आदि सभी जगह आज प्रयोजनमूलक हिंदी अपनी एक अलग पहचान बन चुकी है। आधुनिक युग में मनुष्य सुविधा भोगी हो चुका है इसी अनुसार वर्तमान समय में नए उत्पाद सामने आ रहे हैं उनके उपभोक्ता शेरों के साथ-साथ गांव में भी बहुत बड़े पैमाने पर हैं। जन सामान्य में उत्पादों का प्रचार हिंदी में संभव है। विदेशी कंपनियों ने भी इसी सत्य का स्वीकार किया है। भारत में यदि क्रि विक्रय बढ़ाना है तो विज्ञापनों द्वारा ही यह संभव है।और विज्ञापन की भाषा जन-जन तक पहुंचने वाली होनी चाहिए। इस दृष्टि से हिंदी ही ऐसी भाषा है जो गांव से शहर और शहर से प्रदेश से देश को और उनमें बसने वाले नागरिकों को आपस में जोड़े रखती है। इलेक्ट्रॉनिक संचार माध्यमों में आकाशवाणी दूरदर्शन और इंटरनेट से घर बैठे देश-विदेश का समाचार समय में प्राप्त होता जा रहा है। हिंदी समाचार पत्रों की तेजी से बढ़ती संख्या, विज्ञापनों की तादाद, दूरदर्शन पर लोकप्रिय हो रहे विभिन्न कार्यक्रम, कंप्यूटर द्वारा ईमेल के उपयोग आदि से हमें प्रयोजनमूलक हिंदी की महत्ता का अनुमान हो जाता है।

आज का मनुष्य समय क्या भाव के कारण संप्रेषण हेतु मोबाइल इंटरनेट से एसएमएस फेसबुक ब्लॉक इंस्टाग्राम आदि का सहारा लेता है। इन माध्यमों में प्रयुक्त हिंदी भाषा को लेकर कुछ विद्वान आलोचना करते हैं कि यह हिंदी भाषा के स्वरूप को बिगड़ने का काम कर रही है। लेकिन वह यह भूल जाते हैं कि भाषा साहित्य या व्याकरण सम्मत बनने से पूर्व ही प्रयोजनमूलक रूप में प्रस्तुत थी और एसएमएस दूरदर्शन इंटरनेट इंस्टाग्राम फेसबुक आदि इसके प्रयोजनमूलक रूप में श्रीवृद्धि कर रहे हैं ध्यान रहे की भाषा जब तक परिवर्तनशील बनी रहेगी तब तक ही वह जीवित रहेगी फलेगी फूलेगी यदि बस्ती रहेगी तो अमृत हो जाएगी जैसे कि हमारे सामने पाली और संस्कृत भाषा का उदाहरण है संस्कृत तो भारतीय भाषाओं की जननी होने का गौरव पाने के बावजूद भी अंतरराष्ट्रीय स्तर अपनी उपस्थिति दर्ज करने में असफल है।

अंग्रेजी का बढ़ता प्रभाव तथा सरकारी नीतियों के कारण प्रयोजनमूलक हिंदी के उपयोग में अब अनेक चुनौतियों का सामना भाषा के रूप में हिन्दी कोहो रहा है। दफ्तर की और कानून की भाषा बनने की योग्यता उसमें होने के बावजूद राजनीतिक उदासीनता के चलते वह आज भी पन्द्रह साल के फेर में है। द्विभाषिया की कमी तथा मशीनी अनुवाद की सीमा आदि भी उसे कमजोर कर रहे हैं। किंतु फिर भी नए आविष्कारों के चलते प्रयोजनमूलक हिंदी को अच्छे दिनों की आशा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1) मानक सामान्य हिंदी -डॉ.पृथ्वीराज पांडे 03

2) नरेश मिश्र-प्रयोजनमूलक हिंदी और काव्यांश -भूमिका से

3) डॉ.अल्लाबख्श जमादार-प्रयोजनमूलक हिंदी तथा भाषा कंप्यूटिंग 24

4) आकाशवाणी पर प्रसारित विविध कार्यक्रम

भूमंडलीकरण और हिन्दी पत्रकारिता

श्री. हंबीर राजू मारोती

मास्तर दीनानाथ मंगेशकर महाविद्यालया, औराद शहाजानी

भूमंडलीकरण ने मीडिया के प्रसार, और तकनीकी दुनिया को बदला है। खबर की परिभाषा नये सिरे से तय होने लगी है। सम्पादक एवं पत्रकारों की स्वायत्तत्ता प्रभावित हुई है। भूमंडलीकरण से हिन्दी पत्रकारिता व्यावसायिक बन चुकी है। लेकिन हिन्दी पत्रकारिता ने अपने राष्ट्रीय सरोकारों से समझौता नहीं किया है। वस्तुतः भूमंडलीकरण को लेकर हिन्दी पत्रकारिता का दृष्टिकोण प्रायः यथार्थ से बना है। जो अपने ऐतिहासिक मिशनरी बोध से अनुप्राणित है। सूचना प्रौद्योगिकी और प्रसार युद्ध में परिवर्तन सम्पादक की सत्ता, पत्रकारिता विज्ञापन का बढ़ता प्रभुत्व, के लिए संघर्ष तथा पाठक के दृष्टिकोण से जो परिवर्तन घटित हुए उन पर इस अध्ययन में रोशनी डाली गयी है। सूचना प्रौद्योगिकी के युग में यह अध्ययन महत्वपूर्ण माना जाता है।

सूचना प्रौद्योगिकी और प्रसार युद्धः-

राष्ट्रीय और प्रतिस्पर्द्धा में राष्ट्रीय और क्षेत्रीय दैनिकों ने तरह-तरह के फार्मूलों का प्रयोग किया सूचना प्रौद्योगिकी से निजी व्यापार और उद्योगों के पनपने का रास्ता साफ किया। साथ ही कम्पनियाँ एवं मीडिया सेटेलाइट तकनीकी के द्वारा भारत में प्रचार-प्रसार किया।" नौवां दशक हिन्दी पत्रकारिता में क्रांति का दशक माना जाएगा। इस दशक में हिन्दी समाचार पत्रों का तेजी से फैलाव हुआ और होता जा रहा है।" नवें दशक में लोगों की बढ़ी क्रय शक्ति ने भारत में एक बड़े बाजार की संभावनाएं जता दी थीं।

दूरदर्शन न्यूज चैनलों के साथ देश में सौ चैनल हिन्दी भाषा में समाचार प्रसारित करते हैं। उसमें आज तक, आई बी एन , आजाद न्यूज, डी.डी. न्यूज, खोज इंडिया, लाईव इंडिया, रफ्तार न्यूज चैनल, इंडिया टीवी, मौर्य टीवी, एन डी टीवी, जी न्यूज, सुदर्शन न्यूज, ईटीवी बिहार, क्राईम नजर न्यूज, टाईम टुडे, ताजा टीवी, सी न्यूज, जन संदेश टीवी, सहारा समय आदि चैनलों का बड़ी तेजी से विकास हो रहा है। भूमंडलीकरण के दौर में हिन्दी चैनलों की भाषा शैली में प्रस्तुतीकरण में बदलाव आया है।

तकनीकी क्रांति के चलते समाचार पत्रों में एक और बदलाव की आहट महसूस हो रही है। भूमंडलीकरण के दौर में हिन्दी पत्रकारिता है जिसका विवरण आगे कलात्मक सृजनात्मक, अंतर्वस्तु और कलेवर के अंतर्गत शीर्षक में किया जायेगा। डिजीटलायजेशन से समाचार पत्रों के आंतर-बाह्य रचना में बदलाव आने लगे हैं। यह सूचना प्रौद्योगिकी का परिणाम है। सारे हिन्दी, अंग्रेजी अन्य भाषाओं के अखबार से भी कहीं ज्यादा मोबाइल के एसएमएस और एमएमएस पाठक दर्शक हैं और मोबाइल इंटरनेट पर हिन्दी अखबार विस्तार की तैयारियाँ प्रिंट मीडिया के साथ इलेक्ट्रानिक मीडिया ने चलाई है। मोबाइल की कंपनियाँ भी इस भीड़ में उतर चुकी हैं। सब क्रिसक्शन मेंबरशिप के लिए ऑनलाइन समाचार पत्र पढ़ सकते हैं। पारंपरिक प्रिंटिंग करने वाले अखबारों पर इसका असर पड़ सकता है। भारतीय हिन्दी समाचार पत्रों ने इस प्रवृत्तियों को सिद्धांत एवं व्यावसायिक आचारसंहिता के तहत वृद्धि की है।

आधुनिक पृष्ठसज्जा और कलात्मक सृजनशीलताः-

अब भूमंडलीकरण में हिन्दी पत्रकारिता भी इसी से किनारा करने लगा है। इस वर्ग से जुड़ी केवल सनसनीखेज घटनाएं हिन्दी अखबारों में खबरें बन पाती हैं। भूख व अकाल से हुई मौतों को समाचार के उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। उसमें सेलीब्रिटी की छोटी-छोटी पार्टियों को भी फोटो सहित विस्तृत कवरेज मिलती है। आजादी के बाद की हिन्दी पत्रकारिता अन्तर्वस्तु में यह महत्वपूर्ण बदलाव है। भूमंडलीकरण के दौर में हिन्दी अखबारों की भाषा बदली है। भूमंडलीकरण की तेज रफ्तार और आधुनिक जीवन शैली का प्रतिबिंब सबसे पहले नवभारत टाइम्स में दिखाई देती है। अपनी पठन सामग्री और रूप-सज्जा की वजह से नवभारत युवा पाठकों में सबसे ज्यादा लोकप्रिय है। हिन्दी पत्रकारिता में डिजिटल ऑफसेट तकनीकी से रंगीन पन्नों का जमाना आ गया है।

सम्पादकीय पन्ने में बदलाव आया। भूमंडलीकरण में हिन्दी पत्रकारिता की अंतर्वस्तु का निर्धारण माँग और पूर्ति की अर्थव्यवस्था के नियम की क्रांति तय होने लगी है। विज्ञापन, बाजार, ग्राहक ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया है।

समाचार पत्रों में सम्पादक की सत्ता का-हास:-

यदि पत्र का लक्ष्य केवल धन कमाना नहीं है, तो उनका आदर्श जनहित की रक्षा करना तथा साधारण मनुष्य का साथी, मित्र उपदेष्टा तथा रक्षक होना है तो पथ-दर्शक सम्पादक, सम्पादक होने के नाते उस विशाल जन समूह के प्रति उत्तरदायी है जिसकी सेवा करने के लिए उसका पत्र प्रकाशित होता है।" स्पष्ट है कि अखबार में सम्पादक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। सम्पादक से किसी अखबार की पहचान जुड़ी होती है। पत्र का व्यक्तित्व काफी हद तक सम्पादक के व्यक्तित्व के आधार पर बनता है। वस्तुतः सम्पादक प्रबंधन, प्रकाशक और पाठकों की बीच का सेतु होता है। वह कुछ समुदाय का प्रतिनिधि होता है, जिसकी सेवा दैनिक करता है। सम्पादक समाचार पत्र का सामाजिक अनुबंध है। जिसके तहत दोनों एक-दूसरे से जुड़े रहते हैं। योग्य सम्पादक का नेतृत्व प्राप्त कर के ही कोई पत्र लोक जीवन को समृद्धि जागृत और गतिशील बना सकता है। पत्रकारिता के साथ विज्ञापनों का विकास साथ-साथ होता चला है। जिसमें दोनों के परस्पर संबंधों का स्वरूप बदलता गया। विज्ञापन की आधुनिक तकनीकी ने पाठकों को आकर्षित करने में प्रमुख भूमिका निभाई। जिसका परिणाम अखबारों की बढ़ती प्रसार संख्या के रूप में सामने आया। विज्ञापनों की दृष्टि से आजादी के बाद अंग्रेजी पत्र की तुलना में हिन्दी अखबार अत्यंत कमजोर स्थिति में रहे। भूमंडलीकरण के बाद हिन्दी अखबारों की स्थिति में बदलाव आया है। हिन्दी पत्रकारिता के विस्तार में अर्थव्यवस्था के खुलेपन व भूमंडलीकरण ने अहम भूमिका अदा की। इस समय प्रतिस्पर्द्धा के चलते कम्पनियों के विज्ञापन बजट में भारी वृद्धि हुई जिसका प्रत्यक्ष लाभ हिन्दी पत्रकारिता को भी मिला। अखबारों को भी इंडस्ट्री की तरह चलाया जाने लगा। "आज हिन्दी दैनिक शुद्ध विज्ञापन और विक्रय के गणित से चलने लगे हैं। जितने पाठक उतने उपभोक्ता, उतने विज्ञापन, जितने विज्ञापन, उतनी आमदनी। बाजार का ये नियम हिन्दी अखबारों ने भी अपना लिया सम्पादकीय नीति से भी विज्ञापन प्रभावित करता है। दसवीं लोकसभा चुनाव के दौरान राजनीतिक पार्टियों ने विज्ञापन में समाचार पेड न्यूज के द्वार खोल दिए। कई हिन्दी और अन्य भाषाई समाचार पत्रों ने अंतरिक्ष सम्पादकीय बेचा, कई हिन्दी, अंग्रेजी समाचार पत्रों ने समाचार में विज्ञापन का नया ट्रेड लायाकई बार विज्ञापन प्रबंधक पत्र-पत्रिकाओं की सम्पादकीय नीति को भी प्रभावित करते हैं। उनकी प्रसार संख्या बढ़ी है। आज के बाजारवाद दौर में मुनाफा मूलमंत्र है। आज के बाजारवाद दौर में हिन्दी अखबार भी इसी मंत्र से कार्य करते दिखाई दे रहे हैं।

सूचना प्रौद्योगिकी से आंतरिक ढाँचे में परिवर्तनः-

एक ओर उच्च प्रौद्योगिकी ने संचार माध्यमों को उद्योग के रूप में विकसित किया तो दूसरी ओर इस उद्योग में कार्यरत मानव-शक्ति सम्बन्धों की परिभाषा बदल किया तो दूसरा आधुनिक प्रौद्योगिकी की एक महत्वपूर्ण शक्ति है। प्रेस भी अब सार यानि पाठक के साथ निकटता या घनिष्ठता के दौर से निकलकर दूरसंचालन के दौर आ गया है। उच्चतम सूचना प्रौद्योगिकी से कई जगह से संस्करण निकालना संभव सका। भूमंडलीकरण के युग में हिन्दी अखबारों के आंतरिक ढाँचे में क्रांतिकारी। फेरबदल हुआ है। यह परिवर्तन इंटरनेट उच्च प्रौद्योगिकी के कहरण दसंभव हुआ है, जो कि इश्वीकरण और नयी विश्व बाजार व्यवस्था का आधार है। दरअसल प्रौद्योगिकी और भूमंडलीकरण औ का अभिन्न रिश्ता है। परस्पर विस्तार में दोनोंण कदम से के सहायक को संचार निभाते हैं। " उच्च प्रौद्योगिकी ने मानव श्रम सबकमी लाकर जो सुविधाएं प्रदान की, उसका अधिकाधिक लाभ संचार माध्यमों के उठाया है। भारी पूँजी निवेश का काम होने का कारण पत्र प्रकाशन कई स्थानों से कर जरूरी भी हो जाता है। उच्चतम् आधुनिकतम् प्रौद्योनिको मका है। संचार और सूचक औधोगिकी ने संचार माध्यमों के विस्तार में अहम् भूमिका निभाई है। जवाहरलाल कोल के अनुसार "वैश्विकीकरण और सूचना माध्यमों के बीच रिश्तों को समझना आसान है। संचार माध्यम चाहे वह दृश्य-श्रव्य हों या लिखित जहाँ संचार माध्यमों से भूमंडलीकरण संचार संचार माध्यमों को लगातार बदलता रहता है।यद्यपि आधुनिक प्रौद्योगिकी ने दैनिक छापना मंहगा कर दिए। लेकिन विज्ञापन के क्षेत्रवार वितरण ने काफी हद तक इस समस्या का समाधान किय है। इससे पाठक बहुत सारी और वह भी ताज खबरें जान लेता है, लेकिन पाठक का अखबार से जो रिश्ता है वह इंटरनेट पर उपलब्ध वेब साइट से नहीं

बन पाता। "इंटरनेट पर सारे अखबार टीवी चैनल मौजूद हैं। आप जब चाहें, जहाँ पायें, जैसे चाहें, मनचाही सूचना पा सकते हैं।इसलिए आज हिन्दी तकनीकी पिछड़ापन छोड़ रही है। आधुनिक प्रौद्योगिकी में अपनाने में क्षेत्रीय दैनिकों ने राष्ट्रीय दैनिकों को भी पीछे छोड़ दिया है। आज ज्यादत हिन्दी दैनिक इंटरनेट पर आ गये हैं। वेब दुनिया में हिन्दी अखबार ने प्रवेश किया है। हिन्दी की इस डॉटकॉम पत्रकारिता में उसके वेब पाठक भी बन रहे हैं। डॉटकॉम के पाठक यद्यपि सीमित ही हैं। क्योंकि जिस के पास कम्प्यूटर है वही इसका उपयोग कर सकता है। लेकिन इसके फायदे हैं, प्रथम डॉटकॉम में जगह की कमी नहीं रहती, दूसरे, इसको लगातार अपडेट किया जा सकता है।

निष्कर्षः-

भूमंडलीकरण में एक ओर हिन्दी पत्रकारिता में सम्पादक में सत्ता कमजोर हुई तो दूसरी ओर विज्ञापन का प्रभुत्व बढ़ने लगा है। यह सच है कि रिट पत्रकारिता को मुनाफे वाला उद्योग बनाने में विज्ञापनों की अहम भूमिका रही है। वे पहले से अधिक प्रतिस्पर्दी और व्यावसायिक हुए हैं। भूमंडलीकरण झाई हिन्दी पत्रकारिता का आंतरिक ढाँचा बदला है। आज सम्पादक पर मालिक का दयाश अधिक रहता है।भूमंडलीकरण एवं सूचना प्रौद्योगिकी के युग में हिन्दी पत्रकारिता में सूचन प्रौद्योगिकी और प्रसार युद्ध, आधुनिक पृष्ठ सज्जा और कलात्मक सृजनात्मक, सिं भोगापारों में सम्पादक की सत्ता का द्वास, सूचना प्रौद्योगिकी में विज्ञापन का महल सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति से परिवर्तन हुआ है। स्पष्ट है कि सम्पादक की सत्ता के का मामला दोतरफा है। ज्यादातर हिन्दी दैनिकों ने इंटरनेट संस्करण शुरू किये हैं। आधुनिक सूचना प्रौद्योगिक तकनीकी ने हिन्दी अखबारों को काफी आकर्षक बना दिया है। हिन्दी दैनिकों ने नये-नये क्षेत्रों में पत्र पसारे हैं। कार्पोरेट उद्योग के दर्शन के अनुसार मैनेजर की भूमिका बढ़ रही है। कई संस्थानों में सम्पादकों के समाचार के पद बनाये गये हैं।

संदर्भ सूची:-

1. श्री तुकाराम धोंड - हिन्दी पत्रकारिता और सूचना प्रौद्योगिकी पृ. ४४ – ५५
2. बच्चन सिंह -हिन्दी पत्रकारिता, पृ. 8
3. बिजेन्द्र कुमार - हिन्दी पत्रकारिता और भूमंडलीकरण, पृ. 125
4. बिजेन्द्र कुमार - हिन्दी पत्रकारिता और भूमंडलीकरण, श्रओ नटराज प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2007. 7. 86
5. राजेन्द्र माथुर - हिन्दी पत्रकारिता की विकास बाधाएँ, समागम पत्रिका, सितम्बर- 2010 -5
6. वेद प्रताप वैदिक - हिन्दी पत्रकारिता के विविध आयाम, पृ. 136-37
7. जवाहरलाल कौल - हिन्दी पत्रकारिता का बाजार भाव, पृ. 159
8. जवाहरलाल कॉल - हिन्दी पत्रकारिता का बाजार भाव, पृ. 62
9. ज्वरीमल परिख - जनसंचार माध्यमों का वैचारिक परिपेक्ष्य, पृ. 36
10. प्रभाष जोशी - हिन्दी पत्रकारिता विकास में बाधाएं, पृ. 25
11. सुधर्धारा पचौरी - जनसंचार माध्यम भाषा और साहित्य, पृ. 141

'मशाल जलती रहे' एकांकी में राजनीतिक चेतना

प्रा.हिरा तुकाराम पोटकुले

हिंदी विभाग, कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, शिवाजीनगर गढी तह.गेवराई जि.बीड।

आधुनिक ज्ञान, विज्ञान एवं तकनीकी के युग में तेजी से बदलने वाली आस्थाओं और अभिरुचियों का संचार अधिक है। भारत में ही नहीं अपितु वैश्विक स्तर पर सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक धरातल पर पिछले वर्षों में आनेकानेक नए दृष्टिकोण, नई विचारधारा के साथ नए जीवन मूल्य जन्मे और विकसित हुए हैं। इसका प्रभाव सामाजिक, भौतिक, आर्थिक, राजनीतिक वातावरण पर पड़ा है। रचनाकार जीवन और जगत के अपने सारे अनुभव अपनी रचनाओं में व्यक्त करता है। इन अनुभवों का यह भंडार इतना विशाल होता है कि जीवन में कोई भी चीज नहीं छुटती, चाहे सुख–दुख, हर्ष–विषाद, आशा–निराशा, पाप– पुण्य आदि सभी भाव समाहित हो जाते हैं। जिन रचना में समकालीन जीवन मूल्यों की गंध के साथ शोषित, पीड़ित, प्रताड़ितों की व्यथा की निर्बाध गाथा होती है, वही रचना शाश्वत एवं चिरंतर के साथ–साथ आनेवाली पीढ़ी के लिए मार्गदर्शक भी बनती हैं। डॉ. तेजपाल चौधरी जी ने 'मशाल जलती रहे' एकांकी में राजनीति के आंतरिक पहलुओं पर बेहद खुला विवेचन किया है। प्रस्तुत एकांकी में राजनीतिक यथार्थ को तथ्य बनाकर राजनीति के आंतरिक परतों को खोला है। इस एकांकी में राजनीतिक चेतना एक समस्या के रूप में चित्रित हुई है जो विषम परिस्थितियों में गुजरती हुई स्थान–थान पर संवेदनात्मक चुनौतियां देती दिखाई पड़ती है। एकांकीकार ने इस एकांकी में राजनीति के अंधेयुग की पोल खोलते हुए एक युवक की मनीषा 'सत्ता के लिए नहीं, सत्य के लिए संघर्ष, न्याय के लिए संघर्ष' की आशा की एक किरण दिखाई है।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी तेजपाल चौधरी जी एक साथ कवि, कहानीकार, एकांकीकार, चिंतक, समीक्षक, अनुवादक थे। उनके एकांकी संग्रह १. कालचक्र २.स्वाती की बूंद ३.मशाल जलती रहे,कविता संग्रह १.कुंभकर्ण सो रहा है, संपादित कहानी संग्रह १.कथा स्वर, अनुवाद १.स्किट्जोफ्रेनिया (मराठी आत्मकथा) साथ ही १.खड़ीबोली का वैज्ञानिक व्याकरणिक विश्लेषण २.हिंदी व्याकरण विमर्श ३.समाज भाषा विज्ञान की भूमिका ४.भारतीय काव्यशास्त्र विमर्श ५.भाषा और भाषा विज्ञान ६.भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्र की रूपरेखा ७.हिंदी व्यंग्यः बदलते प्रतिमान जैसी रचनाओं का सृजन करके हिंदी साहित्य में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। फल स्वरुप उनके चिंतन एवं सृजन के मूल में भारतीय जनजीवन रहा है। उनके विचारों की जड़े भारतीय परंपराओं में गहरी स्थित थी। बहुमुखी प्रतिभा एवं बहुआयामी कार्य अनुभव के कारण डॉ. तेजपाल चौधरी जी के रंग अनुभव का क्षेत्र भी विस्तृत था। यही कारण है की एकांकी के क्षेत्र में भी उन्होंने उल्लेखनीय योगदान दिया है।

वर्तमान समय में नैतिक मूल्यों का जो अवमूल्यन हो रहा है उसे रोकने की बात एकांकीकार करते हैं। वह कहते हैं की,''अब इन विरूप स्थितियों को रेखांकित करने मात्र से काम नहीं चलेगा। मेरा यह विश्वास निरंतर दृढ होता जा रहा है कि साहित्य को एक बार फिर आदर्शों की ओर लौटना होगा। आज के नैतिक अवमूल्यन को केवल मूल्य संक्रमण कहकर हाथ नहीं झाडे जा सकते। इस मूल्य विघटन को रोकना होगा। नहीं तो मानव जाति में भी 'माइट इस राइट' और 'सर्वाइवल ऑफ द फिटैस्ट' के सिद्धांत चरम सत्य बन जायेंगे। ये एकांकी इसी दृष्टिकोण को सामने रख कर लिखी गई है। वस्तुतः सत् और असत् का संघर्ष जीवन की शाश्वत सच्चाई है और यह मानने में भी मुझे कोई आपत्ति नहीं कि इस संघर्ष में असत् पक्ष सदैव अधिक प्रबल रहा है। परंतु साहित्य का कर्तव्य है कि वह सत् के प्रति मानव की आस्था को जोड़ कमजोर ना पडने दे। इन एकांकियों ने इस विश्वास को अक्षत रखने की कोशिश की है।''१

तेजपाल चौधरी जी ने जीवन को साहित्य से और साहित्य को जीवन से जोड़कर देखा है। जीवन भर समाज ही उनके लिए महत्वपूर्ण रहा है। व्यक्ति को समाज से अलग देखने और चित्रित करने के पक्षधर वे नहीं है। लेखक ने समाज के विसंगत, विकृत एवं विद्रुप स्थितियों का सूक्ष्म निरीक्षण किया है। वे लिखते हैं, ''यथार्थवाद का उद्देश्य सामाजिक व्यवहार की सफेद चादर पर लगे दाग की ओर इशारा करना है, ताकि उसे धोकर साफ किया जा सके। परंतु जब सारी चादर ही मैली हो गई हो तो आप किस–किस दाग की ओर इशारा करेंगे? आज के समाज में कलुषित व्यवहार को स्वीकार कर लिया है।

आज असत् व्यवहार को देखकर हमें तकलीफ नहीं होती। हमारी संवेदनाएं भोथरी हो गई है। बल्कि हमने विकृतियों में रस लेना शुरू कर दिया है। यह खतरे की घंटी है और महाविनाश की ओर बढ़ता एक कदम है। क्यों आज उदात्त और महान चरित्र केवल श्रद्धा या पूजा की वस्तु रह गए हैं? क्यों हम आदर्श को यूटोपिया मानने लगे हैं।''२

लेखक ने आजादी के पश्चात आधुनिक भारत में सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, धार्मिक, आर्थिक आदि अनेक विसंगतियों पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया है। राजनीति में व्याप्त दुराचार को उजागर किया है। एकांकी का पात्र गोविंदराम मास्टरजी में लेखक के विचारों की छवि दिखाई देती है।गोविंदराम देश में फैल रहे भ्रष्टाचार के बाढ़ को रोकने के लिए चुनाव में खड़े रहते हैं। इस ईमानदार व्यक्ति को सामने वाले पार्टी के जग्गी पांडे कुछ पैसे देकर खरीदना चाहता है। गोविंदराम के ऑफिस के लोग भी पांडे से मिले हुए हैं। गोविंदराम और उनके ही ऑफिस में काम करने वाले गौतम का संवाद दृष्टव्य है, गौतमः पांडे जी चाहते हैं कि आप चुनाव के मैदान से हट जाए।... आप शांति से सोचिए।... इधर–उधर से लाख –डेढ़ लाख रुपये का इंतजाम करके चुनाव जीतना मुमकिन नहीं रहा अब। आप जानते हैं जितने रुपए आपने चुनाव पर कुल मिलाकर खर्च किए हैं उससे ज्यादा तो जग्गी पांडे ने सिर्फ मतदाताओं में नकद बटवाए हैं। वोट का क्या रेट चल रहा है आजकल, मालूम है? ...सौ रुपये। गोविंदराम : मुझे मतदाताओं की कीमत नहीं लगानी, उनका आशीर्वाद प्राप्त करना है। पांडे जी जो कुछ कर रहे हैं वह प्रजातांत्रिक मूल्यों की हत्या है।

गौतमः प्रजातांत्रिक मूल्य! मास्टर साहब, चुनाव एक लड़ाई है।... युद्ध!... और युद्ध और प्रेम में सब कुछ जायज है। Everything is fair in love and war! आप अपने मूल्यों को शहद लगाकर चाटिए। विजय लक्ष्मी हाथ में माला लिए विधानसभा के दरवाजे पर जग्गी पांडे का इंतजार कर रही है।''३ राजनीति में धन के बल पर किस प्रकार एक– दूसरे को खरीदा जाता है इसे प्रस्तुत किया है।

जब कोई ईमानदार लोग प्रतिनिधि अपने काम और ईमानदारी के बल पर चुनाव लड़ता है और सामने वाले को यह लगता है कि इसकी अच्छाई हमें चुनाव में हरा देगी तब वह जनता को गुमराह करके उन्हें लालच देता है। और इससे भी बात ना बने तो स्वार्थांध राजनेता के एजेंट पोलिंग बूथ पर बाधा पहुंचाते हैं। इन स्थितियों का जिक्र सुषमा और विवेक के बातों में स्पष्ट दिखाई देता है।'' पुराने मोहल्ले में जहां हमारे वोटर की संख्या ज्यादा थी, धीरे काम करने का नुक्सा अपनाया गया।जग्गी के एजेंट ने कई मतदाताओं को 'बाहर के आदमी' बताया और पहचान के नाम पर बार–बार पोलिंग में बाधा पहुंचायी। केवल इतना ही नहीं, शाम को पंद्रह– बीस मिनट पहले ही पोलिंग बंद कर दिया गया और सौ– डेढ़ सौ मतदाता कतार में खड़े थे। बेचारे सब के सब बिना वोट दिये वापस लौट गए। और रेल की बस्ती पर जिस तरह रातों– रात बर्तन,कपड़े और नकद रुपए बांटे गए,वह नियमों की सीधी– सीधी अवहेलना है।''४

आज स्वार्थी राजनितीज्ञों ने विभिन्न दलों में राजनीति को बांटा है। निजी स्वार्थ के लिए आम जनता का इस्तेमाल आए दिन बढ़ रहा है। धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक,शैक्षणिक, प्रशासन, न्याय आदि सभी क्षेत्रों में विसंगतियां छाई हुई है। जिसकी जड़ आज की राजनीति में दिखाई देती है। राजनेताओं के स्वार्थ के कारण पिसता हुआ आदमी अपनी मूलभूत हक्कों से वंचित हो रहा है। हमारे देश की सामान्य जनता का हाल, उनकी मजबूरी का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत उद्धरन में दिखाई देता है, ''जिस देश का मतदाता वोट बेचकर आटा खरीदता हो, जहां वोट देना या न देना लाठी की कृपा पर निर्भर हो, जहां उम्मीदवार भेड़–बकरियों की तरह खरीदे–बेचे जाते हो, वहां कोई गोविंदराम चुनाव नहीं जीत सकता।''५

लेखक ने समाज में घट रही घटनाओं का वैचारिक मंथन करके अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया है। 'महात्मा के आंसू' इस एकांकी में समाज में अराजकता और भ्रष्टाचार पनप रहा है इसे व्यक्त किया है। जहां मूल्यों के र्‌हास और नैतिकता के खत्म होने की बेचौनी है, वही मूल्यों को बचाने की कोशिश भी की है। एकांकीकार देश में जनवादी जनतंत्र लाने के लिए लोगों को क्रांति का आवाहन करते हैं। गोविंदराम जैसा ईमानदार व्यक्ति चुनाव हार जाता है। लेकिन उनके सच्चे साथी चाहे संख्या में कम हो वह उनका साथ देते हैं, उन्हें हौसला देते हैं। इन हालातो, इन परिस्थितियों से लड़ने का आत्मविश्वास अपने अंदर जगाकर न्याय के लिए संघर्ष करने के लिए तैयार होते हैं। एक युवक जो मास्टर जी का छात्र रह चुका है वह हारती हुई बाजी में आशा का किरण लेकर आता है। विनयकुमार अपने मास्टर जी को गुरु दक्षिणा के रूप में पचास हजार का चेक देकर न्याय की लड़ाई लड़ने के लिए उनके साथ खड़ा होता है।

''गोविंदरामः सत्ता के लिए इतना संघर्ष?

युवकः सत्ता के लिए नहीं, सत्य के लिए संघर्ष। न्याय के लिए संघर्ष? स्वीकार कीजिए सर! गोविंदरामः मगर ?

युवकः विश्वास कीजिए सर! इनमें से एक भी पैसा अनीति की कमाई का नहीं है।

गोविंदरामः ठीक है।

विवेकः इस यज्ञ में एक आहुति मेरी भी। (अंगूठी उतार कर देता है।)

सुषमाः मेरी भी।(कंगन उतार कर देती है।)

राजेंद्रः और मेरी भी! (चौन उतार कर देता है।) (मशाल के पोस्टर की ओर देखकर) यह ज्योति बुझाने नहीं पाये! सब मशाल जलती रहे!''६ लेखक सबके दिलों में सत्य के लिए मशाल जलाकर आत्मविश्वास को जागना चाहते हैं । हमारे प्रजातंत्र पर आयी आपत्ती को भगाना हमारा कर्तव्य है। हमें भी अपनी जिम्मेदारियों को पूरे विवेक के साथ निभाना है।

यू कहें की देश में अमृतकाल चल रहा है परंतु अगर यह कहां जाए कि देश की जनता को गुमराह करने वाला अंधा युग है तो शायद इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। राजनीति में आए दिन बढ़ते स्वार्थांधता के कारण आज दुनिया में युद्ध और अशांति का मानवीय संकट आया है। परिणाम स्वरुप विवेक की हार होती दिखाई दे रही हैं। नाटक– एकांकी के माध्यम से साहित्यकार समाज की समस्याओं को दृश्य स्वरूप में रखने का प्रयास करते हैं लेकिन राजनीति ऐसा क्षेत्र है जहां आज सबसे अधिक अभिनय हो रहा है। आज की राजनीति को देखते हुए ऐसा लगता है यह अंधे युग का समय है। इस अंधकारमय युग में भी चौधरी जी ने आशा की एक किरण दिखाई है। हमारे अंदर का सत्य का चिराग बुझ न पाए इसका प्रयास किया है। हर इंसान के अंदर सकारात्मक दृष्टिकोण, मानवता, सत्य की 'मशाल जलती रहे' यही कामना की है

संदर्भ सूचीः–

१. मशाल जलती रहे – तेजपाल चौधरी,पृ. ५
२. मशाल जलती रहे – तेजपाल चौधरी,पृ. ५
३. मशाल जलती रहे – तेजपाल चौधरी,पृ. १२
४. मशाल जलती रहे – तेजपाल चौधरी,पृ.१६
५. मशाल जलती रहे – तेजपाल चौधरी,पृ. १६
६. मशाल जलती रहे – तेजपाल चौधरी,पृ. २१

राष्ट्रीय शिक्षा निति के अनुसार हिंदी साहित्यएवं मनोविज्ञान में अन्तः संबंध का अध्ययन

डॉ. अजय कुमार चतुर्वेदी

डीन. पी. जी. एस. एवं प्रोफेसर मानविकी एवं समाज विज्ञान संकाय आई. ई. सी. विश्वविद्यालय ग्राम-कालू झंडा पोस्ट-मन्धाला, बद्दी जिला- सोलन, हिमाचल प्रदेश पिन-174103

डॉ. राजेश

एसोसिएट प्रोफेसर मानविकी एवं समाज विज्ञान संकाय आई. ई. सी. विश्वविद्यालय ग्राम-कालू झंडा पोस्ट-मन्धाला, बद्दी जिला- सोलन, हिमाचल प्रदेश पिन-174103

सारांश :

भारतीय संविधान मे समाहित नीति निर्देशक तत्वों में कहा गया है कि भारत के सभी वर्गों के 6 से 14 वर्ष तक आयु के बच्चों के लिये अनिवार्य वनि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी । इसी अवधारणा को कार्य रूप मे परणित करने के लिए 1948 में डॉ॰राधाकृष्णन की अध्यक्षतामें विश्वविध्यालय शिक्षा आयोग का गठन किया गया। कोठारी आयोग (1964-1966) की सिफारिशों परआधारित 1968 में पहली बार शिक्षा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण बदलाव वाला प्रस्ताव तात्कालिक प्रधानमन्त्री इंदिरा गाँधी के कार्यकाल में पारित हुआ|

आगे चल कर अगस्त 1985 में 'शिक्षा की चुनौती' नामक एक दस्तावेज तैयार किया गयाऔर इसी पर 'नई शिक्षा नीति 1986' का प्रारूप तैयार किया गया। इसमें सारे देश के लिए एक समानशैक्षिक ढाँचे को स्वीकार किया गया| इसमें अधिकांश राज्यों ने तात्कालिक प्रधानमंत्री राजीव गाँधी के कार्यकाल में शिक्षा पद्धति में 10 + 2 + 3 की संरचनाको अपनाया।

इस शिक्षा नीति में 1992 में पुनः संशोधन किया गया ।अनेक मार्गदर्शनों के बाद भारत सरकार के द्वारा 29 जुलाई 2020 को राष्ट्रीय शिक्षा नीति को पारित किया गया। यह 1986 के बाद नई शिक्षा नीति में यह एक पहला सबसे बड़ा परिवर्तन है। यह नीति अंतरिक्ष वैज्ञानिक के0 कस्तूरीरंगन, की अध्यक्षता वाली समिति की रिपोर्ट पर आधारित है।

शब्द कुंजी : राष्ट्रीय शिक्षा निति, हिंदी साहित्य, मनोविज्ञान, अन्तःसम्बन्ध **l**

नई शिक्षा-2020 नीति के प्रमुख परिमार्जन

1: नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 के अंतर्गत वर्ष 2030 तक समग्र शैक्षिकनामांकन अनुपात को 100% तक पहुचाने का लक्ष्य रखागया है।

2: इसके अन्तर्गत शिक्षा क्षेत्र में सकल घरेलु उत्पादन का 6% हिस्से का सार्वजनिक व्यय का वार्षिक लक्ष्य रखा गया है।जो वर्तमान समय 4.43% हीहै।

3: 'मानव संसाधन विकास मंत्रालय' का नाम बदल कर 'शिक्षा मंत्रालय' कर दिया गया।

4: शिक्षा में मातृ भाषा/स्थानीय या क्षेत्रीय भाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाने को कक्षा-5 तकऔर आगे की शिक्षा के लिये प्राथमिकता देने का सुझाव दिया गया है।

5: उच्च शिक्षण संस्थानों के लिये "भारतीय उच्च शिक्षा परिषद" नामक एकल नियामक का सुझाव दिया गया है।

6: नई शिक्षा नीति में पांच बातो जिसमें शिक्षा की पहुंच,गुणवता,समानता,जवाबदेही,किफ़ायत पर बल दिया गया है|

7:स्कूलों में 10+2शिक्षा व्यवस्था के स्थान पर 5+3+3+4 शिक्षा व्यवस्था को शामिलकिया जाएगा।

हिंदी साहित्य के मूल तत्व

साहित्य मानव मन का सहचर है| मानव मन से ही साहित्य का उद्गम होता है| सामाजिक रूप से स्वस्थ साहित्य मानव अनुभूतयों और सामाजिक व्यवहारों का प्रतिबिम्ब होता है। मानव मन की भूमिका के बिना एक सृजनात्मक साहित्य की कल्पना नहीं की जा सकती | हर व्यक्ति के मन में साहित्य का कुछ ना कुछ अंश बसता है | लेकिन यह सबके बस का नहीं की की सब अपने अभिव्यक्तियों को शब्द दे सके और उन्हें नित नए रूपों मे प्रस्तुत कर सके | एक स्वस्थ साहित्य का सृजन एक दीर्घ कालिक प्रक्रिया है जिसमे मानवीय मूल्यों एवं चिन्तन की प्रायिकता

होती है| साहित्यकारकाउद्देश्यमनोरंजन होताहै, समाजकोशिक्षितकरना होताहै, सकारात्मकदिशादेनाहोताहै | साहित्य का क्षेत्र असीम औरअनन्त है | साहित्यकार के लियें निरंतर पढना, सोचना, विवेचन करना, व्याकरण सम्मत भाषओं को लिखना उसकी रचनाओ का आकर्षण बढाता है। रचनाकार का शब्दों का चयन विषय के अनुकूल होना चाहिए । कलाकार या साहित्यकार में कला पक्ष और भाव पक्ष मे समन्वय होना चाहिए ताकि श्रोताओ एवं पाठको में रोचकता बराबर बनी रहे ।

साहित्य को समझने के लिए उसके प्रमुख तत्वों की जानकारी आवश्यक है। साहित्य के मुख्यतः चार तत्व निर्धारित किये गये हैं | **(1) भाव, (2) कल्पना, (3) बुद्धि और (4) शैली ।** साहित्य एवं साहित्यिक रचनाओ का **मुख्य तत्व** 'भाव' ही है भाव पर साहित्यिक रचनाये टिकी होती है | अगर देखा जाये तोभाव ही साहित्य की आत्मा है।साहित्य एवं साहित्यिक रचनाओ का **दूसरा तत्व** कल्पना है। साहित्य में भावनाओं का चित्रण कल्पना शक्ति के प्रयोग के द्वारा ही सम्पन्न होता है। एक साधारण-से-साधारण घटना को भी कवि कल्पना, के रंग में रंगकर ऐसा भव्य रूप प्रदान कर देता है कि वह हमारे हृदय को बलात् आकर्षित कर लेता है I साहित्य एवं साहित्यिक रचनाओ का**तीसरा तत्व** बुद्धि है। बुद्धि का सम्बन्ध तथ्यों, विचारों और सिद्धान्तों से है। साहित्य में किसी-न-किसी मात्रा में तथ्यों, विचारों और सिद्धान्तों का भी समावेश किया जाता है। इनके अभाव में कोरी भावनाओं का स्पन्दन दुःखी का चीत्कार बन जायेगी तथा बुद्धि शून्य कोरी कल्पना में और एक पागल व्यक्ति के प्रलाप में कोई अंतर शेष नहीं रह जायेगा।**साहित्य का चौथा तत्व शैली'** कवि या साहित्यकार जिस भाषा, जिस रूप और जिस ढंग से अपने भावों, विचारोंया इतिवृत्ति को व्यक्त करता है, वही शैली है। शैली के अन्तर्गत भाषा, शब्द- चयन, अलंकारों का प्रयोग, छन्दों का उपयोग, काव्यरूप आदि का समावेश किया जाता है। काव्य के प्रारम्भिक तीन तत्व यदि उसके प्राण हैं।

भावों के दो वर्ग किये हैं-संचारी और स्थायी। आगे चलकर भोजराज, अभिनवगुप्त, मम्मट, विश्वनाथ आदि आचार्यों ने भरत के भाव सम्बन्धी विवेचन को और आगे बढ़ाया। कहना न होगा कि भारतीय आचार्यों द्वारा किया गया भावों का विवेचन आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से भी अत्यन्त संगत एवं शुद्ध है। आधुनिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी भाव की दो कोटियाँ हैं-(१) भावना (Emotion) और (२) भाव (Sentiment)। इमोशन और सेंटीमेंट क्रमशः संचारीभाव और स्थायीभाव से गहरा साम्य रखते हैं। भाव के सम्बन्ध में भारतीय आचार्यों ने तीन अंगों का विवेचन किया है-आलम्बन, उद्दीपन और अनुभाव । आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने भी इन्हें स्वीकार किया है। इस प्रकार साहित्य मनोविज्ञान से अन्तःसम्बंधित है I

मनोविज्ञान का स्वरुप

आज का मनोविज्ञान पूरी तरह से व्यवसिक बन चुका है। वर्तमान जीवन के हर क्षेत्र मे मनोवैज्ञानिकों की आवश्यकता महसूस की जा रही है। चिकित्सा, शिक्षा,खेल, सैन्य जगत और कॉर्पोरेट जगत के अतिरिक्त कई क्षेत्रों में मनोवैज्ञानिक कार्यरत हैं।

'मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है|'

जो उद्दीपक, प्राणी, अनुक्रिया के बीच पारस्परिक संबंधो (व्यवहारों) का अध्यन करता है | प्राणी के मन मे उठते अंतर्द्वन्दों, संवेगों और उद्वेगों के प्रभावों का अध्ययन करता है। मनोविज्ञान भी मानता है कि ऋतुओं का प्रभाव व्यक्ति की मानसिकता उसकी भावना और संवेगों पर पड़ता है। मनोविज्ञान व्यक्तित्व का विश्लेषण करता है। अनुभूतियाँ वही होती हैं, पर उनपर अभिव्यक्तिया अलग अलग होती जिससे हमारे व्यवहारिक उद्देश्य भी अलग अलग हो जाते है। मनोविज्ञान मानवीय समसयाओं को परिस्थितियों के संदर्भ मे समझ कर सुलझाने के लियें प्रयत्नशील रहता है।

वुडवर्थ (1954) के अनुसार, "व्यक्ति के पर्यावरण के सम्बन्ध में व्यक्ति की क्रियाओं के अध्ययन का विज्ञान हो मनोविज्ञान है।"

स्किनर (1956) के अनुसार, "जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के प्रति प्राणी कीप्रतिक्रियाओं या व्यवहार का अध्ययन ही मनोविज्ञान है। प्रतिक्रियाओं या व्यवहार का अर्थ प्राणी की सभी प्रकार की प्रतिक्रियाएँ, समायोजन, कार्य-व्यापारों और अभिव्यक्तियों से है।

मार्गन एवं किंग (1978) के अनुसार "मानव और पशु व्यवहार के अध्ययन का विज्ञान हो मनोविज्ञान है।"

क्लार्क और मिलर (1994) के अनुसार, "मनोविज्ञान को व्यवहार के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जाता है। इसमें वह व्यवहार सम्मिलित है जिसका प्रत्यक्ष रूप रूप से निरीक्षण कर सकते हैं, जैसे हाव-भाव, भाषण और दैहिक परिवर्तन, आदि। इसमें वह में प्रक्रियाएँ भी सम्मिलित हैं जिनका प्रत्यक्ष रूप से

निरीक्षण सम्भव नहीं है बल्कि इन प्रक्रियाओं के । सम्बन्ध में मात्र अनुमान ही लगाया जा सकता है, जैसे चिन्तन और स्वप्न आदि।

मनोविज्ञान की उक्त परिभाषाओ से स्पष्ट होता है कि मनोविज्ञान पर्यावरण के संदर्भ में घटित होने वाली घटनाओ का अध्ययन प्राणी के संदर्भ में करता है| हम इस अध्ययन को एक सूत्र के आधार पर परणित कर समझ सकते है |

उद्दीपक----------प्राणी---------अनुक्रिया (व्यवहार)

प्राणीगत भेद के कारण अनुक्रिया परिवर्तित हो सकता है और यही पर्यावरण की उपस्थिति मे प्राणी के अनुक्रिया (व्यवहार) का परिवर्तन ही मनोवैज्ञानिक चिंतन का कारण बनता है | अधिकांश स्थान पर प्राणियों में व्यवहार परिवर्तन साहित्यकार की रचनाओं के मूल कारण बनते है | सामाजिक पर्यावरण के परिप्रेक्ष में प्राणीगत व्यवहारों का चरित्र-चित्रण करना साहित्यकार एवं मनोवैज्ञानिक दोनों का मूल कार्य है | व्यवहारों में परिवर्तन के अध्ययन की सहसम्बद्धता साहित्यकार एवं मनोवैज्ञानिको को एक सूत्र मे जोडती है | मनोविज्ञान और साहित्य की अध्ययन प्रणालियाँ अलग होती हैं, लेकिन दोनों की विषय-वस्तु एक ही है, मनुष्य और अन्य प्राणियों का व्यवहार।

साहित्यएवंमनोविज्ञानकातुलनात्मकवर्णन

मनोविज्ञान विश्व के अनेक दर्शनों से प्रभावित होकर वर्तमान वैज्ञानिक विधियाँ अपनाकर अनेक वैज्ञानिक अनुसंधान करने के बाद एक स्वतन्त्र विषय के रूप मे स्थापित हुआ है। साहित्य पर भी समय समय पर अनेक संस्कृतियों, सम्प्रदायों, समाजों और भाषाओं का प्रभाव पडता है। साहित्यकार अपने पर्यावरणऋतुओं व संवेगों से प्रभावित होकर अपनी रचना के पात्रों के चरित्र मे रंग भरता है ।

कोई भी साहित्यकार प्रायः अपने अनुभव, अनुभूतियों और अपने सामाजिक वातावरण से भावात्मक रूप से प्रभावित होकर कोई साहित्यिक रचना लिखता है। एक मनोवैज्ञानिक अपने व्यक्तिगत स्तर से ऊपर उठकर बिना किसी पक्षपात पूर्ण रवैये के पर्यावरण मे उपस्थित व्यक्ति की समस्याओ को पहले से स्थापित सिद्धान्तों की पृष्टभूमि मे समझकर समाधान ढूँढने का प्रयाश करता है। मनोवैज्ञानिक कोई नैतिक स्तर नहीं कार्य करता ना ही वह स्वयं का कोई निर्णयात्मक पक्ष रखता है। मनोविज्ञान के व्यवहारगत सिद्धान्त पर्याप्त वैज्ञानिक अनुसंधान के बाद स्थापित किये जाते हैं। साहित्यकार का अनुसंधान स्थल उसका पर्यावरण, मन और मस्तिष्क होता है, वह कोई वैज्ञानिक उपकरण नहीं मांगता और न कोई पूर्व निर्मित सिद्धान्त बनाता है| साहित्यकार तोबस काग़ज़ और क़लम के भरोसे अपना सामाजिक सरोकार का कार्य करता है। साहित्यकार स्वान्तःसुखाय के आधार पर रचना करते है |

उत्कृष्ट साहित्य सृजन के लिये शिक्षा की शर्त अनिवार्य नहीं है। अधिकांश उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाये सामाजिक अधिगम के फलस्वरूप उत्पन्न हुई है | निर्गुण धारा के कबीर दस जी के दोहों से कौन परिचित नहीं है वे पढ़े लिखे भी नहीं थे। फिर भी आज उनकी रचनाये वैज्ञानिकता के किसी स्तर पर तनिक भी कम नहीं पड़ती | भारतीय परिवेश मे सलाह देने को तो हमें कही भी रह चलते सलाह देने वाले मिल जायेंगे | मनोवैज्ञानिक परामर्श एवं मनोचिकित्सकीय परामर्श जिसे कहा जाता है वह हमें सिर्फ प्रशिक्षित और लाइसैंस प्राप्त मनोवैज्ञानिक द्वारा ही मिल सकती है।

साहित्यकार द्वारा चुना गया लेखन क्षेत्र कंहीं दूर पंहुँच कर प्रतीकात्मक रूप मे सामाजिक समस्या का निराकरण कर जाता, साहित्य का उद्देश अधिकांश अपरोक्ष होता है, कभी कोई साहित्यकार किसी एक व्यक्ति की समस्या सुलझाने के लियें कुछ नहीं लिखता, फिर भी एक उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाय हजारों लोगो के जीवन की दिशा बदल सकतीहै।जबकि एक प्रशिक्षित मनोवैज्ञानिक अचानक समाज के लिए कुछ नहीं करता, वह हमेशा वैक्तिक समस्याओ की जड़ तक पंहुँचने का कार्य करता है, जब समस्या का वास्तविक कारण मिल जात हैं तो मनोवैज्ञानिक के लिए समस्या समाधान ढूँढना सरल हो जाता है। यदि समस्या का कोई समाधान परिवेश मे उपलब्ध ही नहीं होता तो मनोवैज्ञानिक समस्या को एक सार्वभौमिक सत्य के रूप मे स्वीकार कर उसका सामना करने के लिये समस्या ग्रस्त व्यक्ति को तैयार करता है। प्रायः अच्छी साहित्यिक कृतियाँ भी वैक्तिक एवं सामाजिक रूप से यही कार्य करती है|

मनोविज्ञान के अंतर्गत प्राणी की प्राणीगत बुद्धि, अभिरुचियों, संवेगों और समूचे व्यक्तित्व को आँकने के लियें वैज्ञानिक स्तर पर मापदण्ड बनाया जाता है। जबकि एक कुशल साहित्यकार इन्ही व्यक्तिगत विशेषताओं को किसी वास्तविक या काल्पनिक चरित्र के ताने बाने मे कल्पना और यथार्थ के सहारे पात्रों का चरित्र चित्रण करता है।

साहित्यकार का मनोविज्ञान

हर साहित्यकार यह चाहता है की उसकी रचनाये लोकप्रिय हो और लोगो द्वारा उसको सराहना मिले इसी प्रेरणा से प्रेरित हो वह सामाजिक मनोभावों को पढने का कार्य करता है|

निष्कर्ष

मनोविज्ञान के सिद्धान्तसार्वभौमिक होते हैं, फिर भी संसकृति, काल और देश से अछूते नहीं रह सकते।मनोविज्ञान की कार्य प्रणाली वैज्ञानिक होती है पर व्यवहार परवातावरण का प्रभाव पड़ता है, इसलिए मनोविज्ञान के सिद्धान्त लचीले होतेहैं। साहित्यकार कोई सिद्धान्त नहीं बनाता पर रचना कीसमीक्षा कर सकता है। व्याकरण और भाषा विज्ञान का ज्ञान लेखन को परिष्कृतकरता है उसी तरहमनोविज्ञान के मूल सिद्धान्तों का अध्ययन करने के बाद ही पर्याप्तशिक्षण लेकर ही कोईमनोवैज्ञानिक परामर्ष देने के योग्य बनता है। साहित्यकार के लियें भले हीव्याकरण का ज्ञान अनिवार्य न हो पर मनोवज्ञानिक के लिये मनोविज्ञान कीशिक्षा औरप्रशिक्षण अनिवार्य होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. विमलेश कांति वर्मा, फीजी में हिंदी स्वरूप और विकास पृ. 1-2, 2000
2. साहित्य अमृत, सितंबर 2010, पृ. 39
3. पूर्वोक्त, पृ. 38
4. पूर्वोक्त, पृ. 40
5. विमलेश कांति वर्मा, फीजी में हिंदी स्वरूप और विकास पृ. 1-2, 2000
6. राकेश शर्मा निशीथ, विदेशों में हिंदी का बढ़ता प्रभाव, अक्टूबर 2006, सृजनगाथा
7. कृष्ण कुमार यादव, भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी, साहित्य कुंज 17, जनवरी 2009
8. नई शिक्षा नीति, 2020
9. "*नई शिक्षा नीति". नवभारत टाइम्स. अभिगमन तिथि* 31 *जुलाई* 2020.
10. "*नई शिक्षा नीतिपढ़ाई :, परीक्षा, रिपोर्ट कार्ड सब में होंगे ये बड़े बदलाव". आज तक. अभिगमन तिथि* 30 *जुलाई* 2020.
11. "*नई शिक्षा नीति* 2020 :*स्कूल एजुकेशन, बोर्ड एग्जाम, ग्रेजुएशन डिग्री में हुए बड़े बदलाव, जानें* 20 *खास बातें". हिन्दुस्तान लाइव. अभिगमन तिथि* 30 *जुलाई* 2020.[*मृत कड़ियाँ*]
12. *सिंह, प्रोफेसर दिनेश* 29 *जुलाई* 2020). "*स्कूली और उच्च शिक्षा की बेड़ियां खोलेगी नई शिक्षा नीति". द क्विंट. अभिगमन तिथि* 30 *जुलाई* 2020.
13. "New Education Policy: *अब केमिस्ट्री के साथ म्यूजिक, फिजिक्स के साथ फैशन डिजाइनिंग पढ़ सकेंगे छात्र". आज तक. अभिगमन तिथि* 30 *जुलाई* 2020.
14. "*नई शिक्षा नीति से कितनी बदलेगी शिक्षा व्यवस्था? जानिएक्-या कहते हैं जानकार". आज तक. अभिगमन तिथि* 31 *जुलाई* 2020.
15. "*नई शिक्षा नीति का समर्थन कर शशि थरूर बोलेपरे से सच्चाई लक्ष्य कई -, बजट पर चिंता". आज तक. अभिगमन तिथि* 31 *जुलाई* 2020.
16. *सिंह, सरोज*)30 *जुलाई* 2020). "*नई शिक्षा नीति* 2020: *सिर्फ़ आरएसएस का एजेंडा या आम लोगों की बात भी". बीबीसी हिन्दी. अभिगमन तिथि* 31 *जुलाई* 2020.
17. NEP 2020: Student, Teacher Bodies Call The New Education Policy 'Anti-democratic'

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-B

ISSN : 2278-9308 December, 2023

हिंदी की साहित्यिक रचनाओं की सामाजिक उपादेयता

डॉ. महेंद्र कुमार चौरसिया

एसोसिएट प्रोफेसर मानविकी एवं समाज विज्ञान संकाय आई. ई. सी. विश्वविद्यालय
ग्राम-कालू झंडा पोस्ट-मन्धाला, बद्दी जिला- सोलन, हिमाचल प्रदेश पिन-174103

डॉ. राजेश

एसोसिएट प्रोफेसर मानविकी एवं समाज विज्ञान संकाय आई. ई. सी. विश्वविद्यालय
ग्राम-कालू झंडा पोस्ट-मन्धाला, बद्दी जिला- सोलन, हिमाचल प्रदेश पिन-174103

सारांशिका :

साहित्य सदैव समाज की चेतना में सांस लेता है। समाज वह परिधान है जो जनता के जीवन के सुख-दुख, हर्ष-विषाद, आकर्षक-विकर्षण के ताने-बाने से निर्मित होता है। उसमें विशाल मानव-जाति की आत्मा का स्पन्दन हम आसानी से सुन सकते है। साहित्य सामाजिक जीवन की व्याख्या करता है ।साहित्य में निर्जीव में भी जीवन देने की शक्ति होती है। साहित्य मानव, समाज एवं उसके जीवन को लेकर ही जीवित है,इसीलिए साहित्य पूर्णतः मानव केन्द्रित है। साहित्य मानव की अनुभूतियों, भावनाओं और कलाओं का साकार रूप प्रदान करता है। मानव सभ्यता के विकास के साथ ही समाज का विकास हुआ और मनुष्य एक सामाजिक प्राणी बन गया और तभी से सामाजिक समस्याओं, विचारों तथा भावनाओं का विकास हुआ। इन सभी अनुभूतियों से मनुष्य स्वयं प्रभावित होता है। इसी प्रभाव के व्यक्त रूप में साहित्य का प्रजनन होता रहता है। इसी लिए अनेक विद्वानों ने 'साहित्य को समाज का दर्पण' भीकहा है। साहित्य शब्द का शाब्दिक अर्थ है-जो हित सहित हो। अर्थात जिसमे समाज का हित जुड़ा हुआ हो । भाषओं के अलंकारिक माध्यम से ही साहित्य के सामाजिक हितकारी रूप प्रकट होते है।

शब्द कुंजी :हिंदी, साहित्य, सामाजिक, उपादेयता ।

साहित्य की उत्पत्ति में समाज अन्तःसम्बन्ध :

साहित्य सदैव समाज की चेतना में सांस लेता है। समाज वह परिधान है जो जनता के जीवन के सुख-दुख, हर्ष-विषाद, आकर्षक-विकर्षण के ताने-बाने से निर्मित होता है। उसमें विशाल मानव-जाति की आत्मा का स्पन्दन हम आसानी से सुन सकते है। साहित्य सामाजिक जीवन की व्याख्या करता है ।साहित्य में निर्जीव में भी जीवन देने की शक्ति होती है। साहित्य मानव, समाज एवं उसके जीवन को लेकर ही जीवित है,इसीलिए साहित्य पूर्णतः मानव केन्द्रित है। भाषा मनुष्य की सामाजिकता को आधार प्रदान करती है। भाषा सम्प्रेषण के द्वारा मानव-समाज में एक-दूसरे के सुख-दुख में भाग लेने का सहकारिता भाव उत्पन्न होता है। साहित्य मानव के पारस्परिक सामाजिक सम्बन्धों को और भी अधिक स्पष्ट करती है। भाषा साहित्य में सम्पूर्ण मानव-जाति का विशेष हित सम्मिलित रहता है। एक उत्कृष्ट साहित्य सामाजिक रूप से साहित्यकार के भावों को समाज में प्रचारित एवं प्रसारित करता है जिससे वैक्तिक एवं सामाजिक जीवन स्वयं निखर उठता हैक्योंकि साहित्यकार सामाजिक प्राणी होता है जिसमें समाज के प्रति संवेदनाये विद्यमान होती है। साहित्यकार समाज के बीच रह कर सामजिक तानो बानो को झेलता है। तब उसको किसी साहित्यिक रचना करने की अभिप्रेरणा प्राप्त होती है। मुन्शिप्रेम्चंद, महादेवी वर्मा, तुलसीदास, कबीरदास, रहीमदास जैसे साहित्यकार इसके उद्धरण हैं ।

सामाजिक सृजन में उपयोगी हिंदी साहित्य :

साहित्य मानव की अनुभूतियों, भावनाओं और कलाओं का साकार रूप प्रदान करता है। मानव सभ्यता के विकास के साथ ही समाज का विकास हुआ और मनुष्य एक सामाजिक प्राणी बन गया और तभी से सामाजिक समस्याओं, विचारों तथा भावनाओं का विकास हुआ। इन सभी अनुभूतियों से मनुष्य स्वयं प्रभावित होता है। किसी भी सभ्य समाज की उन्नति तभी सम्भव है-जब उस समाज के नागरिकों का हृदय संवेदनशील तथा बुद्धि

तात्कालिक परिवेश के अनुरूप विकसित और परिष्कृत हो। इन दोनों कार्यों में अहम् भूमिका निभाने मे साहित्य सबसे प्रभावशाली साधन है। एक उत्कृष्ट साहित्य पाठकों के हृदय को संवेदनशील बनाता है। पाठको की सामाजिक अनुभूतियों में परिष्कार करता है। एक उत्कृष्ट साहित्य के नियमित अध्यन से हमारा मन परिष्कृत और हृदय उदार हो जाता है। किसी भी साहित्य का आनन्द लेने से हमें सतो गुण के गुणात्मक वृत्तियों में रमने का अभ्यास हो जाता है। एक उत्कृष्ट साहित्य के अध्ययन से मनुष्य की भावनाएँ एक पुष्प की तरह कोमल बनती है। एवं उसके अंतर्मन में मनुष्यता के भाव विकसित होते है। उत्कृष्ट साहित्यों के अध्यन से मनुष्य मे शिष्टता और सभ्यता आती हैऔर उसे दूसरों के साथ व्यवहार करने की कुशलता प्राप्त होती है। मनुष्य में ये गुण आ जाने से वह समाज मे समायोजन प्राप्त कर पाने में समर्थ हो पता है। नागरिकों मे इनी गुणों के विकास से समाज में शान्ति की स्थापना होकर विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। अतः सामाजिक जीवन के सृजन में साहित्य का महत्व निर्विवाद है।

हिंदी साहित्य की सामाजिक उपयोगिता :

हिंदी साहित्य ने सामाजिक सृजन के लिए सदा ही सार्थक प्रयाश किया है। हिंदी साहित्य ने स्वतंत्रता संग्राम में आग फूका और आज भी सामाजिकता की अलख जलाती चली आ रही है। स्वयं राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने हिंदी भाषा को स्वतंत्रता आन्दोलन में सम्पूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में पिरोने का सबसे बड़ा माध्यम बताया । स्वतंत्रता आन्दोलन के समय पूरे भारत में हिंदी भाषा में अनेक साहित्यिक ग्रंथो एवं रचनाओ का निर्माण हुआ जिन्होंने स्वतंत्रता आन्दोलन की आग जन जन तक पहुचाने में अपनी महती भूमिका निभाई। जिससे जन जन तक हिंदी साहित्य का प्रचार प्रसार भारत ही नहीं अपितु विश्व के कोने कोने तक हुआ । अनेक हिंदी जागरण गीत, प्रेरक नारे एवं पराधीनता की बेडियों को तोड़ने के लिए प्रेरित करते भाषण का निर्माण हिंदी साहित्य में जोर शोर से हुआ और इन सभी का सामजिक प्रभाव ऐसा था कि लोगों ने हस्ते हस्ते फ़ासी को भी गले लगा लिया । इससे बड़ा सामाजिक प्रभाव हिंदी साहित्य का शायद ही कभी देखने को पाया जाये।

प्रसिद्द भारतीय साहित्यकार आचार्य मम्मट ने किसी काव्य के छः प्रयोजन बताए हैं–**"काव्यं यशसेऽर्थकरे व्यवहार विदे शिवेतरक्षतये।**
सद्यः परिनिर्वृत्तये कान्तासम्मितयोपदेशयुजे।"

अर्थात– उत्कृष्ट काव्य वो है जिससे समाज को या समाज के नागरिको को यश, अर्थ,व्यवहार-कुशलता, अमंगल से रक्षा, आनन्द और कान्ता के समान मधुर उपदेश देना स्वयं ही प्राप्त हो सके ।

आचार्य मम्मट द्वारा बताये गए ये छः प्रयोजन सभी मानवों के जीवन के भी सर्वमान्य प्रयोजन है। सभी मानवों को जीवन में हमेशा यश की आकांक्षा रहती है। आज के भौतिक यूग में अर्थ भी सभी चाहते हैं। (यहाँ, 'अर्थ' शब्द का अभिप्राय हमें स्वतः स्पष्ट कर लेना चाहिए। प्रसिद्द आचार्य शुक्ल के अनुसार-"अर्थ का स्थूल और संकुचित अर्थ द्रव्य की प्राप्ति से ही नहीं लेना चाहिए, उसका व्यापक अर्थ लोक मंगल एवं जन मानस की सुख-समृद्धि से लेना चाहिए।") सभी मानवों को जीवन के सुचारू संचालन के लिए व्यवहार-कुशलता की अत्यन्त आवश्यकता पड़ती है। किसी व्यक्ति के जीवन में अमंगल से रक्षा हुए बिना उस व्यक्ति का जीवन अभिशाप बन जाता है। साहित्य के मधुर उपदेश के प्रभाव के उदाहरण स्वरूप हम हिंदी साहित्य को प्रस्तुत कर सकते है। किसी व्यक्ति को सत मार्ग पर लेन के लिए जब अनेक नीति-शास्त्र उपदेश और ताड़ना द्वारा हम उसे समझाने में असमर्थ रहते हैं। तो उस समय भी मधुरता और कोमलता से भरी यह हिंदी साहित्य की वाणी उस व्यक्ति को वश में करके उससे जो चाहती है, वो करवा लेती है।

निष्कर्ष :

आज तक विश्व में प्रचलित विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों और सभ्यताओं का प्रधान उद्देश्य और प्रयत्न-मानव-जीवन को अधिक-से-अधिक सुन्दर और आनन्दमय बनाये रखना है। इसी उद्देश के संदर्भ मे विज्ञान ने सदैव से ही प्रयास किया है कि वह मानव को अनावश्यक श्रम के भार से यथाशक्ति मुक्त कर उसे शारीरिक और भौतिक सुख सुविधा प्रदान कर सके। वही दूसरी तरफ राजनीति समाज को आर्थिक एकता के सूत्र में बाँधने तथा उसकी सुरक्षा के लिए प्रयत्नशील है।जबकि दर्शन नित नए आध्यात्मिक सिद्धान्तों की खोज कर उनके प्रचार प्रसार द्वारा मानव को सांसारिक माया-मोह के प्रति अधिक आसक्त न रहने का पाठ पढ़ाने का प्रयत्न करता है। परन्तु इन सभी प्रकार के कार्यो में बिना भाषा या हिंदी साहित्य की सहायता के पूर्ण होना असंभव है क्योंकि मानव मन मस्तिष्क केवल

नीरस बेजान उपदेश ही नहीं सुनना चाहता। समाज के व्यक्तियों के लिए भौतिक सुविधाए भी उतनी ही आवश्यक है जितने कि दार्शनिक सिद्धान्त,परन्तु सामाजिक व्यक्ति इन सबसे ऊपर उस सत्य और सौन्दर्य को प्राप्त करना और उसका यथार्थ उपभोग करना चाहता है। जो उसे जीवन की प्रत्येक विषम परिस्थितियों में अभिप्रेरित कर आगे बढ़ने की सदैव प्रेरणा देता रहता है। कोई भी हिंदी साहित्यकार जब भी इन भौतिक सुविधाओं और दार्शनिक सिद्धान्तों को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है, तब हमारे मन में उनके प्रति अनुराग और सहयोग की भावना उतपन्न होती है। हिंदी साहित्य का सकारात्मक प्रभाव होने पर हमारे मन में ओज, बाहुओं में बल, मुख पर प्रसन्नता, हृदय में उत्साह और प्रेम, बुद्धि में विवेक तथा आत्मा में आनन्द-उल्लास जैसी अविरल चलने वाली भावनाए प्रवाहित होती है। किसी भी हिंदी साहित्यकार या कवि के द्वारा वर्णित सत्य पाठक के जीवन का सत्य है यही पाठक के हृदय और भावनाओं का भी सत्य है, जिसके माध्यम से पाठक एवं साहित्यकार एक-दूसरे से भावनाओ में मिल जाते हैं। जिससे पाठक एवं साहित्यकार सामाजिक समरसता में बंध जाते हैं। यही साहित्य सामाजिक रूप से जब ज्यादा उत्कृष्ट होता है तो समाज के ह्रदय मे यूग यौगंटर तक बस जाता है और पीढ़ी दर पीढ़ी वह साहित्य प्रशंसा का पात्र बनता है क्योंकि उसके द्वारा एक बड़ा सामाजिक परिवेश प्रभावित होता रहता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सामाजिक उन्नयन में साहित्य का महत्व सर्वोपरि और सर्वप्रमुख है।

सन्दर्भ ग्रंथ :

1:विश्वेश्वरैया(अनु॰) 'समाज', पृष्ठ-25

2:विश्वेश्वरैया(अनु॰) 'समाज', पृष्ठ-26

3:राजेंद्रयादव, 'कहानी': स्वरूपऔरसंवेदना, पृष्ठ-43

4:विजयेंद्रस्नातक, 'विचारकेक्षण', पृष्ठ-13

5: मुंशी प्रेमचंद: 'साहित्य का उद्देश्य': पृष्ठ- 24-25

6.मैथिलीशरणगुप्त, 'भारत–भारती', पृष्ठ-10

7: विनोबा साहित्य: 'खण्ड- 12' 'साहित्य और आत्मज्ञान-विज्ञान' पृष्ठ- 3

8: विनोबा साहित्य: 'खण्ड- 12' 'साहित्य और आत्मज्ञान-विज्ञान' पृष्ठ- 4

9: विनोबा साहित्य: 'खण्ड- 12' 'साहित्य और आत्मज्ञान-विज्ञान' पृष्ठ- 23

10: विनोबा साहित्य: 'खण्ड- 12' 'साहित्य और आत्मज्ञान-विज्ञान' पृष्ठ- 75

11: हिन्दी साहित्य: 'युग और धारा': कृष्णनारायण प्रसाद 'मागध' पृष्ठ- 5

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-B

ISSN : 2278-9308 December, 2023

बाल विकास एवं हिंदी कविताएँ

डॉ. राजेश

एसोसिएट प्रोफेसर मानविकी एवं समाज विज्ञान संकाय आई. ई. सी. विश्वविद्यालय ग्राम-कालू झंडा पोस्ट-मन्धाला, बद्दी जिला- सोलन, हिमाचल प्रदेश पिन-174103

सारांश :

भारत एक हिन्दी भाषी राष्ट्र है इसलिए यहाँ शिशुओं के सर्वांगींण विकास को ध्यान में रखते हुए उनकी मातृभाषा हिंदी में अनेक बाल साहित्यों का निर्माण किया गया Iभारत सम्पूर्ण हमारे देश में बाल्यावस्था के बच्चों पर माता पिता का ध्यान शुरू के वर्षो पर बहुत ज्यादा रहता है I किन्तु समय बीतने के साथ ही जब बच्चा बड़ा होने लगता है तो उनका ध्यान बच्चे की तरफ कम होने लगता है तब बच्चा माता पिता की तुलना में अपने साथ के बच्चों और बाल साहित्यों के साथ ही अनेक खेल कूद की सामग्रियों पर लगाने लगता है I ये माना जा सकता है कि सूचनाक्रांति के युग में बच्चों ने बाल साहित्य की तरफ ध्यान कम कर दिया है I फिर भी उनकी रूचि बाल साहित्यों पर अधिक रहती है I बच्चा जब स्कूल के संपर्क में आता है तो विद्यालयी परिवेश के पहले कदम पर उसे प्ले ग्रुप में अनेक विषय वस्तुओं का ज्ञान कविताओं के माध्यम से ही कराया जाता है और बच्चों का ऐसे दृश्य, श्रव्य बाल साहित्यिक कविताओं से ज्ञानोपार्जन होता रहता है I इन साहित्यों में रोचकता के कारण हिंदी कविताओं का विशेष स्थान है और इनका बाल विकास पर भी सीधा प्रभाव पड़ता है I जो इनके भविष्य निर्माण की नीव के रूप में देखे जाते है I इसलिए ऐसे साहित्यों का निर्माण सृजनात्मक, सकारात्मक, मूल्यपरक, सामाजिक, नैतिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रख कर किया जाना चाहिए I जिससे सभी का भविष्य सुरक्षित हो सके और उज्ज्वल भविष्य की कामना की जा सके I

शब्द कुंजी : बाल, विकास, हिंदी, भाषा, मनोविज्ञान I

भारत में हिंदी कविताओं का इतिहासएवं स्वरुप :

भारतीय समाज में बाल कवितओं के इतिहास का विकास पंचतंत्र जैसे बाल साहित्य के द्वारा माना जाता है I पंडित विष्णु शर्मा के संस्कृत में रचित बाल साहित्य पञ्चतंत्र की रचना के लोकप्रिय होने के बाद से ही अनेक कवियों ने बाल साहित्यों एवं बाल कविताओं का निर्माण किया इन बाल साहित्यों एवं कविताओं का समय समय पर भिन्न भिन्न वैयक्तिक प्रभाव देखने को मिला I जो इनके भविष्यगत महत्व को परिलक्षित करता है I उत्कृष्ट बाल साहित्य का सृजन देश के गौरवमयी भविष्य के सृजन का मार्ग प्रशस्त कर सकता है I

बाल कविताओं के महत्व को बताते हुए **कवयित्री महादेवी वर्मा** ने अपने शब्दों मे कहा है कि "मैं समझती हूँ कि उत्कृष्ट साहित्य की जो परिभाषा है, बाल साहित्य की परिभाषा उससे भिन्न नहीं होती क्योंकि यह मनुष्य की पूरी पीढ़ी बनाने का कार्य वह करती है। इसे प्रायः बालकों की रूचि समझ के अनुकूल लिखा जाना चाहिए I जिससे आने वाली पीढियों में उत्साह तथा जिज्ञासा बनी रहे। तभी वह बालकों के मन और बुद्धि के विकास में भी सहायक होगा।"[1]

बाल साहित्य की कविताएँ और साहित्य पंचतंत्र, हितोपदेश, कथा-सरित्सागर और सिंहासन बतीसी जैसी रचनाओं से बालकों के भविष्य की व्यक्तित्व के विकास की रूपरेखा बनती है और बालक आगे चल कर समाज, राष्ट्र एवं स्वयं के लिए कैसा व्यवहार करेगा इसका निर्धारण होता है I

बाल कविताओंके मनोवैज्ञानिक पहलू :

बाल कविताओं का सृजन बाल विकास की दिशा में मनोवैज्ञानिक रूप से महत्वपूर्ण है I बाल कविताएँ हमेशा बालकों की रूचि और समझ के अनुकूल लिखी जानी चाहिए I जिससे बालकों का कविता की विषयवस्तु एवं उद्देश्य के प्रति उत्साह तथा जिज्ञासा बनी रहे । तभी वह कविता बालकों के मन, आत्मा, व्यक्तित्व और बुद्धि के विकास में भी सहायक सिद्ध होगा। बाल कविताओं का सृजन बिना किसी मनोवैज्ञानिक सोच के संभव नहीं है I इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिंदी बाल कविताएँ सामाजिक सोच का विकास करती है इनके द्वारा बालक में समाज के प्रति सृजनात्मक विकास होता है I

बालक में इक्षा शक्ति एवं समझ का विकास :

मनुष्य का आरंभिक जीवन उत्सुकता एवं जिज्ञासा से परिपूर्ण होता है I इस अवस्था में बालक अपने आसपास उपस्थित प्रत्येक वस्तु, परिस्थिति एवं घटना के विषय में गहनता से जानने के लिए अभिप्रेरित होता है। प्राचीन काल से ही इस अवस्था को बालकों के सीखने के लिए महत्वपूर्ण माना गया है I अर्थात बालक के जन्म के समय वह एक कोरे कागज की तरह होता है I जैसे जैसे वह विकास करता है वैसे वैसे उसमें अनेक प्रकार की जिज्ञासाएँ उत्पन्न होती है और वह उन जिज्ञासाओं को पूर्ण करने के लिए समाज एवं प्रकृति का सहारा लेता है I इस कारण उसमें उनके सहचर्य से धीरे धीरे परिपक्वता आती है I बालकों की इन्हीं जिज्ञासाओं की पूर्ति में हिंदी बाल कवितताएँ सहायता करती है I क्योंकि अक्सर बच्चा माता पिता के सानिध्य से बाहर निकल कर जब कभी भी आगे बढ़ने का प्रयास करता है तो उसका सानिध्य पहले प्ले स्कूल से होता है I जिसमें बच्चों को पहले पहल उनकी मातृभाषा में रोचक ढंग से कविताओं के माध्यम से विषय वस्तुओं को समझाने का प्रयास किया जाता है I जिनमें हिंदी कविताओं की प्रमुखता होती है I इस प्रकार पहले पहल जब बच्चा प्ले स्कूल के संपर्क में आता है तो उसको हिंदी कविताओं से सीखने को अधिक मिलता है और उससे उसकी जिज्ञासाओं की पूर्ति होती है क्योंकि सरलता, सुगमता, रोचकता एवं सुग्राहयता के साथ मातृभाषा का सानिध्य मिलने के कारण हिंदी कविताएँ बाल्यावस्था के बच्चों के लिए अधिक उपयोगी साबित होती है I

बालकों केमानसिक शक्ति के विकास में सहायक :

बाल कविताएँ बालक की मानसिक शक्ति के विकास के लिए एक प्रभावशाली संवाहक के रूप में कार्य करती हैI बालक में असीम संभावनाओं के रूप में उसमें समाहित मानसिक शक्ति के विकास के लिए बाल कविताओं की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है I बाल्यावस्था में निर्मितमानसिक शक्ति के द्वारा मूल्यों का विकास होता है इन्हीं मूल्यों के विकास के कारण आदतों का विकास होता है I आदत से व्यवहार परिलक्षित होते हैं I व्यवहार से व्यक्तित्व परिलक्षित होता है I फ्रायड ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि किसी भी व्यक्ति में मानसिक उर्जा का निर्माण होना बाल्यावस्था से ही प्रारंभ हो जाता है I उस मानसिक उर्जा को सकारात्मक दिशा की ओर अभिप्रेरित करने में बाल कविताओं एवं बाल साहित्यों की विशेष भूमिका होती है I

आत्मभिव्यक्ति के प्रदर्शन में सहायक

बाल मन के लिए कविता एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा हिंदी कवितायें उनके अंतर्मन में चल रही अंतर्क्रिया को प्रदर्शित करती हैI यही अंतःक्रियाएँ आत्माभिव्यक्ति बनके बालक के व्यवहार में परिलक्षित होती है I बालकों के मन एवं आत्मा में समाहित तत्वों को अंतर्मन से बाहर निकालने के लिए हिंदी कविताओं का महत्व ज्यादा होता है I हिंदी कविताओं के माध्यम से हम किसी भी बालक की आत्माभिव्यक्तियों को जान सकते हैं I बालक अक्सर अपनी पसंद नापसंद के अनुसार हिंदी कविताओं का चयन करके उनको दुहराता रहता है और उनसे सम्बंधित सामाजिक मूल्यों को स्व में समाहित करता है I जो उनके आत्माभिव्यक्ति का साधन बनती है I

मानवीय मूल प्रवृत्तियों के विकास में सहायक

किसी भी व्यक्ति के व्यवहारों में दो प्रकार की मूल प्रवृत्तियां परिलक्षित होती हैं I पहली जन्म मूल प्रवृति, दूसरी मृत्यु मूल प्रवृति I जन्म मूल प्रवृति का सम्बन्ध सृजन से होता है जबकि मृत्यु मूल प्रवृति का सम्बन्ध विध्वंस से होता है I इन दोनों प्रकार की मूल प्रवृत्तियों का नियंत्रण साहित्य के द्वारा संभव है I जिनमें कविताओं की बहुत बड़ी भूमिका है Iबालकों पर कविताओं का सहज एवं सरल रूप बहुत प्रभावशाली होता है I बालकों के समक्ष अगर सकारात्मक कविताओं का पठन किया जाये तो उनमें जन्म मूल प्रवृत्तियों का प्रभावोत्पादन संभव हो सकता है I जबकि इनके विपरीत विध्वंसात्मक कविताएँ मृत्यु मूल प्रवृत्तियों का विकास करने में सहयोग करती है I कविताओं के भिन्न भिन्न प्रकार बालकों में भिन्न भिन्न प्रकार की मूलप्रवृत्तियों का विकास करती है I इसलिए भी कविताओं का बाल विकास के स्फुरण में बहुत महत्व है I

बालकों के नैतिक मूल्यों के विकास में सहायक

नैतिकता जीवन का आधार है I यहाँ नैतिकता से तात्पर्य जीवन के सभी क्षेत्रो में ईमानदारी से भूमिका निर्वहन करने से है I आज के आधुनिक प्रगतिवादी, प्रतिस्पर्धात्मक युग में सूचना क्रांति का सहयोग होने के बाद भी आज सिर्फ परिवार ही एकाकी नहीं रहे व्यक्ति भी आपस में एकाकी होने लगे है I ऐसे मेंकिसी भी बालक में उचित समाजोपयोगी नैतिक विकास हो पाना संभव नहीं हो पाता I एकाकी जीवन में कविताओं से अभिप्रेरणा पा कर नैतिकता को बालक अच्छे से समझ सकता है I बालकों मेंहिंदी कविताएँ नैतिक विकास में सहायक है I नैतिक

विकास के लिए हिंदी कविताओं को मुख्य साधन के रूप में प्रयोग किया जा सकता है I नैतिक विकास की धारणा का विकास बच्चों में हिंदी कविताओं के माध्यम से आसानी से किया जा सकता है I

बालकों के सामाजिकता के विकास में सहायक

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है I समाज सामाजिक मूल्यों पर आधारित एक संगठित सुव्यवस्थित दो या दो से अधिक व्यक्तियों का एक समूह है I जिसमें आपसी सामाजिक अंतःक्रिया होती रहती है I जिसे हम सामाजिकता के नाम से जानते है I किसी भी समाज की सदस्यता में बने रहने के लिए उसके सामाजिक मूल्यों के प्रति बालक को अनुपालन करना होता है I इन्हीं सामाजिक मूल्यों के प्रति स्वीकृतिपरक व्यवहार को हम सामाजिकता के नाम से जानते हैं I सामाजिक मूल्य का विकास किसी भी बालक के लिए बहुत अधिक आवश्यक हैI इन सामाजिक मूल्यों का विकास हिंदी कविताओं के माध्यम से आसानी से किया जा सकता है I

निष्कर्ष -हमारे समाज के आज के बालक कल के नागरिक हैं और इनके प्रति हमारी जिम्मेदारी बनती है कि हमें इनमें उचित गुणात्मक विकास के लिए अच्छे साहित्यों का निर्माण करें I हम अपने समाज के बालकों को जिस प्रकार का साहित्य पढने के लिए देंगे उसी के अनुकूल कल के समाज का निर्माण होगा।

गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर लिखते हैं कि-"ठीक से देखने पर बच्चे जैसा पुराना और कुछ नहीं है। देश, काल, शिक्षा, प्रथा के अनुसार वयस्क मनुष्यों में कितने नए परिवर्तन हुए हैं, लेकिन बच्चा हजारों साल पहले जैसा था आज भी वैसा ही है। यही अपरिवर्तनीय, पुरातन, बारम्बार आदमी के घर में बच्चे का रूप धरकर जन्म लेता है, लेकिन तो भी सबसे पहले दिन वह जैसा नया था, सुकुमार, भोला, मीठा था, आज भी वैसा ही है। इसकी वजह है कि शिशु प्रकृति की सृष्टि है, जबकि वयस्क आदमी बहुत अंशों में आदमी के अपने हाथों की रचना होता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर की मान्यता है कि बालकों के कोमल, निर्मल और साफ मस्तिष्क को वैसे ही सहज तथा स्वाभाविक बाल साहित्य की आवश्यकता होती है।"

देश का चाहे कोई तंत्र हो उसकी सबसे बड़ी समस्या आज यही है कि उन सबको राजनैतिक और सामाजिक संस्थाओं का संचालन करने वाले साधारण जन-समुदाय को सच्चाई, ईमानदारी, सहनशीलता, विद्वता, निष्ठा, कर्तव्य परायण. देशभक्ति, विश्व बंधुत्व और सकारात्मक मूल्यों की भावना जैसे महान गुणों से संपन्न कैसे किया जाए I इस महत्वपूर्ण कार्य में हिंदी की बाल कविताएँ अपना बहुत बड़ा योगदान दे सकती है। व्यस्क जिनकी आधी से ज्यादा जिन्दाजी व्यतीत हो चुकी है उनका तो बदलना संभव नहीं है लेकिन बालकों में मूल्यों का परिष्करण बाल साहित्य कर सकता है। साहित्य जन जन के जीवन में महान मूल्यों का सामान्यीकरण करता है। वीर रस के गीतों, जातक कथाओं, सौन्दर्य बोधक गीतों, परिकथाओं, प्रेरक कथाओं, मूल्य जनित हिंदी कविताओं और लोक कथाओं के बीच पलने वाले बच्चों में समाजोपयोगी व्यवहार के साथ ही सच्चाई, ईमानदारी, निर्भीकता, उत्कृष्ट नागरिकता और न्यायप्रियता के भाव सहज रूप से ही भर जाते हैं। हिंदी कविताओं में निहित पशु प्रेम बालक की संवेदना को इतना परिष्कृत कर देते हैं कि उसमें पशु के साथ ही मनुष्यों के प्रति भी दया करुणा न्याय से सम्बंधित भावों का प्रवाह होने लगता है ।बाल कविताओं के लेखन में साहित्यकार के ऊपर एक बड़ी जिम्मेदारी होती है कि उसे साहित्यिक ज्ञान के साथ ही बाल मनोविज्ञान को भी ध्यान में रखना होता है I ऐसा इसलिए किया जाता है क्योंकि बाल साहित्य का सृजन बच्चों के लिए किया जाता है। इसमें जीवन के शाश्वत मूल्यों के साथ-साथ मनोरंजन का समावेश आवश्यक है।

सन्दर्भ ग्रंथ :

1: डॉ0 कुमारी उर्वर्शी :'बालकों के विकास में बाल साहित्य का योगदान', अपनी माटी, ३१ जुलाई 2021, https://www.apnimaati.com/2021/07/blog-post_86.html

:2हिन्दवी : बाल साहित्य, संक्षिप्त इन्टरनेट पता :
http://surl.li/gddwg

3. हरिकृष्ण देवसरे:हिन्दी बाल साहित्य एक अध्ययन, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, सन् 1969, पृष्ठ-07.

4. सुरेन्द्र विक्रम: हिन्दी बाल पत्रकारिता : उद्भव और विकास साहित्य वाणी, इलाहाबाद, सन् 1991, लेखक द्वारा लिखे गए शंकर सुल्तानपुरी के साक्षात्कार से, पृ.-14

5. सुरेन्द्र विक्रम: हिन्दी बाल पत्रकारिता : उद्भव और विकास-साहित्य वाणी, इलाहाबाद, 1991, पृ. 13-14.

6. शिरोमणि सिंह: बाल कविता में सामाजिक सांस्कृतिक चेतना , आशा प्रकाशन, कानपुर, 2013, पृ. सं. 62.

7. प्रेम भार्गव:कैसे बने बालक संस्कारी और स्वस्थ-राधाकृष्ण पेपरबैक्स, नई दिल्ली. 2015 पृ.129.

8. मस्तराम कपूर:हिन्दी बाल साहित्य का विवेचनात्मक अध्ययन-अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि., नई दिल्ली, 2015.पृ. 31

भारतीय समाज एवं साहित्य में किन्नरों की सामाजिक स्थिति

रबिता कुमारी

शोध छात्रा मानविकी एवं समाज विज्ञान संकाय आई. ई. सी. विश्वविद्यालय

ग्राम-कालू झंडा पोस्ट-मन्धाला, बद्दी जिला- सोलन, हिमाचल प्रदेश पिन-174103

डॉ. राजेश

एसोसिएट प्रोफेसर मानविकी एवं समाज विज्ञान संकाय आई. ई. सी. विश्वविद्यालय

ग्राम-कालू झंडा पोस्ट-मन्धाला, - बद्दी जिला- सोलन, हिमाचल प्रदेश पिन-174103

सारांश :

हिन्दुओं की पौराणिक कथाओं की संकल्पना में जहाँ कहीं भी स्वर्ग नरक की बात आती है वहां स्वर्ग में स्थित मनोरंजन गृह के गायकों को किन्नर कहा जाता था I प्राचीन ग्रंथों में किन्नर या किं पुरुष देवताओं की एक योनी भी मानी जाती है I ऐसा माना जाता था कि धरती पर इन का निवास हिमालय पर्वत श्रृंखला हिमवत या हेमकूट रहे जो एक मनुष्य जाति का भी नाम है I पुराणों एवं कादंबरी में वर्णित कथा के अनुसार इनकी उत्पत्ति के दो प्रवाद है पहला यह कि ये ब्रह्मा की छाया या उनके अंगूठे से उत्पन्न हुए हैं और दूसरा यह माना जाता है कि अरिष्ठा एवं कश्यप इन के आदि जनक हैं I प्रत्येक किन्नर समाज का एक मुखिया नियुक्त होता है I जिसे नायक के नाम से जाना जाता है जिस के मार्ग दर्शन में गुरु न्युक्त किया जाता है I यही गुरु अपने शिष्यों को बधाई गान, नृत्य एवं किन्नर समाज के वास्तविक नियम कानून सिखाता है I गुरु के स्थान को किन्नर समाज गुरुधाम के नाम से जानता है **I** इनका समाज भी कई वर्गों में विभक्त है जिनमें चार प्रमुख हैं– बुचरा, नीलिमा, मनसा, एवं हंसा लेकिन वास्तविक हिजड़ा का रूप 'बुचरा' ही माने जाते है **I** कुछ नकली हिजड़े जिन्हें आजकल 'अबुला' के नाम से भी जाना जाता है I ये धन के लोभ में हिजड़ा बन जाते हैं I जबकि ये वास्तव में पुरुष होते है I भारत में कुल 450 से भी ज्यादा किन्नर गुरुधाम है हर धाम के किन्नर अपनी कमाई का एक हिस्सा धाम के पास जमा करते हैं I समाज का यह अभिन्न वर्ग आज भी मूलाधिकारों से वंचित है I यह सबके लिए शुभकामनाये तो देते हैं लेकिन इनकी जिंदगी में शुभ क्यों नहीं है I क्यों नहीं इनकी छोटी सी आबादी को हम सामाजिक सहयोग देकर उनके सर्वांगींण विकास को गति दे पाए I भारत देश में 2011 के जनगणना के आकडे के अनुसार कुल 19 लाख किन्नर जनसँख्या ही है I जो भारत की जनसँख्या का मात्र 0.15 प्रतिशत ही है I हम इनकी इन्ही समस्याओं को दृष्टिगत करते हुए इस शोध पत्र को प्रस्तुत कर रहे हैं I

शब्द कुंजी : भारतीय, किन्नर, समाज, सामाजिक स्थिति I

किन्नर समाज का सामान्य परिचय:

हमारे समाज में एक तीसरा भी वर्ग है इसे हम क्यों भूल जाते है I जब हमारे प्राचीन ग्रंथो ने इनके अस्तित्व को धरती पर स्वीकार किया है तो हमें क्यों इनके अस्तित्व को स्वीकार करने से परहेज रहता है I इसे हम थर्ड जेंडर, हिजड़ा, पवैया, छक्का, मेहला, नपुंसकलिंग, इत्यादि नाम से जानते है I किन्नर शब्द का प्रयोग ऐसे मानव समुदाय के लिए किया जाता है जो लैंगिक रूप से न नर है न मादा I किन्नर को अंग्रेजी में युनक (EUNUCH) कहा जाता है I यह शब्द ग्रीक भासा के यून्खोस (EUNOUKHO) से बना है I जिसका मतलब होता है रखवाली करने वाले I युगों

युगों से किन्नर समाज सामाजिक वंचन का दंश झेल रहा है फिर भी अभी तक इनके विकास की तरफ देश के प्रबुद्ध वर्ग का ध्यान नहीं है I

लार्ड मैकाले की भारतीय दण्ड संहिता (IPC) एवं किन्नर समाज की दुर्दशा :

जिसे आज हम **लॉर्ड मैकाले** के नाम से जानते हैं वास्तविकता में उसका पूरा नाम **'थॉमस बैबिंगटन मैकाले'** था I यह एक प्रसिद्द अंग्रेजी साहित्यकार, निबंधकार, इतिहासकार के साथ ही कुशल राजनीतिज्ञ भी था I लार्ड मैकाले का जन्म रोथले टैंपिल (लैस्टर शिर) नामक स्थान पर 25 अक्टूबर, 1800 ई. को हुआ I इनका देहांत दिनाक 28 दिसम्बर, 1859 ई. में हो गया था। इन्होने एक कुशल निबन्धकार एवं सफल समीक्षक के रूप मे तात्कालिक ब्रिटिश हुकूमत के इतिहास पर खूब लिखा था। यह जब सन् 1834 ई. में भारत आया तो इसे भारत देश की सुप्रीम काउंसिल में लॉ मेंबर तथा लॉ कमिशन का प्रधान बनाया गया और यह 1838 ई. तक इस पद पर आसीन रहा। आज हम जिसे भारतीय संहिता (IPC) के नाम से जानते है I भारतीय संहिता (IPC) सभी धाराएँ इसके द्वारा ही तैयार की गईं I इसी IPC की एक विशेष धारा 377 के कारण किन्नर समाज को अपराधिक घोषित होने का सदियों तक दंश झेलना पड़ा I

किन्नर शब्द का द्वै-भाषिक अर्थ :

किन्नर हिंदी के दो शब्दों किं + नर से मिलकर बना है वर्तमान में इसका अर्थ उस हिमाचल की किन्नर जनजाति से नहीं है जिनको शुद्ध एवं ईश्वर की योनि का माना जाता रहा है I यहाँ किन्नर शब्द का तात्पर्य उस शब्द से है जो पूर्ण रूप में न पुरुष है और न स्त्री I सामान्य अर्थों में हम समाज में इन्हें हिजड़ा नाम से भी जानते हैं। हिजड़ा नाम आते ही एक विशेष भाव-भंगिमा, रहन सहन वाले इंसानों की छवि आँखों के सामने आ जाती है। आज के समाज में हिजड़ा शब्द को परिमार्जित कर उन्हें सम्मान देने के लिए किन्नर कहा जाता है I किन्तु किन्नर मात्र कह देने से इनके ह्रदय में सामाजिक संवेदनाओं का दिया गया दर्द कभी शांत नहीं हो सकता I अनेक साहित्यकारों ने समाज के इस वर्ग के बारे में खूब लिखा जिनमें नीरजा माधव, महेंद्र भीष्म, प्रदीप सौरभ, चित्रा मुदगल, अनुसूया त्यागी, निर्मल भुराडिया आदि के साहित्य ने तो समाज को झकझोर दिया I

प्राचीन भारतीय सामाजिक परिवेश एवं किन्नर समाज :

शतपथ ब्राहमण में अश्वमुखी मानव शरीर वाले किन्नरों का उल्लेख है I वाल्मीकि रामायण में किन्नरों की उत्पत्ति की कथा राजा इल के माध्यम से विस्तृत रूप से दी गई है I तुलसी दास द्वारा रचित राम चरित मानस में तो किन्नर समाज का वन्दन खुद तुलसी दास जी अपनी लेखनी के प्रारंभ मे ही करते हैं I यही नहीं सम्पूर्ण रामचरित मानस में किन्नर शब्द का प्रयोग कुल 26 बार किया गया I जो किन्नर समाज की प्राचीन भारत में उपादेयता को दर्शाता है I महाभारत के दिग्विजय पर्व में धनुर्धारी अर्जुन का किन्नर प्रदेश में जाने का वर्णन मिलता है I भीम ने भी शांति पर्व में किन्नर देश का वर्णन करते हुए कहा कि किन्नर सदाचारी, प्रकृतिप्रेमी, कलाप्रेमी होते थे I किन्नरों ने उस देश पर अधिकार क्षत्रियों से वीरतापूर्वक युद्ध करके किया था I जिस कारण इनके पराक्रम का भी परिचय होता है I महाभारत में एक जगह शिखण्डी नामक हिजड़े का भी वर्णन मिलता है I बौद्ध काल में लिखे गए साहित्य में किन्नर जाति की कल्पना मानव मुखी विशाल पक्षी से की गई है I मानसार में तो किन्नर के गरुण मुखी मानव शरीर और पशुपदी रूप का वर्णन मिलता है I संस्कृत के कुछ साहित्य में किन्नर नाम की विशेष वीणा का उल्लेख मिलता है I किन्नर के लिए संस्कृत में किंपुरुष शब्द भी प्रयोग में लाया जाता है I

मतस्य पुराण में भी कहा गया है कि किन्नर हिमवान पर्वत के निवासी हैं 'कल्चरल हिस्ट्री फ्रॉम द वायु पुराण' 1946 पृ. 81 में बताया गया है कि पुरुष किन्नर की कुछ आदिम जातियां थी जो हेमकूट पर्वत श्रृंखला पर

निवास करती थी I अजंता के पौराणिक भित्त चित्रों में किन्नरों के चित्रों का पाया जाना उनकी सामाजिक सहभागिता का परिचायक है I मुग़ल काल में मुग़ल शासक अपने हरम की निगरानी एवं विशेष सुरक्षा के लिए ख्वाजासरा (हिजड़ो) को नियुक्त करते थे I

स्वतंत्रता संग्राम एवं किन्नर समाज :

सन 1825 में किन्नर भूरा के बलिदान के बाद जब किन्नर समाज स्वाधीनता के लिए जागृत होने लगा तो ब्रिटिश हुकूमत ने किन्नर समाज के लोगों को 1871 के विवादास्पद कानून के तहत आपराधिक समुदाय मान लिया I ब्रिटिश गवेर्न्मेंट के इस विवादाश्पद कानून के चलते पुलिस ने इस समुदाय पर निगरानी बढ़ा दी I क्योकी ब्रिटिश सरकार अन्दर ही अंदर किन्नर समुदाय को स्वाधीनता सेनानियों का मुखबिर मानते थे I इसी का बहाना ले कर पुलिस ने किन्नरों की निजी जानकारी को भी पंजीकृत करना शुरू कर दिया I यही नहीं अंग्रेजी हुकूमत ने अपने सरकारी दस्तावेजों में किन्नरों को अपराधी और सेक्शुअली विकृत शख़्स के तौर पर संबोधित करना शुरू कर दिया I अंग्रेजी हुकूमत के ये सभी कृत्य किन्नर समाज की तरफ से स्वाधीनता संग्राम के लिए आग में घी की तरह कार्य कर रहे थे I जो देश के लिए वफादारी एवं देशभक्ति की मिशाल है I

किन्नर समाज के प्रति लिंगगत भेद पर आधारित नवीन साहित्य :

इन सभी वर्गों की समय समय पर अलग अलग समस्या रही है जिनको साहित्य के माध्यम से उजागर किया गया I शिव प्रसाद सिंह की कहानी बिंदा महराज में किन्नर को पहली बार स्थान मिला I दूसरे मासूम रजा की कहानी 'खलीक अहमद बुआ' सुभाष अखिल की कहानी 'दरमियाना' इत्यादि कहानी पात्रों के द्वारा किन्नरों के दुखों का वर्णन किया गया था I 1990 में अंग्रेजी में एक उपन्यास खुशवंत सिंह द्वारा लिखा गया जिसका नाम था दिल्ली जिसमें भागमती नामक किरदार के साथ किन्नर नाम जोड़ा गया था I फिर भी हम 2002 से पहले किन्नर विमर्श पर सिर्फ दो या तीन कहानियांपा सकते हैं जिनका नजरिया भी किन्नर समाज के लिए ठीक नहीं था या यूँ कहें तो इनको सिर्फ मजाकिया लहजे में लिखा गया था I फिर 2002 में हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श पर पहला उपन्यास आया जिसका नाम था 'यमदीप' जिसके रचयिता नीरजा माधव ने समाज में किन्नर समाज के लिए नयी सोच लाने का अथक प्रयास किया I 2008 में अनुसूया त्यागी का उपन्यास 'मै भी औरत हूँ' में लैंगिक चिकित्सकीय अस्थिरता को दिखाया गया है I 2011 के साहित्य की अनुपम कृति जो किन्नर समाज को प्रदीप सौरभ जी द्वारा समर्पित की गई उस उपन्यास का नाम था 'तीसरी ताली' जिसने किन्नर विमर्श को गति दी I 2014 में निर्मल भुराडिया के उपन्यास 'गुलाम मंडी' ने तो संवेदनाओं को ऐसी गहनतादी की दुनिया के लोग किन्नरों की भयवाह जिंदगी से काँप उठे I 2016 में महेंद्र भीष्म की रचना 'किन्नर कथा' एवं 'मैं पायल' इनके समाज की पूरी व्यथा बताती है I 2016 में चित्रा मुदगल की अनुपम कृति 'पोस्ट बॉक्स नंबर 203 नाला सोपारा' ने तो किन्नर समाज के सन्दर्भ में समाज की जो सहानुभूति प्रदान कराई उसका कोई जोड़ नहीं I डॉ. विमला मल्होत्रा जी का उपन्यास 'किन्नर : मुनिया मौसी' जैसे किरदार के सहारे जिस किन्नर विमर्श के लम्बे दर्द को सामाजिक रूप से प्रस्तुत किया उससे आँखें भर जाती है I आज ऐसे साहित्यों की भरमार हो गई है जो अनेक विमर्श को दर्शाने की होड़ में लिखे जा रहे है I लेकिन किन्नर विमर्श समाज का एक ऐसा ज्वलंत लिंगगत भेद का मुद्दा जिसको कोई स्त्री या पुरुष लेखक लिखने से कतराता है I फिर भी उक्त जितने भी लेखको ने किन्नर विमर्श के बारे में लिख कर उनके दर्द को समझने समझाने का प्रयाश किया है I वह लिंगगत भेद पर बहुत सराहनीय रहा I

किन्नरों की सामाजिक स्थिति के सुधार के मनोवैज्ञानिक उपाय :

किन्नर समाज के सुधार के लिए अनेक मनोवैज्ञानिक तरीके उनकी सीमित जनसँख्या को पहचान कर उठाये जा सकते हैं जिससे उनको तत्काल एवं सीधे तरह से लाभ मिल सके I किन्नर बच्चों को जन्म देने वाले परिवारों को किन्नर बच्चे की परवरिश के नाम पर आर्थिक सहायता दे कर बच्चे को सामाजिक संरक्षण दिया जा सकता है I किन्नर बच्चे के परिवार के किसी एक सदस्य को सरकारी नौकरी दिला कर बच्चे की परवरिश एवं उनके भविष्य को सुरक्षित किया जा सकता है I किन्नर समाज के लोगों को कौशल प्रशिक्षण दे कर उनको भीख मांगने से बचाया जा सकता है I बैंकिंग संस्थानों से कम दर पर ऋण मुहैय्या करा कर लघु उद्योग में किन्नर समाज के लोगों को संलग्न किया जा सकता है I बच्चे को एवं उसके परिवार को रेल एवं बस किराये में यथोचित रियायत दे कर बच्चे को परिवार में ही रोका जा सकता है I किन्नर बच्चे एवं उसके परिवार का जीवन पर्यंत चिकित्सा का खर्च यदि सरकारेंवहन करें तो ऐसे वर्ग को परिवार वाले लाभ पाने के कारण अपने साथ रखने मे नहीं हिचकेंगे I ऐसे बच्चे की समस्त शिक्षा अधिभार को यदि सरकारें उठाए तो इनकी जनसंख्या में साक्षरता दर तीव्रता से बढ़ सकती है I आवास की सुविधा ऐसे परिवारों को दी जाये जिनके घर में किन्नर बच्चे का जन्म हुआ हो I अथवा किन्नर समाज के लिए सरकारे अलग कालोनी मुहैय्या कराये I कानूनी भय कम करने के लिए जिला स्तर पर इन्ही के वर्ग से चयनित अलग पुलिस टास्क फ़ोर्स बनाई जाये जिससे इनका कानून के प्रति विश्वास बढ़ सके I और इनके समायोजन की सम्भावनाये भी बढ़ सके I इनके लिए अलग संरक्षण गृह का निर्माण कराया जाये I इन्हें सशक्त बनने के लिए इनकी भागीदारी का प्रतिशत समाज में हर वर्ग में सुनिश्चित की जाये I रोजगार, शिक्षा, आवास, चिकित्सा, कानून, राजनीति, धर्म, समाज, परिवहन जैसे सभी क्षेत्रों में कानून कायदों का निर्माण इनकी विशेष जरूरतों को ध्यान में रख कर किया जाये I किन्नर समाज के प्रति लैंगिक भेदभाव को दूर करने के लिए उनकी सामाजिक सहभागिता को बढ़ावा देना I किन्नर समाज के प्रति सामाजिक, राजनैतिक एवं मनोवैज्ञानिक चिंतन का विकास राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय स्तर पर विकसित करना I

निष्कर्ष :

किन्नर होने का दर्द खुद किन्नर से पूछा जाये तो ही समझा जा सकता है कि एक किन्नर को समाज ने क्या दिया और एक किन्नर समाज को क्या दे रहा है I जितनी समस्याओं का सामना किन्नर समाज झेलते हुए सामाजिक कार्यो में सहयोग करता रहता है ये एक समाज विशेष के लिए मिसाल ही है I वरना इतना दुःख झेल कर तो पत्थर भी कई खंड में टूट जाये I धन्य है ऐसे किन्नर समाज जिसका धैर्य जनमानस में देखने को मिलता है I आम स्त्री पुरुष तो तनिक तिरस्कार झेल नहीं पाते बदले की भावना में अनैतिक रास्तों को अपनाने लगते हैं I लेकिन किन्नर समाज में शायद ही कभी किसी ने समाज के प्रति कोई गलत कदम उठाया हो I ये सभी देख रहे है I सरकारें यदि चाहे तो किन्नर समाज की समस्या का निदान जड़ से हो सकता हैऔर समाज का एक वर्ग आजीवन अँधेरे, मजबूरी, लाचारी, बदहाली के दलदल से बहार निकल सकता है I क्योंकि इनकी जनसँख्या इतनी ज्यादा नहीं कि बड़े बड़े मुफ्त के वायदे एवं कर्जे माफ़ी के सपने दिखाने वाली सरकारें एक छोटी सी जनसँख्या के लिए छोटे छोटे सुधारात्मक कदम न उठा सके Iकिन्नरों की मानवीय एवं सामाजिक भावनाओं का सम्मान होना चाहिए I समाज में जियो और जीने दो का भाव होना चाहिए I

सन्दर्भ ग्रंथ :

1. भीष्म महेंद्र, किन्नर कथा, सामायिक बुक, दरियागंज, नई दिल्ली, 2011, पृ.8
2. नीरजा माधव, यम दीप, सुनील साहित्य संगम, दरियागंज, नई दिल्ली, 2009, पृ.8
3. संपा. मिलन विश्नोई, किन्नर विमर्श : साहित्य और समाज, विद्या प्रकाशन, 2018
4. महेंद्र भीष्म, मैं पायल, अमन प्रकाशन, कानपुर, 2016, पृ. सं. 24
5. संपा. डॉ. एम. फीरोज, खान. कबीरन (कहानी), हम भी इन्सान हैं, वाङ्मय बुक्स, अलीगढ़, 2018, पृ. सं. 11
6. नीरजा माधव, यमदीप, सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली, संस्करण 2009
7. प्रदीप सौरभ, तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2011
8. महेंद्र भीष्म, किन्नर कथा, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2016
9. निर्मला भुराड़िया, गुलाम मंडी, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2014
10. चित्रा मुद्गल, पोस्ट बॉक्स 203 नाला सोपारा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016
11. अनुसूया त्यागी, मैं भी औरत हूँ, परमेश्वरी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008
12. ज्योति कुमारी सोनकर : भारतीय समाज में किन्नर समुदाय का सामाजिक एव सांस्कृतिक पक्ष : एक समाज शास्त्रीय विमर्श, JETIR, जून 2019, 6.6, ISSN-2349-5162 पृ.190-200, संक्षिप्त इन्टरनेट पता : https://www.jetir.org/papers/JETIR1907V30.pdf
13. सुधा मिश्रा : भारत में किन्नरों का सामाजिक बहिष्करण : एक समकालीन अध्ययन, समाजविज्ञान संकाय, दयाल बाग शिक्षण संस्थान, आगरा, संक्षिप्त इन्टरनेट पता : http://shodh.inflibnet.ac.in:8080/jspui/bitstream/123456789/4477/1/synopsis.pdf
14. हरिओम : किन्नर समुदाय की सामाजिक आर्थिक व् राजनैतिक समस्याओ का समाज वैज्ञानिक अध्ययन : जनपद मथुरा के विशेष सन्दर्भ में, दयाल बाग शिक्षण संस्थान, आगरा, संक्षिप्त इन्टरनेट पता : http://shodh.inflibnet.ac.in:8080/jspui/bitstream/123456789/9234/1/synopsis.pdf
15. डॉ0 आर0 पी0 वर्मा : साहित्य में किन्नर विमर्श की आवश्यकता, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ साइंटिफिक रिसर्च एंड इनोवेटिव रिसर्च स्टडीज, जनवरी 2019, 7.1, ISSN-2454-1818, पृ.1-6
16. गीतांजलि : प्रतिनिधि हिंदी उपन्यासों में चित्रित किन्नर विमर्श, हिंदी विभाग, कला संकाय, दयाल बाग शिक्षण संस्थान, आगरा, संक्षिप्त इन्टरनेट पता: http://shodh.inflibnet.ac.in:8080/jspui/bitstream/123456789/4577/1/synopsis.pdf
17. हर्षिता द्विवेदी : आधुनिक हिंदी कथा साहित्य में तृतीय लिंगी विमर्श, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ एप्लाइड रिसर्च, IJAR 2022; 8(4): 96-103.

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-B

ISSN : 2278-9308 December, 2023

राष्ट्रीय विकास मेंअवरोधकभ्रष्टाचार

डॉ. राजकुमार यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर मानविकी एवं समाज विज्ञान संकाय आई. ई. सी. विश्वविद्यालय ग्राम-कालू झंडा पोस्ट-मन्धाला, बद्दी जिला- सोलन, हिमाचल प्रदेश पिन-174103

डॉ. राजेश

एसोसिएट प्रोफेसर मानविकी एवं समाज विज्ञान संकाय आई. ई. सी. विश्वविद्यालयग्राम-कालू झंडा पोस्ट-मन्धाला, बद्दी जिला- सोलन, हिमाचल प्रदेश पिन-174103

सारांश :

भ्रष्टाचार के खिलाफ ऐसे अनेक ऐतिहासिक साक्ष्य है जिसमेंभ्रष्टाचार को किसी भी देश की जर्जर आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति के लिए जिम्मेदार माना गया है Iकिसी भी राष्ट्र के विकास एवं उसकी अवनति में उस राष्ट्र के नागरिकों का नैतिक आचरण विशेष स्थान रखता है I इसका सीधा प्रमाण विश्वव्यापी संस्था ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल(टीआई) के 180 देशों पर किये गए 2021 के सर्वेक्षण से ही मिल रहा है I जिसमे अनेक विकसित राष्ट्र इंडेक्स में सबसे ऊचें स्थान पर हैं I जबकि अनेक विकासशील एवं भ्रष्ट राष्ट्र सबसे निचले पायदानों पर है I भ्रष्टाचार की जड़े किसी भी राष्ट्र को खोखला कर देती हैं I

भ्रष्टाचार मानव समाज में सभी युगों में मौजूद रहा है। प्राचीन भारतीय ग्रंथ **'अथर्ववेद'**में समाज के लोगों को भ्रष्टाचार से दूर रहने की बात कही गई है और इसके दुष्परिणामों की भी गंभीरता से चर्चा की गई है ।वहीँ दूसरी तरफ महान प्राचीन अर्थशास्त्री कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में समाज के भ्रष्ट लोगों द्वारा सार्वजानिक एवं सरकारी धन के दुरुपयोग के लिए वैक्तिक रूप से अपनाए गए चालीस भिन्न भिन्न तरीकों का उल्लेख किया गया है। वहीँ मुग़ल काल में दिल्ली के सुल्तान, अलाउद्दीन खिलजी को अपने शासन के समय अपने कर्मचारियों को भू-राजस्व में तत्कालीन व्याप्त भ्रष्टाचार से बचाने के लिए उनके वेतन में वृद्धि करनी पड़ी थी ।भ्रष्टाचार जैसा विकराल संकट हमारे भारत के लिए

शब्द कुंजी :ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल, विश्वगुरु, भारत, वैश्विक, विकासशील राष्ट्र भ्रस्टाचार निवारण कानून I

प्रस्तावना :

आज किसी भी व्यवसाय मे व्यक्ति ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाने के लिए जनहित को भूल कर भ्रष्टाचार का सहारा ले रहा है I भ्रष्टाचार करने वालों को याद रहना चाहिए कि उनका यह आज का भ्रष्ट व्यवहार स्वयं उनके एवं उनकी आने वाली पीढ़ियों के लिए नर्क के द्वार खोल रहा है I मिलावट एवं किसी भी प्रकार के भ्रष्टाचार का सीधा प्रभाव हमारे शारीरिक स्वास्थ्य एवं मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ता है I आज भारतियों में अकारण ही हृदयरोग, श्वास रोग, त्वचा रोग, पीलिया, डेंगू, टी0 बी0, कैंसर एवं एड्स जैसे घातक रोग बढ़ रहें है I इनका सीधा सम्बन्ध भारतियों में अपनी वैदिक संस्कृति को भुला कर भ्रष्ट आचरण के तरफ बढ़ते लागाव से है I अर्थात हम भ्रष्टाचार के गर्त में कूद कर प्रकृति, विश्व, राष्ट्र, समाज, परिवार, एवं स्वयं के वैक्तिक हितों का अनधिकृत दोहन कर रहें हैं जिसका भविष्य अंधकारमय है I

भारत में व्याप्त प्रमुख भ्रष्टाचार एवं उनके भयवाह परिणाम :

भारत जैसे विकासशील राष्ट्र मे भ्रष्टाचार जैसी कुरीति लगभग हर छोटे बड़े तंत्र पर अपना नकारात्मक प्रभाव समय समय पर दिखाती रहती है I जीसके फलस्वरूप भ्रष्टाचारियों द्वरा लगातार आम नागरिकों के मूल भूत सुविधाओं का हनन एवं उनके संवैधानिक अधिकारों से खिलवाड़ किया जा रहा है I जिनमें कुछ प्रमुख सार्वजनिक तंत्र निम्नलिखित हैंजिनपर भ्रष्टाचार का प्रभाव खुले तौर पर देखा जा सकता है I

भारत जैसे राष्ट्र में सामाजिक न्याय, सामाजिक सुरक्षा एवं मानवाधिकारों की रक्षा में सहभागी **पुलिस एवं कानून व्यवस्था में भ्रष्टाचार** कानून की वास्तविक पकड़ को कमजोर करता हैI ऐसे कृत्य राज्य प्रशासन एवं अपराधियों के बीच एक अनाधिकृत सहयोग को बढ़ावा देता है। भ्रष्ट प्रशासन सार्वजनिक सेवा में कर्तव्यों के उल्लंघन को प्रदर्शित करता है I

पुलिसिया तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण अपराध की रिपोर्टिंग अनधिकृत रूप से कम करने के कारण समाज में अपराधियों को प्रोत्साहन मिलता है I **न्यायालयों में व्याप्त न्यायिक भ्रष्टाचार** लोगों को न्याय पाने के लिए अतिरिक्त कानूनी तरीकों को अपनाने के लिए मजबूर करता है। निरंतर झूठे मुकदमों का भार एवं उनमें व्याप्त भ्रष्टाचार की रस्साकसी न्याय व्यवस्था को दूषित करती है I आज विश्व के कुछ राष्ट्रों में न्यायिक व्यवस्था मे नवीन तकनीकों, मनोवैज्ञानिक परीक्षणों जैसे लाई डिटेक्टर, ब्रेन मैपिंग, बायोफीडबैक तकनीकों का प्रयोग किया जाने लगा है लेकिन भारत आज भी इससे दूर क्यों हैं I ऐसी तकनीकों का प्रयोग छोटे बड़े सभी न्यायालयों एवं न्यायिक गतिविधियों में करके झूठे मुकदमों को कम करने, उचित न्याय को बढ़ावा देने के लिए हमप्रोत्साहित कर सकते हैं I आज अनेक देशों में ऐसी तकनीकों से जेलों और न्यायालयों पर अनधिकृत भार को कम किया जा चुका है **शिक्षा के क्षेत्र** मे व्याप्त भ्रष्टाचार ऐसे बेरोजगारों की भीड़ पैदा कर रहा है जिनमे अपने डिग्री से सम्बंधित उपयुक्त हुनर का आभाव है I ऐसे युवा बेरोजगार स्वयं, देश एवं समाज के लिए भार बन कर अपना भविष्य ख़राब कर रहें हैं I**चिकित्सा के क्षेत्र** में व्याप्त भ्रष्टाचार जीवन रक्षक सुविधाओं मे आभाव एवं जानमाल के खतरे को बढ़ावा देता है I कई जगहों पर चिकित्सक को देवता का रूप माना जाता है लेकिन भ्रष्टाचार के वसीभूत हो कर कुछ चिकित्सकों ने कसाई का रूप ले लिए है I आज एक बीमारी मे इंसान के जीवन की साड़ी गाढ़ी कमाई जमापूजी दांव पर लग जाती है I**निर्माण एवं प्रौद्योगिकी** में व्याप्त भ्रष्टाचार आपदा प्रबंधन एवं मूलभूत सुविधाओं की उपलब्धता को न्यून बना दे रहा है I आपदाओं के समय देखा जा रहा है कि मुग़ल एवं ब्रिटिश काल के सरकारी सार्वजानिक इमारतें पुल एवं निर्माण नहीं गिर रहे I विगत कुछ वर्षों पूर्व निर्मित सार्वजानिक निर्माण एक मिनट में धरासाई हो जा रहें है I ये हम स्वतंत्र राष्ट्र के नागरिकों के लिए शर्म की बात है की हम खुद अपने एवं अपने नागरिकों के लिए भ्रष्टाचार की आड़ में कब्र खोद रहें है Iऐसे सभी भ्रष्टाचार समाज के लिए दीमक का काम कर रहें हैं I इन सभी पर सामान्य जागरूकता के द्वारा नियंत्रण किया जा सकता है और समाज में स्वस्थ मानसिकता का विकास किया जा सकता है I

भ्रष्टाचार के वैश्विक एवं वैक्तिक प्रभाव :

भ्रष्टाचार समाज के सामाजिक और नैतिक ताने-बाने को असंतुलित कर देता है I भ्रष्टाचार के कारण नागरिकों का उस राष्ट्र कीसरकार के प्रति विश्वसनीयता कम हो जाती है I भ्रष्टाचार के कारण राजनीति के अपराधीकरण को बढ़ावा मिलता है I जनमानस को सार्वजनिक सेवाओं में खराब गुणवत्ता का सामना करना होता है। किसी देश के रक्षा सौदों में भ्रष्टाचार के कारण तटस्थ राष्ट्रों से बढ़ती दुश्मनी के दौर में सशस्त्र बलों के आधुनिकीकरण में देरी होती है। जो किसी देश के राष्ट्रीय सुरक्षा की दृष्टि से शुभ संकेत नहीं है। भ्रष्टाचार के कारण किसी देश की सड़कों और पुलों में खराब गुणवत्ता वाली सामग्री के प्रयोग को बढ़ावा मिलता है I जिससे असमय आपदाओं का सामाना करना पड़ता है I अनायास ही जानमाल की क्षति होती है I

भ्रष्टाचार किसी भी राष्ट्र मे व्यापारिक लाभ की संभावनाओं को कम कर देता है। व्यापार में प्रभावित होने पर उस राष्ट्र का निजी निवेश भी बाधित होता है I जिससे रोजगार की संभावनाएं कम हो जाती हैं I भ्रष्टाचार के द्वारा किसी राज्य में निवास कर रहे गरीबों और हाशिए पर पड़े लोगों के मौलिक अधिकारों का शोषण और उल्लंघन होने की सम्भावना बढ़ जाती है।आई0 सी0 डी0 एस0, एन0 आर0 एच0 एम0जैसी कल्याणकारीयोजनाओंमें भारत के कई राज्यों में घोटाले सामने आए हैं I भ्रष्टाचार के कारण नागरिको के लिए उपलब्ध सुविधाओं में बाँधा उत्पन्न होती है I

भ्रष्टाचार विशेष रूप से देश एवं राज्य के अनेक पिछड़े क्षेत्रों में वैक्तिक सुविधाओं में ह्रास जैसे खराब शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं में आभाव को बढ़ावा देता है। भ्रष्टाचार के कारण काले धन को बढ़ावा मिलता है। भारत के अनेक बड़े घोटाले जैसे चारा, राफेल, 2जी और कोयला खदानों जैसे बड़े घोटालों का कारण भ्रष्टाचार ही है I भाई-भतीजावाद और भ्रष्टाचार में गहरा सम्बन्ध है।भ्रष्टाचार के कारण गुणवत्ता विहीन उत्पादों को प्रोत्साहन मिलता है I उत्कृष्ट उत्पादों की लागत अनधिकृत रूप सेबढती है Iआज जितनी भी प्राकृतिक आपदाएं भूकंप, बाढ़, सूखा और आगजनी की घटनाए हो रही हैं I उनका जितना भी विकराल रूप हमें देखने को मिल रहा है उन सब के पीछे भ्रष्टाचार है I भ्रष्टाचार ने पारिस्थितिक रूप से संवेदनशील क्षेत्रों को आपदाओं के लिए उत्पादक स्थल बना दिया है I

समाजिक विकास में अवरोधक भ्रष्टाचार :

भारतीय समाज मेंभ्रष्टाचार एक व्यापक संक्रामक परजीवी के रूप में विकराल रूप लेता जा रहा है I जो अनेक प्रकार की जनतांत्रिक प्रणालियों, सरकारी विभागों, स्वैक्षिक संस्थानों, आम नागरिकों या समूहों के जीवन को दीमक की तरह कमजोर करता जा रहा है I आज के भारतीय जीवन शैली में सभी क्षेत्रों में भ्रष्टाचार प्रवेश कर चुका है Iभ्रष्टाचार की पहुँच से सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक या नैतिक कोई भी क्षेत्र अछुता नहीं रह गया है।

यह भारत जैसे पौराणिक उच्च आदर्शों वाले नीतिगत राष्ट्र के लिए वास्तव में शर्म की बात है, कि आज भारत की गिनती विश्व के सबसे भ्रष्ट देशों में से एक में की जाती है।

आज हमारे दैनिक एवं सामाजिक जीवन का शायद ही कोई क्षेत्र होगा जहां हमें भ्रष्टाचार सामना न करना पड़े। भारत जैसे धार्मिक एवं नैतिक विचारधारा वाले देश में भी 50% से अधिक लोगों ने सार्वजनिक सेवाओं तक पहले पहुँचने के लिए रिश्वत देने की बात को स्वीकार किया है।भ्रष्टाचार भारत के विकास के मार्ग में सबसे बड़ा खतरा बन कर भारतीय समाज को नैतिक पतन की तरफ ले जा रहा है I अगर भारत को विकसित राष्ट्रों की श्रेणी में लाना है तो यह नितांत आवश्यक है कि भ्रष्टाचार को भारतीय समाज से समूल समाप्त किया जाए I

विश्वव्यापी संस्था ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल (टीआई) ने भ्रष्टाचार के 180 देशों के सर्वे में कम भ्रष्टाचार की श्रेणी मे भारत को 85 वें पायदान पर पाया I जबकि विश्व की कुछ महाशक्तिशाली राष्ट्रों की स्थिति कुछ इस प्रकार है जापान (18), यूनाइटेड किंगडम (18), अमेरिका (24), चीन (65),जर्मनी (9) के स्तर पर है I इन सभी महाशक्तिशाली राष्ट्रों के ऊपर विश्वव्यापी संस्था ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल (टीआई) के सर्वे से यह प्रमाणित होता है कि किसी भी राष्ट्र के महाशक्तिशाली बनने में वहाँ के समाज में भ्रष्टाचार का कम होना प्रभावशाली कारक के रूप में कार्य करता है I भारत को महाशक्ति बनाने का स्वप्न देखने से पहले हमें यहाँ से भ्रष्टाचार को समूल नष्ट करना होगा I भारत का वास्तविक नैतिक विकास तभी संभव है I

भ्रष्टाचार का रोकथाम एवं सामाजिक सुधार :

हम किसी भी देश में भ्रष्टाचार की वास्तविक स्थित को जानने के लिए हम सर्वेक्षण माध्यम को उपयोग में ला सकते हैं I वर्तमान समय में अनेक विश्व्यापी संस्थानों के माध्यम से भ्रष्टाचार के आधार पर विश्व भर के राष्ट्रों को श्रेणीगत किया गया I जिससे विश्व भर मे भ्रष्टाचार की वास्तविक स्थिति का पता लगाया जा सके I इस संदर्भ में सबसे महत्वपूर्ण योगदान विश्वव्यापी संस्था ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनलने दिया I जिसने भिन्न भिन्न वर्षों में 180 राष्ट्रों पर सर्वेक्षण के माध्यम से भ्रष्टाचार के विश्व्यापी प्रसार को देखने का प्रयास किया I भ्रष्टाचार को विश्व स्तर परमापने के लिए करप्शन परसेप्शन इंडेक्स अर्थात् सीपीआई का प्रयोग किया जाता है I

देश के नागरिकों को सशक्त बनाने, भारतीय समाज को भ्रष्टाचार मुक्त बनानेऔर देश को विकसित राष्ट्र की श्रेणी में लाने के लिए निम्नलिखित कदम उठाने की आवश्यकता है:

नौकरशाहीव्यवस्था में सुधारकरके हमभारत में प्रशासनिक स्तर पर व्याप्त असीमित राजनीतिक नियंत्रण को रोकने के लिए धरातलीय स्तर पर सिविल सेवा बोर्ड की स्थापना सकते हैं । प्रसाशनिक स्तर पर सरकारी एवं राजनैतिक पदानुक्रम के स्तर को कम करना अति आवश्यक है । भ्रष्टाचार के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही को सरल बनाना जिससे भ्रष्टाचार में लिप्त दोषियों के खिलाफ उचित कार्यवाही शीघ्र संभव हो सके I विभागों के अंदर ही भ्रष्टाचार निवारण तंत्र एवं संभावित भ्रष्टाचार सतर्कता को मजबूत करना Iजिससे सभी सरकारी एवं गैर सरकारी तंत्रों के द्वारा यह सुनिश्चित किया जा सके कि भ्रष्ट सिविल सेवक संवेदनशील पदों पर किसी भी तरह सेआसीन न हों सकें । भारत सरकार में भ्रष्टाचार नियामक प्रक्रियाओं को स्वचालित करने के लिए ए0आई0 और बिग डेटा जैसी नई तकनीकों का उपयोग करना।

चुनावी प्रक्रिया में व्यापक सुधारआर0पी0ए0 में संशोधन कर हम चुनावी दौड़ में अपराधियों को शामिलहोने से रोक सकते हैं Iभ्रष्ट अपरधियों को भिन्न भिन्न चुनाव में शामिल होने से रोकने के लिए कानून बनाना I लोकसभा, विधानसभा, जिला पंचायत, ग्राम पंचायत एवं भिन्न भिन्न निकाय चुनावों में प्रवेश करने से रोकने के लिए विधिक कानूनों का निर्माण करना आवश्यक है । चुनाव के समय राजनैतिक दलों के द्वारा भिन्न भिन्न प्रभावशाली उद्योगपतियों एवं व्यापारियों से एकत्रित किये जाने वाले नकद चंदे एवं एनी सहायताओं पर रोक लगाना Iराजनैतिक दलों के द्वारा चुनाव में कुल खर्च पर निश्चित सीमा का प्रतिबन्ध लगाना। भारतीय चुनाव प्रक्रिया में सुधार के लिए इंद्रजीत गुप्ता समिति द्वारा अनुशंसित राज्य वित्त पोषण के विचार को अपनाना तत्काल अपनाया जाना आवश्यक है ।

भ्रष्टाचार निवारण कानून के कार्य विधि में परिवर्तनभ्रष्टाचार रोकने वालेनियमों के बारे मेंसामाजिक रूप से पारदर्शिता और सामाजिक जागरूकता बढ़ाने के प्रयास करना I समग्र आर्थिक सर्वेक्षण द्वारा अनुशंसित नियम अधिनियम (टी0ओ0आर0ए0) में पारदर्शिता लाना। व्यापक स्तर पर भारत में नागरिक चार्टर और सामाजिक लेखा परीक्षा लागू करना । भ्रष्टाचार निवारण के लिए स्थानीय निकाय को सशक्त बनाना I जिससे भ्रष्टाचार निवारण कानून को सशक्त लोकतंत्र के लिए एक शक्तिशाली उपकरण बनाया जा सके। भारतीय दंड संहिता में न्यायिक सुधार किया जाना आवश्यक है I जिससे भ्रष्ट अधिकारियों के खिलाफ मुकदमे में तेजी से निस्तारण संभव हो सके I जिससे

भ्रष्टाचार निवारण कानून एक मजबूत भ्रष्टाचार निवारक बने रहें I तात्कालिक रूप से भ्रष्टाचार विरोधी कानून का शासन स्थापित करने और भ्रष्टाचार के मामलों में निष्पक्ष जांच सुनिश्चित करने के लिए प्रकाश सिंह मामले में एस0सी0 द्वारा सुझाए गए 7 सूत्री पुलिस सुधार कानून को अपनाना नितांत आवश्यक है ।भारतीय संविधान में परिकल्पित कार्यपालिका पर विधायी नियंत्रण को और अधिक मजबूत बनाने के लिए राजनीति में दल-बदल विरोधी कानून में संशोधन किया जाना अति आवश्यक है ।भिन्न भिन्न विभागों के मंत्रियों के लिए आचार संहिता संहिता लाना। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत सार्क द्वारा प्रतिपादित सभी कार्यालयों जैसे कि सार्वजनिक उपक्रमों के बोर्डों को संरक्षण के दायरे में लाना।

निष्कर्ष :

भारत सरकार ने भ्रष्टाचार का कड़ाई से मुकाबला करनेके लिए, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1998 को लागू किया है और मुख्य सतर्कता आयोग जैसे संस्थानों की स्थापनाभी की है, जो भ्रष्टाचार जैसी कुरीति सेसख्ती से निपटने के लिए जन जन कोकानूनीअधिकार प्रदान करता है। भ्रष्टाचारियों एवं अधिकारियो की मिलीभगत के साथ साथ न्यायिक प्रक्रिया के लंबे अवधि के कारण ये सभी तंत्र आज भी नाकाम साबित हो रहे हैं Iअक्सर देखा गया है कि भारतीय न्यायपालिका में गवाहों की कमी से अनेक भ्रष्टाचारी बरी हो जाते हैं I जो सर्वथा गलत है Iइसकारण भी अनेक भ्रष्टाचारियों को कोई फर्क नहीं पड़ रहा है। भ्रष्टाचार के कुशल समाधानों में स्थानीय स्तर पर जन जागरूकता अपनी विशेष भूमिका निभा सकता है I भ्रष्टाचारियों द्वारा भ्रष्ट होने पर भी बार-बार उच्च अधिकारीयों से सौदेबाजी के लिए संपर्क करना भ्रष्ट तन्त्र को बढ़ावा देता है I इससे बढ़कर अगर हम स्थानीय जनता के सहयोग से व्हिसलब्लोअर की भूमिका का प्रयोग करते हैं तो भ्रष्टाचार पर काबू कर सकते है। व्हिसलब्लोअर की अवधारणा पश्चिमी देशों से प्राप्त हुई है Iइस प्रक्रिया के अंतर्गत स्थानीय निकायों में संलग्न बड़ी संख्या में लोग भ्रष्ट अधिकारियों पर नजर रखते हैं Iउनकी वैधानिक जासूसी करते हैं I जरूरत पड़ने पर संबंधित विभागों से आवश्यक परामर्श भी दे से सकते हैं Iजिससे भ्रष्टाचार विरोधी गतिविधियों को बेहतर एवं पुष्ट बनाया जा सकता हैं।

आज मोदी जी द्वारा डिजिटल इंडिया जैसे कार्यक्रमों के साथ भारत में सब कुछ डिजिटाइज़ करने से भ्रष्टाचार उच्च स्तर तक कम होने की सम्भावना है I अगर भारत सरकार द्वारा बनाये नियमों का कड़ाई से पालन हो तो भविष्य में भारत के किसी भी सरकारी एवं गैर सरकारी उपक्रम में बिचौलियों के लिए कोई जगह नहीं होगी I डिजिटल इंडिया द्वारा जल्द ही भारत में वो दिन आने वालें हैं जब भारत सरकार सार्वजनिकउपक्रमों में हर गतिविधियों पर कड़ाई से निगरानी करेगी। जिस कारण भ्रष्टाचार के संभावित खतरों से निपटने की योजना पहले ही बना ली जायेगी I भ्रष्ट कर्मचारियों के खिलाफ शख्त से शख्त कार्यवाही अविलम्ब संभव हो पाएगी I

सन्दर्भ ग्रंथ :

1.आज़ादी के बाद भारत में हुए 21 बड़े घोटाले जानिये देश को उठाना पड़ा कितना नुकसान : जनसत्ता, रविवार 19 नवम्बर 2023 : इन्टरनेट पता
https://www.jansatta.com/khel/21-big-scandals-in-india-since-independence-know-how-much-damage-the-country-had-to-raise/582930/
2.आजाद भारत के पांच घोटाले अगर ये न होता तो हमारा इतिहास और सुनहरा होता : अमर उजाला 12 अगस्त 2023 : इन्टरनेट पता
https://www.amarujala.com/india-news/independence-day-five-scams-of-independent-india-know-how-they-plundered-the-country-2023-08-11?pageId=2
3.आर्थिकअपराधतथापुलिस : डॉ. जालमसिंह, राजस्थानपुलिस, पुलिसअनुसन्धानएवंविकासब्यूरो, गृहमंत्रालयभारतसरकार, नईदिल्ली, 2020
https://bprd.nic.in/WriteReadData/CMS/Arthik%20Apradh%20tatha%20Police.pdf
4.घोटालों की अनुभूति की सूची : विकिपीडिया विश्वज्ञान कोश : इन्टरनेट पता
https://en.wikipedia.org/wiki/Corruption_Perceptions_Index
5.जब भारत में पहले घोटाले का गवाह बनी थी LIC, राहुल के दादा ने उठाए थे सवाल: टी वि 9 भारत वर्ष 06 फ़रवरी 2023इन्टरनेट पता
https://www.tv9hindi.com/knowledge/when-lic-became-witness-to-the-first-scam-in-independent-india-rahuls-grandfather-raised-questions-au464-1702909.html
6.ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल, भ्रष्टाचार सम्बन्धी विश्वव्यापी सूची, जर्मनी, 2022, इन्टरनेट पता

https://www.transparency.org/en/cpi/2022?gclid=CjwKCAiAgeeqBhBAEiwAoDDhn2xZqcYQcltcJ_i5A7DsolM6IF1oKs1kXy4UKhsTlplQeJDItrE1hhoCKggQAvD_BwE&gad_source=1

7.ट्रासपेरेंसी इंटरनेशनल, जर्मनी,विकिपीडिया विश्व ज्ञान कोश :इन्टरनेट पता https://en.wikipedia.org/wiki/Transparency_International

8.भारत में भ्रष्टाचार का इतिहास : कोश विश्वज्ञान विकिपीडिया :इन्टरनेट पता

9.भारत के घोटालों की सूची वर्ष के अनुसार : हिंदी विकिपीडिया : इन्टरनेट पता

10. भारत के 40 से ज्यादा चर्चित घोटाले जिसमे जनता के लुट गए अरबो खरबों : वेब दुनिया हिंदी : 19 नवम्बर 2023 : इन्टरनेट पता https://hindi.webdunia.com/national-hindi-news/pnb-scam-scam-history-of-scam-118022000070_1.html

11. ये हैं भारत के 6 बड़े घोटाले : न्यूज़ 18 हिंदी, 21 दिसम्बर 2017 : इन्टरनेट पता https://hindi.news18.com/photogallery/business/know-about-5-big-scandals-of-india-1204885.html

12. वो 10 सबसे बड़े घोटाले जिन्होंने देश को हिला डाला, ये ना हुए होते तो भारत सोने की चिड़िया होता! : दीक्षा मिश्रा, आई0 टी0 हिंदी 27 फ़रवरी 2022 https://www.indiatimes.com/hindi/india-news/10-biggest-indian-scams-of-all-times-563108.html

13. घोटाले और धोखाधड़ी वाली निवेश योजनायें जो हमारे नाम का दुरपयोग करती हैं विश्व बैंक IBRD: RDA, इन्टरनेट पताhttps://www.worldbank.org/en/about/legal/scams

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-B

ISSN : 2278-9308 December, 2023

लार्ड मैकाले के राजनैतिक निर्णय हिंदी भाषा का विकास

डॉ. रामसिंह यादव

असिस्टेंट प्रोफेसर मानविकी एवं समाज विज्ञान संकाय आई. ई. सी. विश्वविद्यालय ग्राम-कालू झंडा पोस्ट-मन्धाला, बद्दी जिला- सोलन, हिमाचल प्रदेश पिन-174103

डॉ. राजेश

एसोसिएट प्रोफेसर मानविकी एवं समाज विज्ञान संकाय आई. ई. सी. विश्वविद्यालय ग्राम-कालू झंडा पोस्ट-मन्धाला, बद्दी जिला- सोलन, हिमाचल प्रदेश पिन-174103

सारांशिका

ब्रिटिश शासन काल में अंग्रेजी भाषाको भारत की सरकारी भाषा के रूप में घोषित किया Iइसनेहीशिक्षा का माध्यम प्राचीन भारतीय भाषाओँ से हटा कर यूरोपीय साहित्य दर्शन तथा विज्ञान को भारतीय शिक्षा पद्धति का अंग बनाने में इसका बड़ा हाथ था। जिससे हिंदी भाषा को भी सदियों पीछे होना पड़ा इस लिए हम कह सकते हैं कि लार्ड मैकाले की नीतियों ने भारत के स्वाभिमान को धक्का दिया Iभारतकीसंस्कृति के साथ खिलवाड़ कियाIजिसमें सबसे ज्यादा हानि हिंदी भाषा एवंकिन्नर समाज की हुईI लार्ड मैकाले में कुछ अच्छाई भी थी जो उसे कुशल प्रशासक बनाती है उसने अपने शासन काल में ठोस उदार सिद्धान्तों पर नागरिक प्रशासन चलाने की कोशिश की जो अन्य अंग्रेजी शासकों से बेहतर रही । उसने भारत में समाचार पत्रों की स्वाधीनता प्रदान किया, क़ानून में IPCलाकर यूरोपियों और भारतीयों के अधिकारों में समानता का समर्थन किया। अंग्रेज़ी के माध्यम से पश्चिमी सभ्यता का विकास एवं आधुनिकीकरण में भारत के कदम बढ़ने की वकालत किया I लार्ड मैकाले के चिंतन में भूरा किन्नर की सहादत एवं भारतियों मे हिंदी के प्रति बढ़ते वर्चस्व को देखते हुए I भारतियों का स्वाधीनता के लिए एक होने का भय था I इसलिए अलग अलग दो कानून बना कर इसने भारतियों को एकता के सूत्र में पिरोने वाले प्रमुख दो भारतीय कारक हिंदी भाषा और किन्नर समाज को ही कमजोर करने का प्रयास किया I

शब्द कुंजी :लार्ड मैकाले, राजनैतिक, निर्णय, हिंदी, भाषा, विकास I

मैकाले का प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति वास्तविक चिंतन :

लार्ड मैकाले ने तात्कालिक भारत के प्रगति के लिए अनेक ऐसे कानून को लाने का प्रयास किया जिससे भारत की प्रगति हो सके I लेकिन इसके पीछे उसकी सोंच बहुत बेहतर भी नहीं थी I वह भारत की जनता के साथ चाहता था कि 'साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे' अर्थात अंग्रेजी हुकूमत की भारतीय जनता की फूट डालो और शासन करो वाली रणनीति पूरी हो जाए और भारतीयों को लगे कि उनके विकास की बात की जा रही है I लार्ड मैकाले की वास्तविक सोंच को उसके ब्रिटेन वापस जाकर ब्रिटिश संसद में दिनाक 02 फरवरी 1835 को दिए गए भाषण से साफ़ साफ़ दर्शित होती है I

"I have travelled across the length and breadth of India and I have not seen one person who is thief. Such a weath I have seen in this country, such high moral values, people of such calibre that I do not think we would ever conquer this country, unless we break the very backbone of this nation, which I propose that we replace her old and ancient education system, her culture, for if the Indians think that all that is foreign and English is good and greater than their own, they will lose their self-esteem, their native self-culture and they will become what we want them, a truly dominated nation."

हिंदी रूपांतरण

मैंने अपने पूरे भारत भ्रमण के दौरान भारत भर में किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं देखा जो वास्तविकता में चोर हो मैंने भारत में अनेक समृद्ध प्रतिभाएं देखि हैं, उच्च नैतिक मूल्यों वाले लोगों को देखा जो सामाजिक आदर्श से परिपूर्ण हैं, मुझे ऐसा प्रतीत हुआ की भारत की सांस्कृतिक एवं नैतिक मेरुदंड को तोड़े बगैर हम भारत को पूर्ण गुलाम नहीं बना सकते I इसलिए ब्रिटिश सरकार से मेरा निवेदन है की हमें भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति और संस्कृति के स्थान पर पाश्चात्य संस्कृति एवं अंग्रेजियत की भावना भारतियों मे भरने के लिए एक निति बनानी पड़ेगी जिससे उन्हें लगे की विदेशी सभ्यता एवं अंग्रेजी भाषा बेहतर है I ऐसा करने से भारतीय अपना स्वाभिमान

खो देंगे और धीरे धीरे अपनी संस्कृति को भूल जायेंगे I भारतीय हमारे गुलाम सोंच और शरीर दोनों से हमेशा के लिए बन जायेंगे I

भिन्न भिन्न भाषा एवं उसका प्रयोजन :

भाषा न केवल सम्प्रेषण का माध्यम होती है बल्कि यह संस्कृति व् संस्कार के संरक्षण, संवर्धन व् संवहक का माध्यम है I अनेक भाषाओँ की भिन्न भिन्न सामाजिक स्तर पर उपादेयता भी भिन्न भिन्न होती है I किसी भी व्यक्ति विशेष के लिए उसकी मातृभाषा उसके व्यकितिगत एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि का बोध कराती है I राष्ट्र भाषा समाज में स्वदेशी भवों का ज्ञान कराता है I वैश्विक धरातल पर यह भाषा राष्ट्रीय स्वाभिमान की विशिष्ट पहचान का पुख्ता इंतजाम करता है I यही भाषा संपर्क भाषा के नाम से जानी जाती है देशकाल के पात्र के बीच साझा माध्यम का कार्य करती है I वहीँ दूसरी तरफ राजभाषा राजकाज की भाषा के नाम से जानी जाती है I जिसका प्रयोग शासकीय प्रयोजनों के लिए भी किया जाता है I यह भाषा ही जनता एवं सरकार की भाषा के नाम से भी जानी जाती है Iआज हिंदी न केवल भारत की भाषा है बल्कि भारत की धड़कन बन गई है I

हिंदी का इतिहास :

वैसे तो हिंदी खुद फारसी भाषा का शब्द है I हिंदी के कई साहित्यकार जिनमें डॉ0 सुनीति कुमार चटर्जी, उदय नारायण तिवारी, भोला नाथ तिवारी और रामधारी सिंह दिनकर ने स्वीकार भी किया है I लेकिन इसकी उत्पत्ति में संस्कृत का बहुमूल्य योगदान है I ईरानियों के धर्म ग्रन्थ **जेंदावेस्ता** और आर्यों के आदि ग्रंथ **ऋग्वेद** की ऋचाओं में अदृत साम्य मिलता है I इन दोनों ग्रंथों में वर्णित देव दानव की अवधारणा शब्द वाक्य विन्यास और व्याकरण आदि में समानता दोनों की मूल जातियों का एक ही श्रोत होने का संकेत करती है I इस प्रकार हम कह सकतें हैं की हिंदी भाषा की मूल उत्पत्ति 1000 साल पहले हुई है I इसके अनेक शब्द की उर्दू से घुल मिल जाते हैं I अनेक जगहों पर हिंदी के साथ अनेक भारतीय एवं अभारतीय भाषाओँ के शब्दों को आत्मसात किया जाता है I जो इसके सामाजिक लोकप्रियता को बढ़ावा देता है Iशायद ही विश्व मे कोई ऐसी भाषा हो जिसको राष्ट्रीय एकता का प्रतीक माना जाता हो I हिंदी ही ऐसी भाषा है जिसको गंगा जमुनी तहजीब का परिचायक मन जाता है I तहजीब इसलिए क्योंकि हिंदी ही ऐसी भाषा है जिसमे बकायदे छोटे बड़े के अदब लिहाज के मकशद से अनेक उपयुक्त शब्दों का निर्माण किया गया है I इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिंदी अपने जन्म और कर्म दोनों ही रूपों में सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं भाषिक समन्वय एवं सौहार्द का प्रतीक रही है I फिर भी हिंदी आज तक अपने ही जन्मभूमि पर अपने अस्तित्व की तलाश में दर दर भटकने को मजबूर है I

आजाद भारत में हिंदी की दशा :

लॉर्ड मैकाले को भारतीय शिक्षा का जनक माना जाता है ।आज भारत देश में हिंदी राजभाषा के रूप में उभर कर सामने आई है उसमें सविधान के भाग 17 में अनेक प्रावधान किये गए I संविधान के भाग 17 में वर्णित अनुच्छेद 343 से 351 तक प्रावधान किये गए I अनुच्छेद 343 में कहा गया है की भारत संघ की राज भाषा हिंदी होगी और उसकी लिपि देवनागरी होगी I अनुच्छेद 351 में कहा गया है कि भारत सरकार मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भारतीय भाषाओं से शब्द सम्पदा ग्रहण करते हुए हिंदी का विकास इस रूप में करेगी कि वह भारत की सामासिक संस्कृति के समस्त तत्वों की सम्यक अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन सके I

भारत में मैकाले की शैक्षिक नीतियों को सुधार को ले कर पहली बार 2 फरवरी 1835 में कानून लागू किया गया ।प्रारम्भिक दौर में मैकाले की शैक्षिक नीतियां अत्यधिक विवादास्पद रहीं Iआज भी अपनी स्वार्थपरक निति के कारण विवादास्पद बनी हुई हैं। भारतीय शिक्षा पर मैकाले के शैक्षिक विचार इस मूल विश्वास पर आधारित थे कि ब्रिटिश शासन द्वारा लागू की जाने वाली पश्चिमी संस्कृति और जीवन-मूल्य विश्व की अन्य संस्कृतियों से श्रेष्ठ हैंIमैकाले ने इसी कारणभारतीय शिक्षा के नवीनीकरण माध्यम से पाश्चात्य संस्कृति और जीवन मूल्यों का प्रचार प्रसार करना महत्वपूर्ण समझा ।

लार्ड मैकाले की शिक्षा निति एवं हिंदी भाषा का पतन :

आधुनिकता की आंधी में बहने की चाहत ने भारत की संस्कृति के साथ ही भारत की प्राचीन विरासत जिनमें अनेक प्रांतीय बोली भाषा एवं साहित्य को जो धक्का दिया उनमे हिंदी भाषा का स्थान सर्वोपरि है Iभारतीय इतिहास में लार्ड मैकाले द्वारा प्रस्तुत स्मरण पत्र 2 फरवरी, 1835 को पेश किया गए इस स्मरण पत्र से भारत मे वर्षों से चला आरहा यह विवाद खत्म हो गया कि भारतीयों के लिये शिक्षा की व्यवस्था प्राच्य भारतीय भाषा में की जाए या आधुनिक यूरोपीय भाषाओं में । इस निर्णय के बाद से ही भारतीयों में विचार एवं संस्कृति का निर्माण यूरोपीय भाषाओं के अभिभूत हो कर होना अब स्वाभाविक था। अंग्रेज़ी शिक्षा पद्धति के बढ़ते परचम ने जहाँ यूरोपीय

विचारों तक भारतीयों की पहुँच बनाना शुरू किया वहीँ भारतीय परंपरागत भाषा संस्कृति एवं नैतिक विचारों से उनकी दूरी बढ़ने लगी I

लार्ड मैकाले का कार्य प्राच्यवादीतथा पाश्चात्यवादीविवाद पर मध्यस्थता कर एक मूलभूत निर्णय लेने का कार्य किया Iइस समस्या के निवारण के कानूनी सलाह के लिए 2 फरवरी, 1835 को लॉर्ड मैकाले ने अपना प्रसिद्ध एतिहासिकस्मरण पत्र प्रस्तुत किया I यह स्मरण पत्र भारत के गवर्नर जनरल के समक्ष प्रस्तुत किया। जिसे भारत के तात्कालिक गवर्नर विलियम बैंटिक ने तुरंत स्वीकार करते हुए अंग्रेजी शिक्षा अधिनियम, 1835 पारित किया। इसके पारित होने से ही भारत में आधुनिक ब्रिटिश शिक्षा की नींव पड़ गई । भारत में मैकाले की शिक्षा समिति ने सिफारिश की थी कि भारत के सभी स्कूलों में शिक्षा की मुख्य भाषा अंग्रेजी होनी चाहिए और पाठ्यक्रम की भी संरचना पूर्वी मूल्यों के स्थान पर पश्चिमी मूल्यों और विचारों पर पूर्ण रूप से आधारित होना चाहिए। इस अधिनियम के लागू होते ही अंग्रेजी भारतीय स्कूलों में शिक्षा की प्रमुख भाषा के रूप में जानी जाने लगी ।

निष्कर्ष :

प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक **नोम चॉमस्की** ने तो वैश्वीकरण का अर्थ ही अंतर्राष्ट्रीय एकीकरण माना है और उन्होंने कहा कि इस एकीकरण में भाषा की अहम् भूमिका होगी और जो भाषा विश्व स्तर पर व्यापक रूप से प्रयोग में रहेगी, उसी का स्थान विश्व में आगे भी सुनिश्चित होगा | नोम चॉमस्की के अनुसार जब कोई देश विश्व एक बड़ा बाजार हो जाएगा तो बाजार में व्यापार करने के लिए लोग जिस भाषा का प्रयोग करेंगे उसे ही अंतर्राष्ट्रीय एकीकरण प्राथमिकता दी जाएगी और वही भाषा आगे भी जीवित रहेगी ।उक्त कथन आज सत्य होता प्रतीत हो रहा है I आज हिंदी भाषा न केवल भारत की राज भाषा है बल्कि विश्व के लिए भविष्य की वैश्विक भाषा के रूप में उभर कर सामने आ रही है I

हिंदी आज सिर्फ साहित्य की ही भाषा नहीं रही बल्कि वैश्विक रूप से बाजार की भी भाषा बन कर सामने आ रही है। विश्वव्यापी उपभोक्तावादी संस्कृति ने विज्ञापनों की ऐसी दौड़ को जन्म दिया है हिंदी केवल न जिससे , बढ़ा अनुप्रयोग वैश्विक कसर्वाधि का, बल्कि हिंदी भाषा के क्षेत्र में युवाओं को रोजगार के नए अवसर भी मिले है।14 सितंबर 1949 को हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिया गया और वर्ष 1953 से हिंदी दिवस मनाने की शुरुआत हुई । तब से आज तक हिंदी ने निरंतर प्रगति कर भारत को गौरवान्वित किया है | भारत के विकास के साथ ही हिंदी ने भी राष्ट्रीय स्तर पर अपनी विशेष पहचान बनाई है | आज हिंदी इन्टरनेट पर लोकप्रिय भाषा के रूप में उभरती चली जा रही है| आज हिंदी को सामान्य बोल चाल की भाषा के अतिरिक्त वैज्ञानिक भाषा का रूप मिल चुका है|

विश्व के दूसरे सबसे बड़ी जनसँख्या वाले राष्ट्र में हिंदी भाषियों कीसंख्या अधिक होने के कारण तमाम व्यवसायिक संगठनों की नजरें भारत जैसे विकासशील देश की तरफ टिकी हुई हैं | किस तरह के प्रचार व अनुनय का प्रयोग करके भारतीय हिंदी भाषी उपभोक्ताओं को अभिप्रेरित कर अपना व्यवसायिक लाभ त्वरित प्राप्त किया जा सके | बड़ी मल्टी नेशनल कम्पनियां भारत जैसे राष्ट्र के जन समुदाय को प्रभावित करने के तरीके इजाद कर रही है| ऐसे में विश्वव्यापी स्तर पर हिंदी का प्रचार प्रसार बढ़ा है| अब तो संयुक्त राष्ट्र संगठन जैसे बड़े विश्व समुदाय मेंविश्व की प्रमुख भाषाओं में हिंदी को शामिल किये जाने की ठोस दलीलें दी जारही हैं ।जिससे हिंदी भाषा का वैश्विक एकता के प्रसार में और अधिक प्रभाव बढेगा |

सन्दर्भ ग्रंथ :

1.समर चौरसिया अर्थ का परिवर्तन सामाजिक :, परिभाषा एवं बाधक तत्व 5 ,ब्लॉग एजुकेशनल समर ,नवम्बर ,2022इन्टरनेट का संक्षिप्त पता :
https://www.samareducation.com/2021/05/education-and-social-change.html
2.शर्मा एस.के. : 'आधुनिक भारतीय समाज मे शिक्षा', डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ क्रमांक-157-159.
3.सिंह विजय बहादुर : 'आओ खोजे एक गुरु', श्रेया प्रकाशन,इलाहबाद, 2006, पृ.सं.:15-18.
4.प्रसाद गोविन्द : सामाजिक परिवर्तन, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ 2007, क्रमांक-180-181.
5.जैसवाल सीताराम : शैक्षिक समाजशास्त्र, भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी, 1956, पृ.सं.:37-41.
6.शर्मारामनाथ :शर्माराजेंद्रकुमार ,शैक्षिकसमाजशास्त्र ,शन एटलान्टिकपब्लिके ,नईदिल्ली ,2006 ,पृष्ठक्रमांक-228-.230

7: **अनिल कुमार पाण्डेय : कब समझेंगे हम-हिंदी है हम वतन है हिंदोस्ता हमारा, खबर डिजिटल डॉट कॉम, 21 मार्च 2023.** ई-समाचारपत्रhttps://khabardigital.com/article/post-6

8: गिरीश्वर मिश्र : स्वधीनता आन्दोलन एवं लोक साहित्य, 'पाठशाला' महात्मा गाँधी हिंदी अंतर्राष्ट्रीयविश्व विद्यालय वर्धा, पृष्ठ-1-9, ई-पत्रिका http://epgp.inflibnet.ac.in/epgpdata/uploads/epgp_content/S000018HI/P001545/M017648/ET/1475744034HND_P6_M-29_SwadhintaAandolanAurLokSahitya.pdf

9: राकेश कुमार आर्य : स्वतंत्रता आन्दोलन मे हमारे साहित्यकारों का योगदान, प्रवक्ता डॉट कॉम, 25 जनवरी 2019. ई-पत्रिकाhttps://www.pravakta.com/contribution-of-our-writers-in-the-freedom-movement/

10:सलिल सरोज : स्वतंत्रता संग्राम में कवियों शायरों लेखको का योगदान, वेब दुनिया, 12 मार्च 2023. ई-पत्रिका https://hindi.webdunia.com/independence-day-special/contribution-of-poets-poets-and-writers-in-freedom-struggle-121081200041_1.html

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-B

ISSN : 2278-9308 December, 2023

मीडिया की भाषा का सांस्कृति पर प्रभाव

डॉ. रश्मि द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, एन.आई.एम.एस. विश्वविद्यालय, राजस्थान, जयपुर पिन-303121

डॉ. राजेश

एसोसिएट प्रोफेसर मानविकी एवं समाज विज्ञान संकाय आई. ई. सी. विश्वविद्यालय ग्राम-कालू झंडा पोस्ट-मन्धाला, बद्दी जिला- सोलन, हिमाचल प्रदेश पिन-174103

सारांश :

मीडिया एवं मीडिया की भाषा वैश्वीकरण के वर्तमान समय में सामाजिक विकास की रीढ़ बन कर सामने आई है I आज हिंदी के विकास में ऐसी ही प्रक्रिया सकारात्मक भूमिका निभा रही है I इस कारण वैश्विक रूप से हिंदी के प्रचार प्रसार को बढ़ावा मिला है I जिससे भाषा सम्बन्धी समस्या का निवारण संभव हुआ है I भारतीय संस्कृति का प्रचार एवं उसके संरक्षण को बढ़ावा मिला है I मीडिया एवं मीडिया की भाषा के कारण ही हम स्थानीय लोगों से वार्तालाप करके भी नागरिकों के अधिकारों और विशेषाधिकारों के प्रति जागरूक करने में सफल होते हैं I आज भारत की जनसँख्या ज्यादा होने के कारण भारत की तरफ विश्व बाज़ार की नजरें हैं I जिसका सीधा लाभ भारतीय सभ्यता के उन्नयन में प्राप्त हो रहा है I विश्व के अनेक राष्ट्रों में भारतीय बाज़ार की चमक मीडिया उसकी भाषा पर निर्भर है I आज भारतीय बाज़ार को जानने समझने के लिए पहले भारतीय मीडिया में बहु प्रचलित भाषा को सीखना आवश्यक हो गया है I इस लिए भी विश्व परिदृश्य पर भारत में सर्वाधिक बोले जाने वाली भाषा हिंदी के प्रसार को बढ़ावा मिला है I मीडिया की भाषा को सहज बनाते हुए उसमें स्थानीय समस्याओं के आधार पर परिवर्तन लाकर स्थानीय सामाजिक समस्याओं के निवारण में सहयता प्राप्त कर सकते हैं I

शब्द कुंजी : मीडिया, भाषा, संस्कृति, प्रभाव, श्रोता I

मीडिया एवं समाज में अन्तःसम्बन्ध :

जहाँ कही भी मीडिया की भाषा की बात की जाती है, उसका मीडिया मे संलग्न पात्रों तथा प्राप्त सूचनाओ को सम्प्रेषण के माध्यम से आगे बढ़ाने वाले श्रोताओं दोनोंसे ही सीधा संबध होता है।संस्कृति के संरक्षण एवं सवर्धन में मीडिया की भाषा का विशेष महत्व है I वर्तमान समाज को मीडिया प्रभावित करने मे कोई कसार नहीं छोड़ता I आने वाले समय मेंसमाज के प्रबुद्धवर्ग को मीडिया की बढ़ती प्रभावशाली तीव्रता के लिए अनेक स्तरों पर सतर्क रहने की नितांत आवश्यकता है।अक्सर किसी भी भाषा के जानने वालो की जनसँख्या जिस क्षेत्र मे अधिक होती हैI उस भाषा से सम्बंधित संस्कृति को जानने एवं समझने वालो की जनसँख्या भी बढती जाती है और उस संस्कृति के संरक्षण की सम्भावनाए भी बढती चली जाती है Iआज का श्रोता इतना जागरूक हो गया है कि चाहे कोई समाचार पत्र हों, यापत्रिकाएँ हों, सामान्य कक्षाओं की पढ़ाई हो या कोई दृश्यमीडिया के वृत्तान्त, उनकी भाषा यदि विकृत होती है तो अवश्य ही कुछ ही घंटो में जन समूह द्वारा लिखित व्यक्तिगत तथा सामूहिक विरोध दर्ज किया जाना तय होता है। यह विरोध मिडिया की सम्प्रेषण शैली से ज्यादा उस प्रसारित स्थान की संस्कृति पर निर्भर करता हैI

सकारात्मक प्रभाव :

किसी भी स्थान विशेष में इलेक्ट्रानिक मीडिया के अंतर्गत रेडियो, टेलीविजन का प्रयोग एवं उनका प्रसारण देश के कोने-कोने तक हो रहा है। इन दोनों माध्यमों से शिक्षा, सूचना, जागरूकता, तात्कालिक खबरें तथा मनोरंजन के अनेक कार्यक्रम स्थानीय भाषओं में प्रसारित हो रहे हैं। 'सब पढ़ें-सब बढ़ें', 'छोटा परिवार-सुखी परिवार''एड्स का ज्ञान बचाए जान' एवं करोना काल में सोशल मीडिया से जागरूकता करके मीडिया ने अपना सामाजिक सरोकार निभाया है I ऐसे ही अनेक नारों के विज्ञापन समाज में व्याप्त कुरीतियों का दमन करके आदर्श सन्देश पहुँचाते हैं I समाज में मानवीय गुणों का विकास कर संस्कृति के संरक्षण में भी सहयोग करते है Iमीडिया में संप्रेषित सूचनाये संयत या शालीन चित्रण तथा शुद्ध भाषा में हो तो इनका सकारात्मक परिवर्तन तुरन्त किसी जन समूह पर देखा जा सकता है। आज हम ऐसेमोड़ पर आ खड़े हुए हैं, मीडिया के ऊपर बाजार सर्व शक्तिमान बन कर खड़ा है। बाजार ने सारीदुनिया की मीडिया को प्रेरित करने की क्षमता का प्रदर्शन शुरू कर दिया है I

नकारात्मक प्रभाव :

प्राचीन भारतीय संस्कृति या संस्कारो को विनष्ट करने का अधिकार किसने किसको और कब दे दिया ये किसी को पता नहीं चला I आज पाश्चात्य संस्कृति की आँधी में भारतीय संवेदनाएँ पिस रही हैं I ये किसकी देन है ? इसको संरक्षित कैसे किया जाये ? बाजारू मिडिया प्रसारण पर नियंत्रण कौन करे ? आज अनेक मीडिया के साधन भारतीय बाजार पर निर्भर हो गए हैं I उन्हें बचाना बुद्धिजीवी वर्ग का ही काम है । मीडिया के साथ समाज को सचेत करे ताकि बाजार आधारित मीडिया के नकारात्मक सांस्कृतिक प्रभावों को कम किया जा सके I ऐसा दावा करना की देश दुनिया में दिखाई जाने वाली सूचनाये सिर्फ सत्य है और समाज में सकारात्मक उर्जा की संपोषक है I बाजार मीडिया को देख कर सारी बाते झूठ लगती हैं I क्योंकि टी0 आर0 पी0 के चक्कर मे दृश्य मीडिया कभी-कभी जिन सूचनओं का सवहन कर रही हैI वो संस्कृति के मूल्यों को कई बार हास की तरफ ले जा रही हैं I आने वाले समय में दुनिया की सोच इतनी आर्थिक एवं मानवता रहित होने वाली है कि लोगों की नियति उनका भविष्य बाजार एवं अर्थ तय करेगा, बाजार एवं अर्थ की ताकतें तय करेंगी, एक समय मीडिया की विषय वस्तु कोई स्टेट तय नहीं करेगा बल्कि बाजार की जरूरतों पर मीडिया के तत्व होंगे I ऐसे में मीडिया में भाषागत गिरावट समाज के सांस्कृतिक मूल्यों में ह्रास का कारण बनेंगे I

निष्कर्ष :

आज मीडिया की घर घर में पहुच के कारण ही ग्राम वासियों की सोचमें भी परिवर्तन आया है, आज भारत के दूर दराज में रहने वाला हर नागरिक अपने अधिकारों के प्रति जागृत हुआ है ऐसा सिर्फ उनकी भाषा में उनके घर तक पहुच बनाने वाली मिडिया ने किया है I आज छोटे से छोटा नागरिक अपने जीवन आने वाली भूमिकाओ के निर्वहन के लिए तैयार है क्युकी भारतीय मीडिया ने सबको आगे बढ़ने के लिए अनेक मार्ग सुझाए हैं I विभिन्न प्रकार के मीडिया एवं उनके भाषागत अंतर इनको दूर करने में सहायता करते हैं I मीडिया की भाषा स्थानीय लोगों को बेहतर समझ के लिए उनको साथ लेकर चलने एवं पत्रकारिता मंच में बेहतर कार्य करने, सुचारू रूप से प्रतिक्रिया करने और आपसी सम्प्रेषण करने के लिए सदैव उत्प्रेरित करता है को लोगों स्थानीय भाषा कीमीडिया एवं मीडिया की भाषास्थानीयलोगों को शिक्षित करने, नवीन तर्कों के बारे में सूचित करने और पुनर्वास करने के भिन्न भिन्न अवसर प्रदान करता है। जहां तक हमारी सोच नहीं पहुचती मीडिया की भाषा हमें वह तक सोचने के लिए मजबूर कर देता है I अनेकदायित्वों का निर्वहन करते हुए मीडिया ने भारतीय संस्कृति के संरक्षण एवं सवर्धन में अपनी महती भूमिका निभाई है I हमें मीडिया के द्वारा जहा नए चाल चलन एवं नए फैशन का पता लगता है वही हमें अपनी पुराणी संस्कृति एवं सामाजिक मूल्यों के अनुपम धरोहरों से परिचित होने और उनसे प्रभावित होने से कोई रोक नहीं सकता I ऐसे में हम कह सकते हैं कि मीडिया ने समाज में संस्कृति फलने फूलने एवं नव सृजित होने के अवसर प्रदान किये हैं I

सन्दर्भ ग्रंथ :

1. स्त्री चिंतन की चुनौतियाँ- रेखा कस्तवार, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-49.
2. मीडिया और भाषा संस्कृति-कमलेश्वर,पृ0-56.
3 राजभाषा पत्रिका, संस्करण जुलाई-सितम्बर,2007,पृ0-33.
3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, ''हिन्दी साहित्य का इतिहास लोक भारती प्रकाशन, संस्करण-2009
4. डॉ0 नगेन्द्र, ''हिन्दी साहित्य का इतिहास संस्करण-2014
5 रंजना सक्सेना, 'हिन्दी पत्रकारिता के सामने चुनौतिया, 1992
6. आचार्य रामचन्द्र तिवारी, 'हिन्दी का गद्य साहित्य'- विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, अष्टम संस्करण, 2012
7'आजकल' पत्रिका अंक-सितम्बर-2013
8. डॉ0 भोलानाथ तिवारी, 'भाषा विज्ञान, प्रकाशन, किताब महल, प्रयागराज, 2005

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-B

ISSN : 2278-9308 December, 2023

स्वाधीनता संग्राम पर हिंदी का मनोवैज्ञानिक प्रभाव

डॉ. शालू देवी

असिस्टेंट प्रोफेसर मानविकी एवं समाज विज्ञान संकाय आई. ई. सी. विश्वविद्यालय ग्राम-कालू झंडा पोस्ट-मन्धाला, बद्दी जिला- सोलन, हिमाचल प्रदेश पिन-174103

डॉ.राजेश

एसोसिएट प्रोफेसर मानविकी एवं समाज विज्ञान संकाय आई. ई. सी. विश्वविद्यालय ग्राम-कालू झंडा पोस्ट-मन्धाला, बद्दी जिला- सोलन, हिमाचल प्रदेश पिन-174103

सारांशिका :

हिंदी ने आज़ादी के पहले भारत के नागरिकों को एक सूत्र में जोड़ने का कार्य कियाI आज़ादी के बाद भी हिंदी साहित्य ने देश में कौमी एकता एवं अखंडता को कायम रखने के लिए अपना अभूतपूर्व योगदान दियाI स्वाधीनता संग्राम के समय हिंदी साहित्यों ने ना सिर्फ आंदोलनकारियों की आवाज बुलंद की बल्कि समाज में अन्याय अत्याचार के प्रति लोगों को जागरूक कियाI सामाजिक कुरीतियों, अंध विश्वासों, नैतिक पतन की बहती धारा को रोकने के लिए हिंदी साहित्यकारों ने अपनी कलम से पूरा जोर लगा दियाI सरदार पटेल ने भी माना था की क्षेत्रीय भाषाओ के साथ हिंदी का संयोजन हमारी राष्ट्रीय एकता के लिए अमृत सामान हो सकती हैIअंग्रेजों को भगाने में सत्याग्रहियों के साथ ही कलमकारों ने अपनी भूमिका पूर्ण रूप से निभाई। उस समय के लेखक वर्ग ने ऐसी कृतियों का निर्माण किया जो क्रांतिकारियों के साथ ही देश के आम नागरिको के मानस पटल पर भी अपनेशब्दों के बल पर पूर्ण जोश भरा। स्वाधीनता की पुकार के साथ ही ऐसी कृतियों ने उस समय के जन मानस मे सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों, ऊच- नीच, छुआ-छूत, समाजिक समरसता, सांस्कृतिक संरक्षण, सामाजिक सवर्धन, नैतिक विकास के सन्दर्भ मे भी कार्य कियाI

शब्द कुंजी :स्वाधीनता संग्राम, हिंदी, मनोवैज्ञानिक प्रभाव I

स्वतंत्रता आंदोलन का मनोवैज्ञानिक दबाव एवं हिंदी साहित्य :

स्वतंत्रता आंदोलन भारतीय इतिहास का एक बड़ा गौरवशाली युग रहा हैI इस युग में अग्रेजो द्वारा पैदा की गई असहनीय पीड़ा,सामाजिक कड़वाहट, वैचारिक दंभ, हीनभावना से ग्राषित आत्मसम्मान, अपराजित गर्व,परिपीडन, मिथ्यागौरव जैसी विकृत विचार धाराओ में बदलाव की प्रेरणा के फल स्वरुप, भारतीय जनता में उत्पन्न सामजिक विरोध, विद्रोह, और सामजिक एकता ने भारतीय समाज का ताना-बना बिगाड़ दिया थाI वही दूसरी तरफ यह समयहमारे देश के वीर सपूतो एवं देश की माटी पर मर मिटने वाले अमर शहीदों के लहू को समेटे हुए हैं । स्वतंत्रता के इस महायुद्ध में भारतीय समाज के प्रत्येक वर्गके नागरिकों ने अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दियाI समय आने पर लोगो ने अपना सर्वस्व न्योछावर कर अपने प्राणों की भी आहूति दे दीI सहयोग के इसी क्रम में तात्कालिक भारतीय साहित्यकार और लेखकों ने भी अपनाभरपूर योगदान दिया जो आज भी महत्व पूर्ण है।

स्वाधीनता आन्दोलन एवं हिंदी साहित्यों का समाजमनोवैज्ञानिक प्रभाव :

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने जिस आधुनिक युग का सूत्रपात किया, उसकी मूल जड़ें तोभारतीय स्वाधीनता आंदोलन में ही थीं।मुंशी प्रेमचंद जैसे उत्कृष्ट सामाजिक चिंतन वाले साहित्यकार की रंगभूमि एवं कर्मभूमिउपन्यासने भारतीय समाज में दम तोड़ते आत्म विश्वास को जगायाI इसी क्रम में भारतेंदु हरिश्चंद्र का'भारत-दर्शन' नामक नाटक तत्कालीन भारतीय समाज की दशा एवं दिशा को प्रदर्शित कर लोगो से उनके अधिकरों के प्रति जागृत होने की प्रेरणा दिया हैIजयशंकर प्रसादमहान रचनाकार द्वारा रचित 'चंद्रगुप्त' नमक रचना ने भारत के नागरिकों को उनके गौरवशाली अतीत की झलक दिखा कर भारतीय समाज को जागृत कियाIवीर सावरकर द्वारालिखित'1857 का प्रथम स्वाधीनतासंग्राम' ने स्वाधीनता की लड़ाई में युवाओं में वीरता एवं जोश भरने में पूरा दम लगा दियाIनेहरू जी की अद्वितीय रचना 'भारत एक खोज' ने तो भारत के चारो दिशाओं में फैली सांस्कृतिक विरासत की अमूल्य निधि का वर्णन प्रमाणिक तौर पर किया जो हमारे अंदर देश प्रेम को बढ़ाता हैI लोकमान्य बाल गंगाधरतिलक की 'गीता रहस्य' ने तो नागरिकों के जीवन में यथार्थ वादी दर्शन उत्पन्न कर उन्हें देश हित में मरने-जीने के लिए

अभिप्रेरित कियाI वही शरद बाबू का उपन्यास पथ के 'दावेदार' तात्कालिक जनता में उनके अधिकारों से लड़ने के लिए प्रेरित कियाI 'अंधेर नगरी चौपट राजा' नामक व्यंगात्मक नाटक के माध्यम सेभारतेंदु हरिश्चंद्र जी ने तत्कालीन भारतीय शासकों की निरंकुशता, अंधेरगर्दी और उनकी मूढ़ता कासटीक वर्णन किया जो उनके अन्दर दूरदर्शी विचारधारा को प्रदर्शित करती हैI इसी प्रकार के असंख्य साहित्यों ने मिलकर स्वाधीनता आन्दोलन के समय देशप्रेम का तूफ़ान खड़ा कर दिया थाI भारत देश के नागरिक जो वर्षो से सोये हुए थे आज अपने नैतिक अधिकारों के लिए इतने जागृत हो चुके थे कि वे अपनी जान की बजी लगाने से भी तनिक पीछे नहीं हटने वाले थेI

हिंदी साहित्य का स्वतंत्रता आन्दोलन के जन संयोजन में भूमिका

गाँधी जी ने भी स्वीकार किया की उस समय के हिंदी साहित्यों ने भारतीय नागरिको मे देशप्रेम कीभावना को बढ़ाने मे कोई कसर नहीं छोड़ी। इन सभी उत्कृष्ट साहित्यों नेस्वतंत्रता आन्दोलन के लिए प्रेरक साहित्य के रूप मे कार्य किया हैं, ये कृतिया कालांतर में भी अविश्मर्निय हैI ऐसी हिंदी साहित्यिक कृतिया आज भी अतुलनीय हैI जिनसे आज के सामाज में भी सामाजिक चेतन का विकास किया जा सकता है ऐसी कृतियां हर समय, हर परिस्थिति में सामाजिक मूल्यों के विकास में सहायक हैं I

उपन्यास और कहानी लेखकों के अलावा कवियों ने भी अपनी कविता से भारत के नागरिकों में देशप्रेम की ऐसी अलख जगाई कि लोग घरों से बाहरनिकल आए और क्रांतिकारी बन कर स्वतंत्रता आंदोलन में हिस्सा लिया है। भारत की राष्ट्रीयता का आधार राजनैतिक एकता न होकर सांस्कृतिक एकता रही है। इन्ही विशेषताओं को मोहम्मद इकबाल ने अपने शब्दों में कुछ इस प्रकार इकबाले बाया किया है :

कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी I
सदियों रहा है दुश्मन दौरे जहां हमाराII

हिंदी ने आज़ादी के पहले भारत के नागरिको को एक सूत्र में जोड़ने का कार्य कियाI आज़ादी के बाद भी हिंदी साहित्य ने देश में कौमी एकता एवं अखंडता को कायम रखने के लिए अपना अभूतपूर्व योगदान दियाI स्वाधीनता संग्राम के समय हिंदी साहित्यों ने ना सिर्फ आंदोलनकारियो की आवाज बुलंद की बल्कि समाज में अन्याय अत्याचार के प्रति लोगों को जागरूक कियाI सामाजिक कुरीतियों, अंध विश्वासों, नातिक पतन की बहती धारा को रोकने के लिए हिंदी साहित्यकारों ने अपनी कलम से पूरा जोर लगा दियाI सरदार पटेल ने भी माना था की क्षेत्रीय भाषाओं के साथ हिंदी का सयोजन हमारी राष्ट्रीय एकता के लिए अमृत सामान हो सकती हैI

हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय एकता एवंस्वाधीनता के मूल मंत्र

हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी मानते थे कि-'हिंदी सिर्फ भाषा नहीं बल्कि विचार है जो हमें राष्ट्रीय एकता की तरफ ले जाती हैI हिंदी के मार्ग पर चल कर हम देश के सभी प्रान्तों को एक सूत्र में पिरो सकते हैं I' स्वाधीनता संग्राम के समय यह माना जाने लगा कि हिंदी की जरूरत सिर्फ सम्प्रेषण मात्र के लिए ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय एकता के लिए भी हैI अनेक कलमकारों ने हिंदी साहित्य की प्रशंसा की हैI ना केवल हिंदी बल्कि उर्दू लेखको ने भी हिंदी को राष्ट्रीय एकता की जान माना है I जिसकी एक मिशाल है निम्न लिखित पंक्तियाँ-

"हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोस्तां हमारा"

ये पंक्तियां प्रसिद्धसाहित्यकार अल्लामा इक़बाल की उर्दू में लिखी गई ख़्यातनाम गज़ल "सारे जहाँसे अच्छा हिन्दोस्तां हमारा" की हैI इस पंक्ति में हिंदी के साथ देश भक्ति को जोड़ा गया हैI आज भी ये पंक्तिया कौमी एकता के लिए मिशाल बन कर सामने आती हैंI भारतीय काव्यकारो ने तो अंग्रेजो को अपनी कलम से ऐसा ललकारा की सबकी बोलती बंद हो गई I ऐसी रचनाओंमें प्रमुखसुभद्रा कुमारी चौहान की 'झांसी की रानी' कविता ने अंग्रेजों को भारतीय नारियों के गौरवशाली इतिहास से ऐसा डराया की सब भाग खड़े हुए जिसकी पंक्तिया थी :

''सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में भी आई, फिर से नई जवानी थी,
गुमी हुई आजादी की, कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी,
चमक उठी सन् सत्तावन में वह तलवार पुरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुंह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी की रानी थी।''

पं. श्याम नारायण पांडेय जी ने महाराणा प्रताप की अतुलनीय स्वाभिमान, गौरवशाली शौर्य एवं सर्वविदित वीरता की प्रसंशा करते हुए उनके घोड़े 'चेतक' के लिए अपनी रचना 'हल्दी घाटी' में जिन पंक्तियों को लिखा शायद ही आज

तक कोई भारतीय इन पंक्तियों को भूल पाया हो जिसमे देशभक्ति, स्वामिभक्ति की भावना का परिचय चेतक जैसे निरीह जानवर के माध्यम से कराया गया :

''रणबीच चौकड़ी भर-भरकर, चेतक बन गया निराला था I
राणा प्रताप के घोड़े से, पड़ गया हवा का पाला था II
गिरता न कभी चेतक तन पर, राणा प्रताप का कोड़ा था I
वह दौड़ रहा अरि मस्तक पर, या आसमान पर घोड़ा था II''

माखनलालचतुर्वेदी ने स्वाधीनता संग्रामके संघर्षमय काल में देश के लिए शहीद होने वीर सपूतों के प्रति अपनी अतुलनीय श्रद्धा दिखाई है औरमातृभूमि-पर होने वाले बलिदानों को संसार के सभी प्रकार के बलिदानों में सर्वोपरि बताया है। इन्होने अपनी बातो को रखने के लिए एक फूल को माध्यम के रूप मे चुना और इतनी संजीदगी से देश प्रेम का पाठ जन मानस को पढाया की लोग आश्चर्य चकित रह गएI जिनकी लाइन थी :

''चाह नहीं, मैं सुर बाला के गहनों में गूँथा जाऊँ।
चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ॥
चाह नहीं, सम्राटोंकेशवपर, हेहरि, डाला जाऊँ।
चाह नहीं, देवोंकेसिरपरचढूँ, भाग्य पर इठ लाऊँ॥
मुझे तोड़ लेना वनमाली।
उस पथ में देना तुम फेंक॥
मातृ-भूमि पर शीश चढ़ाने।
जिस पथ जावें वीर अनेक II''

इन सब हिंदी साहित्यकारों,कवियों, लेखकों ने मिल कर भारत की जनता को जितना जागरूक किया शायद उस समय किसी अन्य माध्यम ने नहीं कियाI आज़ादी की जंग मे हमें फ़तेह दिलाने के लिए हम हिंदी साहित्य के सदा ही ऋणी रहेंगेI भारतीय इतिहास का चाहे कोई युग क्यों ना आये, विज्ञानं कितना भी विकास क्यों ना कर जाये लेकिन जो कार्य सीमित संसाधनों और हजारो पाबंदियो में हिंदी साहित्यकारों ने किया वो किसी और के बस का नहीं थाI

हमें हमेशा इस बात का गर्व रहेगा की हम हिंदी भाषी हिन्दुस्तानी है जिस हिंदी के बल पर हमने कभी आज़ादी पाई थी आज भी हम उस भाषा के विकास संरक्षण सवर्धन एवं उन्नयन के लिए प्रयाशरत हैंI

निष्कर्ष :

हमें हिंदी के ओजस्वी रचनाओ के बल पर, अनेक क्रांतिकारियों शहीदों की बलि दे कर, लाखो की चिताओं को मुखाग्नि दे कर आज़ादी मिल गई लेकिन हम आजादी का मायने ही भूल गए आज भारत के नागरिक जिस तरह के अलगाववाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद, धर्मवाद, भ्रस्टाचार, स्वार्थवाद, जैसी कुरीतियों के साथ खड़े है उसमें वह भारत का राष्ट्रवाद हम भूल चुका हैI हमें ऐसी हिंदी रचनाये फिर चाहिए जो हमें जागरूक कर सके हमें एक कर सके हमारी रष्ट्रीय एकता को बल प्रदान कर सकेI हमें ऐसा भविष्य नहीं चाहिए जहा फिर गुलामी का अंधकार होI तो हमें जागना होगा अपने स्व को जगाना होगाI स्वर्णिम अतीत को याद कर गाँधी, सुभाष, टैगोर, तिलक, आज़ाद, सपनों को साकार करना होगाI

26 जनवरी 1963 को संगीतकार सी. रामचंद्रन द्वारा रचित गीत जिसे लता मंगेशकर ने गया था जिसके बोल थे:

ऐ मेरे वतन के लोगों,
ज़रा आँख में भर लो पानी
जो शहीद हुये हैं उनकी,
ज़रा याद करो कुर्बानी II

आज़ादी के 16 साल बाद निर्मित यह गीत आज़ादी के बाद की भारत की दशा को प्रदर्शित कर रहा हैI जिसमें गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार जैसी अव्यवस्थाओं से जूझते भारत की दशा का वर्णन हैIइकबाल जैसे उर्दू फनकार द्वारा लिखा 1905 की यह नज्म कि 'सारे जहां से अच्छा हिंदुस्तां हमारा', अब झूठी साबित होने लगी क्युकी भारत की मौजूदा परिस्थिति बहुत इससे भिन्न है। आज के असंतुलितभारतीय परिवेश में ऐसी धारदार रचनाओं की जरूरत महसूस की जा रही हैजो भारत केजन जन सके कर आंदोलित को उनमें जागृति ला सके। भारतीय समाज मे

तेजी से पनप रहे भ्रष्टाचार व अराजकता को दूर कर हर भारतीय नागरिक के ह्रदय को निर्मल कर उनमे भारतीय गौरव-बोध एवं मानवीय मूल्यों का संचार कर सकेI

कवियों और साहित्यकारों की यह सामाजिक जिम्मेदारी बनती है कि वे अपने भारत देश के बारे में सामाजिक चिंतन का विकास करे सामाजिक परंपरा को जीवित रखने के लिए रचनाओं का निरंतर निर्माण करेI जिससे हिंदी साहित्य में मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचंद, भारतेंदु हरिश्चंद्र, जैसे साहित्यकारों की परंपरा का अनुपालन हो सके I साहित्यकार को कभी किसी मोह केवशीभूत होकर लेखन कार्य नहीं करना चाहिए। समर्पित साहित्यकार का जीवन राष्ट्र जागरण के लिए उदहारण स्वरुप मन जाता है I राष्ट्रोत्थान के लिए साहित्यकार युगों से अग्रणी जाने जाते हैI साहित्यकारों ने स्वाधीनता की मशाल को प्रज्वलित किया और उस मशाल का प्रकाश पूरे राष्ट्र में जन जन तक पहुचाने का कार्य उनके साहित्यों ने किया I

सन्दर्भ ग्रंथ :

1: **अनिल कुमार पाण्डेय: कब समझेंगे हम-हिंदी है हम वतन है हिंदोस्ता हमारा, खबर डिजिटल डॉट कॉम, 21 मार्च 2023. ई-समाचारपत्रhttps://khabardigital.com/article/post-6**

2: गिरीश्वर मिश्र: स्वधीनता आन्दोलन एवं लोक साहित्य, 'पाठशाला' महात्मा गाँधी हिंदी अंतराराष्ट्रीय विश्व विद्यालय वर्धा, पृष्ठ-1-9, ई-पत्रिका
http://epgp.inflibnet.ac.in/epgpdata/uploads/epgp_content/S000018HI/P001545/M017648/ET/1475744034HND_P6_M-29_SwadhintaAandolanAurLokSahitya.pdf

3: राकेश कुमार आर्य : स्वतंत्रता आन्दोलन मे हमारे साहित्यकारों का योगदान, प्रवक्ता डॉट कॉम, 25 जनवरी 2019. ई-पत्रिकाhttps://www.pravakta.com/contribution-of-our-writers-in-the-freedom-movement/

4: सलिल सरोज : स्वतंत्रता संग्राम में कवियों शायरों लेखको का योगदान, वेब दुनिया, 12 मार्च 2023. ई-पत्रिका https://hindi.webdunia.com/independence-day-special/contribution-of-poets-poets-and-writers-in-freedom-struggle-121081200041_1.html

5 : दिव्य हिमाचल : स्वतंत्रता आन्दोलन मे साहित्य का योगदान, 12 अगस्त 2018 ई-समाचार पत्र

आदिवासी समाज केचिंतन और चुनौतियों कादहकता दस्तावेज संजीव काउपन्यास साहित्य

डॉ. भगवान रामकिशन कदम
हिंदी विभाग मास्टर दीनानाथ मंगेशकर महाविद्यालय, औराद शहाजनी
मो. 9404466055 ,ईमेल: bhagwankadam6240@gmail.com

आदिवासी समाज की वेदना, त्रासदी और जीवन संघर्ष की अभिव्यक्ति वर्तमान समय में सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में हो रही है, जिससे हिंदी साहित्य भी अछूता नहीं है। हिंदी में रेणु कृत'मैलाआंचल', नागार्जुन के 'वरुण के बेटे', उदय शंकर भट्ट 'सागर लहरी और मनुष्य', रंगेयराघव 'कब तक पुकारू', राजेंद्र अवस्थी 'जंगल के फूल', शानी'सांप और सीडी', योगेंद्र नाथ सिंह'वनकेमनमें,' मणि मधुकर 'पिंजरे में पन्ना', देवेंद्र सत्यार्थी 'रथ के पहिए', वीरेंद्र जैन'पार, डूब', मैत्री पुष्पा'अल्मा कबूतरी', और संजीव कृत'धार'आदि उपन्यासों में आदिवासी समाज के गौरवशाली अतीत सांस्कृतिक पर्व त्योहार और वर्तमान दुर्दशा की भावभीनी अभिव्यक्ति हुई है। इन उपन्यास कारों ने अपने उपन्यासों में आदिवासी समाज के दुख, दर्द और त्रासदी को सशक्त रूप में अंकित कर मानवतावादी विचारधारा का आगाज किया है।

आदिवासी समाज को केंद्र में रखकर अपने उपन्यासों का ताना-बाना बुनने वाले समकालीन उपन्यासकारों में जनधर्मीकथाशिल्पी संजीव के उपन्यास'सावधान! नीचे आग है','जंगल जहां शुरू होता है','धार,''पांव तले की दूब'आदि उपन्यासों में भारतीय कोयला आंचल तथा बिहार के पश्चिम चंपारण में स्थित संथाल,थारू,मुंडा, होआदि आदिवासी समूह आज भी किसी प्रकार जानवरों से बद्दतरजीवन जी रहें हैं, इसका यथार्थ चित्रण किया है।

आदिवासी यह शब्द 'आदि+वासी'इन दो शब्दों के योग से बना है, जो एक साथ व्यक्ति, समूह और कालवाचक है। इसमें 'आदि' का अर्थ है प्रथम, पहले, आरंभिक, प्राचीन और मूल। तो 'वाशी' से तात्पर्य है, निवासी, बसा हुआ या रहने वाला।आदिवासी अर्थात किसी स्थान, प्रदेश या राज्य के मूल निवासी तथा प्रारंभ से रहने वालेलोग।हमारे देश में आदिवासी समाज आज भी चारों ओर से असुरक्षित है, जिन्हें बाजारी सामग्री की भांति खरीदा और बेचा जाता है और ये अभागी इस देश की भूमि पर रहकर भी इसे अपनी भूमि नहीं कह सकते। लोकतंत्र उनके लिए एक ख्वाब मात्र है, इनकी अस्मत का शोषण मूल्य शून्य होता है। विकास के नाम पर इन्हें केवल लूटा जाता है।प्राकृतिक आपदा,दावाग्नी,बाढ़,सूखा, और कुपोषण से इन्हें मौत का शिकार होना पड़ता है। तो दूसरी ओर यहां के तथाकथित भद्र समाज केराजनेता ,अधिकारीवर्गजमींदार, ठेकेदार, पूंजीपति और साहूकारआदि इनआदिवासियों को आज भी केवलश्रम करने के लिए और अत्याचार सहने के लिए पैदा होने वाला एक लाचार समाजमात्रमानतेहै। पुलिस इन्हें केवल चोर, डाकू और नक्सली समझते हैं। तो राजनेता को उनकी याद केवल चुनाव के दिनों में आती है। इस प्रकार चारों ओर सेअसुरक्षित परिवेश में यह आदिवासी समाज आतंकित जीवन किस प्रकार जीरहा है, इसका यथार्थ अंकन संजीव अपने उपन्यास 'जंगल जहां शुरू होता हैं'में कियाहैं, उपन्यास काबिसराम अपनीबेटी केमौतपर विलापकरते हुए कहता हैं कि'हमारे तोहरतरीकासेमौवत लिखलबाद,एबेटी,जिमीदारसे, डाकू से,देवता-पितासे, भूत-भवानीसे, पुलिस -लेखपालसे....अरेकबनसुखदेखलूऐबेटीईईई..'1ठीक इसी तरह 'धार'उपन्यास कीसंथाल आदिवासी नायिका मैनाभीआपने उपरअन्याय अत्याचारकरने वालेसमाज, सरकार, प्रशासन व्यवस्था, पूंजीपति, पुलिस और भ्रष्ट न्याय व्यवस्थाआदि से संघर्ष कर जब थक जाती है, तब अपने आप को सुरक्षित पाते हुए कहती है कि 'चारों तरफ अंधेरा था। वह लाख जतन करती की कहीं से आशा की कोई धार इस अंधेरे को चीर सके, लेकिन अंधेरा गेंदे की खल बन गया था, कट-कटकरजुड़ता हुआ'।2इस प्रकार आदिवासी समाज की अवस्था चक्रव्यूह में फंसे आदमी की तरह सुरक्षित है' जिसके अंदर आने के लिए अनेक रास्ते हैं किंतु बाहर जाने के सभी रास्ते बंद है।

आदिवासी समाज कोबाहरीसमाज केआक्रमण औरआपने समाजमें स्थित अज्ञानता, अंधविश्वास,डायनप्रथा,व्यसनाधिनता, जातपंचायत,सामाजिक बहिष्कार जैसीअनेक क्रुर प्रथापरंपरा सेभीसंघर्ष करना पडताहैं।'जंगल जहां शुरू होता है' उपन्यास में थारू आदिवासीबिसराम द्वारा अपने बेटी को गाय का दूध पिलाना और उसकी पत्नी को पुलिस द्वारा जेल में हिरण का मांस खिलाना, थारू समाज की परंपरा अनुसार एक घोरसामाजिक अपराध माना जाता है। जिसके कारण संपूर्ण बनकटा गांव के थारू आदिवासी बिसराम के परिवार

पर सामाजिक बहिष्कार डालते हैं और उसे मजबूर करते हैं कि वह जब तक पूरे थारू समुदाय को भोजन नहीं खिलता तब तक उसे समाज के द्वारा बंद रहेंगे।इसी प्रकार'धार' उपन्यास के संथाल आदिवासियों में भी सामाजिक बहिष्कार की क्रूर प्रथा देखने को मिलती है। संथाल आदिवासियों का ओझा अपनी बस्ती में रहने वाले किसी भी स्त्री पुरुष का धर्म के नाम पर संथालों काशोषण करते रहता है। मैनाकी मां जब ओझा को बकरा और शराब नहीं देती, तब वह गांव वालों को बहका कर उसे डायन घोषित कर मौतकेघाटउतारदेताहैं।

ऐसीविषमपरिस्थितियों में आदिवासी युवाकेसामने अनेकसमस्या खडीहोतीहैं, उसे क्या करना चाहिए और वहक्या कर रहा है, इसका उसेपता हीनहीं चलता।उनकीपरिस्थितिहीउनकेजीवन कोमोडदेतीरहती हैं।यहलोगआपनीमर्जीसे कुछनहीं करतातोमजबूरी में करतें दिखाई देता है।'जंगल जहां शुरू होता है' उपन्यास में थारू आदिवासी युवक काली अपने परिवार की दीन हीनदशा, जमींदारों की दहशत, पुलिस का अन्याय ,अत्याचार सेउबकरडाकू बन जाता है।और पुलिस केअत्याचार सेअपने परिवार को बचाती हुई कहता है"बचताक्या है ? जंगल! औरजंगल में जिंदा रहनेकेलिए, हमें भीवही करना होगा जोजंगल केलिए जरूरी है।"३इस तरह आज देश की राजनीतिक,सामाजिक और प्रशासनिक भ्रष्ट व्यवस्था और विषम परिस्थिति से जूझते-जलाते अनेक आदिवासी परिवार उजाड़ रहे हैं और इस व्यवस्था से विद्रोह करने के लिए यह लोग नक्सली बन रहे हैं।'धार'उपन्यासकी नायिका मैनाअपने हंसते खेलते परिवार को किस प्रकार से तहस-नस किया गया इसे व्यक्त करते हुए कहती है कि'मां को डायन बताकर कुत्तीकी तरह पीट-पीट कर भगा दिया, आप को भगत का झांसा देकर लूट गया,पति फोकल की आदमीयतखरीद ली गई,बेटी सितवाकोलालच देकर बरगला दिया गया। फिर मेरी झोली में बचता क्या है? एक प्रति हिंसा की आग और नफरत का जज्बा,जो मुझे कभी भी चैन नहीं लेने देते"।4मैनाअपने समाज की बदहाली से उबारने के लिए सभी को संगठित कर कुछ करना चाहती है किंतु पुंजीपति महेंद्र बाबूजैसे लोग अपनी पूंजी के बल पर इन आदिवासियों के परिवार को तोड़कर उन्हें आपस में लड़ा कर उनके मन में उभररहीआगकोसुलगनेसेपहलेही बूझानेकेअनेक षड्यंत्र रचते हैं।'सावधान! नीचे आग हैं'उपन्यास में कोयला खदान में काम करने वाले आदिवासी मजदुरोंकेलिए आयें सरकारी कीविकास निधि कापैसा मैनेजमेंट वाले स्वयं केविलासमें तमाशों केआयोजन में उड़ाते हैं।तबआशीष कहताहै "कॉलनीकेबच्चों केलिए स्कूल भले ही नखोलसके, आखाड़े, रामायण,चैता, लौड़ों के नाचमें पैसे देंगे, हमें जिंदगी भरभेडाबनाएं रखने केलिए वेसब कुछ करेंगे"।5इससे स्पष्ट होता है कि आदिवासी समाज केसामने अपने बच्चों कीउचित शिक्षा सबसे बड़ी चुनौती है।सहीतरीके से इन्हें शिक्षा और रोजगार मिलेगा तोइस समाज में परिवर्तन होसकता है।

संजीदारचनाधर्मीकथाशिल्पी संजीव नेउपन्यासों केमाध्यम से आदिवासी स्त्री कीसुंदरता, आशा आकांक्षा, वेदना, पीड़ा, संत्रास और उपेक्षा कायथार्थ केधरातल पर चित्रण करउसका शारीरिक, मानसिक, और लैंगिक शोषण करनेवाले विभिन्न स्त्रोतों, स्थितियों औरव्यक्तियों कानकाबउताराहैं।आदिवासी स्त्री नकेवल अपने पति द्वारा शोषित होतीहैंऐसानहीं है तोयहां कीहरसमाज और व्यवस्था केहरतंत्र द्वारा वहबल्तकारीतहोनेकेलिए अभिशिप्तहै ऐसालगताहै।'जंगल जहां शुरू होता हैं' कीबिसरामबहुऔर मलारी,'धार'कीमैनाऔरशंकरबहु,'सावधान! नीचे आग है' कीमेरीहेम्ब्रम, 'पांवतले दूब'कीफिलिफकीमां, 'सागरसीमांत' कीनसिबन,'टीस'केशिब्बूकाकाकीपत्नी आदिनारीचरित्र सामाजिक, प्रशासनिक, राजनितिक व्यवस्थाद्वारा छलीगई।उपेक्षा, प्रताड़ना, शोषण काशिकार हुई वालीनारियां हैं,जोअपनीविषमपरिस्थितियों से लड़ झगड़ करआपनी संघर्षशीलताकापरिचय देतीहैं।

हिंदी उपन्यास साहित्य को एक नया मोड़ देने वाले संजीव ने आदिवासी समाज कीअनुभूतियों और संवेदनाओं को प्रत्यक्ष उनके साथ रहकर बरखा है और उसकी सहानुभूति पर एक अभिव्यक्ति की है। इस समाज के प्रति संजीव की कोई अलग किस्म की संवेदना जुड़ी हुई है जो उन्हें लगातार आदिवासी बहुल क्षेत्र की ओर खींचती रहती है और वे संवेदना ही उपन्यास कहानी का रूप धारण कर पाठकों के सामने मुखरित होती है। इस लेखन के द्वारा वे इस समाज को आदर, मान सम्मान, प्रतिष्ठा देखकर वें इस समाज की उत्कृष्ट प्रतिभाओं को उजागर करते हैं। अन्य समाज की अपेक्षा अपने पिछड़ेपन और सामाजिक उपेक्षा से हताश निराश, कुंठित आदिवासी समाज को संजीव जागृत कर इस प्रस्थापित शोषण एवं दमनकारी व्यवस्था से संघर्ष करने की प्रबल प्रेरणा देते हैं उनके उपन्यासों के चरित्र अपनी दीनहीन दशा एवं स्थिति पर रोने की अपेक्षा उससे साहसपूर्ण संघर्ष करते हैं क्योंकि संजू के अनुसार जिस समाज में संघर्ष करने की भावना एवं क्षमता होती है उसका ही उत्कर्ष होता है और अस्तित्व सुरक्षित रहता है। इस प्रकार संजीव अपने उपन्यासों के माध्यम से भारतीय आदिवासी समाज की दीन हीन दशा का चिंतन कर इस समाज के सामने खड़ी चुनौतियों को सटीक रूप से अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1) संजीव – जंगल जहां शुरू होता हैं, पृ.सं.21

2) संजीव – धार पृ.सं.82

3) संजीव – जंगल जहां शुरू होता हैं, पृ.सं.114

4) संजीव – धार,पृ. सं.111

5) संजीव – सावधान ! नीचे आग हैं, पृ. सं.114

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-B

ISSN : 2278-9308 December, 2023

आज़ादी के 75 वर्ष : स्त्री साहित्य : चिंतन एवं चुनौतियां

डॉ.प्रकाश भगवान शिंदे

हिंदी विभाग,पानसरे महाविद्यालय,अर्जापूर

डॉ गोविंद गुंडप्पा शिवशेट्टे

हिंदी विभाग, महाराष्ट्र महाविद्यालय, निलंगा

शोध की भूमिका -

स्त्री साहित्य मात्र साहित्य नहीं बल्कि सामाजिक,आर्थिक,राजनीतिक स्तर पर का एक बृहद आंदोलन हैं । जिसने सदियों से हाशिए पर रही स्त्री की आवाज को शिद्दत से उठाया है। स्त्री साहित्य स्त्री के प्रति समाज की सनातनी मानसिकता को बदलने, प्रथा परंपराओं की सच्चाई को सामने लाने, सबसे महत्वपूर्ण है स्त्री को बदलने की कारगर भूमिका लेकर चला है। स्त्री साहित्य ने अपने लेखन से सैकड़ो सवाल उपस्थित किए हैं। ये ऐसे सवाल है जिनका उत्तर किसी पुस्तकालयों और संग्रहालयों में नहीं मिल सकता। स्त्री की मुक्ति में ही समाज की मुक्ति का रहस्य छुपा है। स्त्री मुक्त हो और समाज में सम्मान के साथ जी सके, बराबरी के साथ सामाजिक निर्माण में भाग ले सके। स्त्री समाज वह समाज है चाहे वह किसी भी वर्ग की हो गरीब हो, दलित हो, मध्य वर्ग की या अभिजन परिवार की या अल्पसंख्यक हो अंततः उसका स्त्री होना ही उसकी सामाजिक स्थिति को, सामाजिक अधिकारों एवं राजनीतिक अधिकारों की लक्ष्मण रेखा तय करता है। स्त्री की स्वतंत्र पहचान की पहली मुठभेड़ घर में और बाहर स्त्री के बारे में बनाए गए मानदंडों से होती है। वर्तमान स्थिति में स्त्री आंदोलन का पहला दायित्व है कि स्त्री के बारे में बने बनाए गए मानदंडों, नैतिक-अनैतिक मान्यताओं एवं वैज्ञानिक समझदारी के बीच के अंतर को विचारधारात्मक संघर्ष का मुद्दा बनाएं । स्त्री ना तो शरीर मात्र है और ना ही समस्त नैतिकता का स्रोत और ना ही सामाजिक एवं पारिवारिक परिस्थितियों की बाधा स्त्री एक सामाजिक निर्मिती है और प्रतिकूल परिस्थितियों में ही सकारात्मक ऊर्जा लेकर चलती है।

शोधालेख का उद्देश्य -

भारतीय साहित्य और हिंदी साहित्य के संदर्भ में इस समालोचना दृष्टि के चार मुख्य प्रयोजन हैं :

1. भारतीय समाज, संस्कृति और साहित्य में स्त्री की अस्मिता की खोज करना ।
2. पुरुष प्रभुत्व का बोध और उसका विरोध दर्ज करना।
3. स्त्रियों की रचनाशीलता की परंपरा की पहचान।
4. स्त्री की संवेदनशीलता और कल्पना के विशिष्ट स्वरूप को समझना।

समाज में स्त्री के अधिकारों के पक्ष में और स्त्री-उत्पीड़न के खिलाफ जब भी आवाज उठी है स्त्री-विरोधी चिंतकों एवं संगठनों ने स्त्रीवाद और स्त्री संगठनों पर घृणित रूप में हमला बोला है। आजादी के पहले और आजादी के बाद स्त्री के अधिकारों की लड़ाई को हेय दृष्टि से देखा गया। स्त्री संगठन एवं चेतना वृद्धि के उपायों को विदेश से आयातित घोषित किया गया। जबकि हकीकत यह है कि, भारत में स्त्री के अधिकारों के विचारों का उदय स्वाभाविक सामाजिक-राजनीतिक संघर्षों के दौरान हुआ और ये विचार जितने विदेशी नजर आते हैं उतने ही देशी भी नजर आते हैं। विचारों के परंपराओं की खूबी यह होती है कि जो विचार सामाजिक अंतर्विरोधों की सृष्टि होते हैं

और अंतर्विरोध का समाधान देते हैं वे हमेशा देशज होते हैं। विचारों में देशी-विदेशी का फैसला इस बात से नहीं होता कि कौन सा विचार किस देश में जन्म लेता है। बल्कि विचारों का फैसला इस पैमाने से होना चाहिए कि आखिर विचार किन वर्गों एवं लिंग के पक्ष में हैं। विचारों की वर्गीय भूमिका होती है। साथ ही लिंगीय भूमिका भी होती है।

स्त्रीवादी विमर्श और स्त्री के अधिकारों की लड़ाई हमें देशी लड़ाई प्रतीत होगी। सनातनवादियों का स्त्री अधिकारों के खिलाफ आधुनिक हमला वस्तुतः प्रतिगामी प्रयास है और इसका प्रत्येक स्तर पर जवाब दिया जाना चाहिए। सतह पर स्त्री-विमर्श जितना सरल नजर आता है वास्तव में उतना सरल नहीं है। सरल इसलिए नजर आता है क्योंकि स्त्री की समस्याएं हमेशा उत्तेजनापूर्ण शैली में व्यक्त होती हैं। उत्तेजनात्मक शैली में व्यक्त रचनाओं में अनुभवों का अभाव होता है। ये ऐसी रचनाएं होती हैं जो अपने पाठ के बाहर जाना ही नहीं चाहतीं। अधिकांश स्त्रीवादियों की शब्द पर इतनी गहरी आस्था होती है कि वे उनके संदर्भ की ओर मुड़कर देखना भी पंसद नहीं करतीं। इस क्रम में यथार्थ का संकुचन होता है। शोषण और कष्ट में ही सारी बातें संकुचित होकर रह जाती हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो यथार्थ का भाषा में संकुचन होता जाता है।

भारत में स्त्री आंदोलन की परंपरा औपनिवेशिक शासन के खिलाफ राष्ट्रीय संघर्ष से शुरू होती है और स्त्रियां इस संघर्ष में अनेक रूपों में संघर्ष करती नजर आती हैं। क्रांतिकारी गुटों की कार्रवाइयों में स्त्रियों ने सक्रिय रूप से हिस्सा लिया। गांधी जी के शांतिपूर्ण संघर्ष में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया साथ ही स्वतंत्र महिला संगठनों के जरिए भी स्वाधीनता संग्राम लड़ा। इस त्रि-स्तरीय प्रक्रिया में संघर्ष के बाद स्त्रियों को पुरुषों के बराबर संवैधानिक दर्जा मिला। समान अधिकार मिले और उसे उसका व्यक्तित्व एवं अस्मिता की प्राप्ति हुई। भारत में स्त्रियों को अधिकार खैरात या कृपा से नहीं मिले बल्कि कुर्बानियों से मिले। ये अधिकार वाद-विवाद से नहीं मिले बल्कि सामाजिक संघर्षों में शिरकत से मिले हैं। जिन लोगों ने आजादी की लड़ाई नहीं लड़ी और कुर्बानियां नहीं दीं वे स्त्रियों के संघर्ष एवं कुर्बानी को एकदम नहीं समझ सकते।

स्त्रियों के अधिकारों की लड़ाई साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष, पूंजीवाद विरोधी संघर्ष की देन है। यहां स्त्री के अधिकारों के लिए चलाए संघर्ष का आधार एवं लक्ष्य विकसित पूजीवादी राष्ट्रों में चल रहे स्त्री के संघपों से मूलगामी तौर पर अलग है। पश्चिम के स्त्री आंदोलन को साम्राज्यवाद से संघर्ष नहीं करना पड़ा जबकि भारत के स्त्री आंदोलन को साम्राज्यवाद से संघर्ष करना पड़ा। जबकि सामंतवाद एवं पूंजीवाद के खिलाफ संघर्ष स्वातंत्र्योत्तर दौर की केंद्रीय विशेषता है। साम्राज्यवाद से संघर्ष की प्रक्रिया में जो महिला संगठन उभरकर आए उनके पास आजाद हिंदुस्तान का अपना सपना भी था। स्त्रियों की मांगों एवं अधिकारों को लेकर संघर्ष करने और इनकी प्राप्ति के लिए कुर्बानियां देने का जज्बा भी था। ये ऐसे महिला संगठन थे जिनकी नजर सर्वहारा औरत पर टिकी थी, किसान औरत पर थी, शहरी औरत पर थी। इनके [लिए महिला आंदोलन फैशन न था और न विदेश यात्रा या फैलोशिप प्राप्ति या विदेशी सहायता प्राप्ति का स्रोत ही था। अतः स्त्री अधिकारों एवं स्त्री संगठनों पर जब भी विचार-विमर्श करें तो यह तथ्य हमेशा ध्यान रखें कि ये विदेश से आयातित नहीं हैं बल्कि इसी देश की उपज हैं। स्त्री संगठन, स्त्री आंदोलन और स्त्री साहित्य पैदा इसलिए हुआ क्योंकि इस समाज में औरतें थीं। जब औरतें होंगी तो उनका साहित्य भी होगा, संगठन भी होगा और अधिकार भी होंगे। जो लोग यह कहते हैं कि स्त्रीवाद आयातित हैं वे वस्तुतः हमारे समाज में स्त्री की मौजूदगी से ही आंखें फेर रहे होते हैं। जब समाज में सभी जगह औरतें हैं, उनका शोषण है, उत्पीड़न है और उनके प्रति लिंगभेदीय रवैया है तब यह कैसे संभव नहीं होगा कि उनकी आवाज ही

सुनाई न दे, वे संघर्ष करती दिखाई न दें। अतः स्त्रियों के संघर्ष, संगठन एवं साहित्य के प्रति सशंकित भाव से देखने की जरूरत नहीं है। सशंकित भाव से देखने का अर्थ है स्त्री के वजूद को अस्वीकार करना।

स्त्री शोषण के कुछ भी कारण रहे हों (शारीरिक, आर्थिक, मनौवैज्ञानिक, भाषायी, राजनीतिक, ज्ञान मीमांसात्मक इत्यादि) वे सभी एक दूसरे से विपरीत होते हुए भी भाषा के ही माध्यम से एकजुट हुए। भाषा के ही माध्यम से हमने विश्व को देखा। लिंगीय उपमाओं के जरिए ही दुनिया की व्याख्या की। हम चाहें या न चाहें लिंगीय उपमाओं एवं भाषा के माध्यम से हमारे सोच-विचार का जो ढांचा बना उसी के जरिए स्त्री की दुनिया देखते रहे और इस भाषा के माध्यम से बनी संरचनाओं से पलायन करते रहे। स्त्री हमेशा से पुरुष संदर्भ से ही परिभाषित की गई। जिन सरल कोटियों को गढ़ा गया वे सतह पर जितनी सरल दिखाई देती हैं असल में उसके मर्म में प्रवेश करें तो मामला कुछ और ही नजर आता है। मसलन सरल कोटियों को देखें तो पाएंगे कि कुछ चिंतक मानते हैं कि स्त्री या तो अबला है या काली है, दुर्गा है, भवानी है। यानी कमजोर है या ताकतवर है। अथवा स्त्री-पुरुष समान हैं, शिव और शक्ति की तरह। एक ही गाड़ी के दो पहिए की तरह। अथवा यह भी मिलेगा कि स्त्री एवं पुरुष भिन्न हैं अथवा एक दूसरे के पूरक हैं। सीता-राम की तरह, राधा-कृष्ण की तरह, अर्द्धनारीश्वर की तरह। किसी भी सांस्कृतिक परंपरा में स्त्री-पुरुष के बारे में उपरोक्त कोटियों में से कोई भी एक या अधिक कोटियां मिल जाएंगी। किंतु धार्मिक संरचना में भेदभावपूर्ण ढांचा होता है, वहां छोटे-बड़े, गरीब-अमीर, छोटी जाति, ऊंची जाति आदि के वर्गीकरण होते हैं। छोटे-बड़े के वर्गीकरण के बिना धार्मिक ढांचा चल ही नहीं पाता। भारतीय सभ्यता में विचार-विमर्श की प्रक्रिया में संस्कृति पर धर्म हावी रहा है और संस्कृति को उसने श्रेष्ठतम रूप में विकसित किया किंतु धर्म के साथ। संस्कृति का वह रूप लेखन में कम मिलता है। जहां धर्म हावी न हो। यहां शृगार रस में डूबी नायिका है तो दूसरी ओर आदर्श मां के रूप में काली, तारा, भुवनेश्वरी, दुर्गा के रूप भी हैं। श्रृंगार रस सिक्त नायिका और आदर्श मां वस्तुतः एक ही विचारधारा के एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। स्त्री जहां मन बहलाव का साधन है वहीं दूसरी ओर आदर्श मां भी है।

भारतीय परंपरा पर गौर करें तो पाएंगे कि स्त्रियों को हमेशा द्वयर्थक संदेश संप्रेषित किए गए। एक तरफ काली का संदेश तो दूसरी तरफ शृंगारी नायिका का संदेश था। स्त्रियां इन दोनों ही संदेशों से गतिशील होती रहीं और सामाजिक विकास की प्रक्रिया में आगे बढ़ती रहीं। स्त्रियों को आगे बढ़ने का मौका इसलिए मिला क्योंकि उन्हें द्वयर्थक संदेश दिए गए। फलतः सृजन के क्षेत्र में, खासकर साहित्य सृजन के क्षेत्र में स्त्रियों की लंबी परंपरा का निर्माण हुआ। स्त्रियों के लेखन को भारत में हेय कभी नहीं माना गया किंतु उसकी उपेक्षा जरूर हुई। स्त्रियों के वैदुष्य को लेकर कभी उपेक्षा नहीं थीं किंतु विदुषी स्त्रियों को जो सम्मान मिलना चाहिए वह नहीं मिला। पुरुषों के द्वारा पैदा की गई बाधाओं एवं व्यवस्थाजनित बाधाओं के बावजूद स्त्री कविता की ऋग्वेद से लेकर आज तक काव्य परंपरा दिखाई देती है। सत्संग एवं ईश्वरोपासना के बहाने मध्यकाल में स्त्रियां घर की कैद से बाहर आई और बेहतरीन कविताएं लिखने में समर्थ रहीं। स्त्रियों की दुर्दशा देखकर स्त्रियों के पक्ष में अभिजन कुलों की स्त्रियों का एक बड़ा हिस्सा मध्यकाल में सृजन क्षेत्र में आता है। स्त्रियों की सक्रियता ने, इस तरह के हस्तक्षेप ने उस मिथ को बार-बार तोड़ा कि पुरुष श्रेष्ठ होता है। श्रेष्ठत्व को कभी भी हमारे यहां स्त्रियों ने पुरुषों की बपौती नहीं माना।

भारतीय परंपरा में स्त्री विमर्श की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता यह रही है कि स्त्री-पुरुष लिंग या योनि केंद्रित संबंधों के रूप में व्याख्यायित नहीं हुए। यही वजह है कि परंपरा में आई स्त्री विदुषियां कभी भी शास्त्रार्थ में, सृजन में आत्मरक्षात्मक मुद्रा में नजर नहीं आतीं। स्त्रियां हमारे यहां नकारात्मक तत्वों की प्रतीक नहीं रहीं बल्कि सकारात्मक इमेज को ही उभारती रही हैं। इस विवेचन में जाने का उद्देश्य यह है कि स्त्री के हकों के लिए लड़ने

वाले यह जानें कि स्त्री हमारी परंपरा में नकारात्मक तत्व नहीं है। वह सकारात्मक तत्व है। वह सिर्फ बच्चे पैदा करने वाली मशीन नहीं है अपितु उसके सृजनात्मक अवदान भी हैं। सृजनात्मक अवदानों की उपेक्षा करके स्त्री-विमर्श का समग्रता में ढांचा ही तैयार नहीं होगा। कला एवं साहित्य के विविध क्षेत्रों के साथ-साथ गणित, न्याय, धर्मशास्त्र, दर्शन आदि क्षेत्रों में भी स्त्रियों का अवदान रहा है। मुश्किल यह है कि स्त्री की सकारात्मक इमेज को हम जानते नहीं हैं या जानबूझकर उससे आंखें फेरते हैं। आजादी के पुर्व आरंभ हुई स्त्री अधिकारों की यह लड़ाई 2023 तक आते-आते अत्यंत स्तरियता तथा विस्तृत रूप धारण कर चुकी है ।

आजादी के बाद का स्त्री लेखन वैविध्यपूर्ण एवं गंभीर से गंभीर चुनौती से टकराता नजर आता है। इसके वैविध्य में वैचारिक ऊष्मा नजर आती है। यहां उन तमाम विषयों की चर्चा एवं मूल्यांकन तो संभव नहीं है किंतु साहित्य एवं तत्संबंधित विषयों पर स्त्री लेखिकाओं के नजरिए का मूल्यांकन किया जाएगा। जिसमें स्त्री साहित्य के विविध चिंतन के आयामों तथा स्त्री साहित्य के समक्ष की चुनौतियां को जानना हैं।

हिंदी में स्त्री साहित्य की धारणा कुछ प्रश्न -प्रतिप्रश्न:-

स्त्री साहित्य में "अनुभूति" की महत्ता सर्वस्वीकृत है। लेखिकाओं में "अनुभूति" की महत्ता को सर्वप्रथम महादेवी वर्मा ने रेखांकित किया। महादेवी वर्मा ने "काव्य-कला" शीर्षक निबंध में लिखा कि "अपने विषय पर केंद्रित होकर उसे जीवन की गहराई तक ले जाना अनुभूति का लक्ष्य रहता है, इसी से हमारी व्यक्तिगत अनुभूति जितनी निकट और तीव्र होगी, दूसरे का अनुभूत सत्य हमारे समीप उतना ही असंदिग्ध होकर आ सकेगा।" महादेवी जी ने अनुभूति को हृदय और सत्य से जोड़ा। वह कहती हैं कि "अनुभूति अपनी सीमा में जितनी सबल है उतनी बुद्धि नहीं। हमारे स्वयं जलने की हल्की अनुभूति भी दूसरे के राख हो जाने के ज्ञान से अधिक स्थायी रहती है।" अनुभव जन्य लेखन अधिक विश्वसनीय होता है। "परंतु इन सब खंडशः अनुभूतियों के पीछे हमारे अंतर्जगत में एक ऐसा व्यापक, अखंड और संवेदनात्मक धरातल भी है जिस पर सारी विविधताएं ठहर सकती है। काव्य इसी को स्पर्श कर संवेदनीयता प्राप्त करता है। इसी कारण जिन सुख दुखों की प्रत्यक्ष स्थिति भी हमें तीव्र अनुभूति नहीं देती, उन्हीं की काव्य स्थिति से साक्षात कर हम अस्थिर हो उठते हैं।" हिंदी के स्त्री साहित्य की खूबी है कि वह अनुभूति पर जोर देते हुए व्यापक यथार्थ से उसका रिश्ता नहीं तोड़ पाता। साथ ही किसी-न-किसी अन्य कवि या कवयित्री को सामने रखकर कविताएं लिखने में लेखिकाएं सक्रिय रही हैं। स्त्री कविता की ओर क्यों प्रवृत्त होती है? इस प्रश्न का जवाब देते हुए शकुंत माथुर ने लिखा, "नारी का सुख केवल उसी घर-गृहस्थी तक ही सीमित है, यह में नहीं मानती। गृहस्थी के साज-संवार के बाद भी वह पूरा संतोष नहीं कर पाती, उसे लगता है जैसे वह अपूर्ण है। उसकी सांसारिक और व्यावहारिक सुख-साधना की पूर्ति होने पर भी वह एक सामाजिक अभाव महसूस करती है और वह है मानसिक विकास का। घर में रहकर वह अपनी प्रत्येक इच्छा पूर्ति करती है, किंतु फिर भी मानसिक क्षेत्र में पैर फैलाने का अवसर उसे घर की चारदीवारी में प्राप्त नहीं होता। इसीलिए सब प्रकार का सुख होते हुए भी इस अभाव की पूर्ति मुझे काव्य में मिली।... काव्य का माध्यम मैंने इसीलिए अनायास अपना लिया और इसे अपना कर मुझे इतना सुख मिला कि मेरे शेष अभावों की पूर्ति हो गई। मेरी आरंभिक रचनाएं इसी दृष्टिकोण को लेकर चली थीं।" काव्य कवयित्री को अंतर की व्यथा और अपने अभावों को व्यक्त करने का कारगर तरीका लगता है।

एक अन्य कवयित्री कीर्ति चौधरी ने "तीसरा सप्तक" में लिखा कि "मैं? मेरा जीवन दर्शन? ये प्रश्न प्रासंगिक हैं। पर बड़े हैं। वस्तुतः कविताएं ही बहुत कुछ "मैं" और "मेरा जीवन-दर्शन" हैं।" (1979/34) कीर्ति चौधरी के लिए कविता अनिवार्यता थी। कविता को उन्होंने मन की अभिव्यक्ति माना। मृदुला गर्ग ने "साहित्य क्या है?" शीर्षक

लेख में लिखा कि "प्राचीन सांस्कृतिक वाङ्मय और आधुनिक अवधारणा, दोनों को अलग रखकर मैं यह देखने का साहस कर रही हूं कि मेरे लिए साहित्य क्या है?" (पूर्वग्रह/1997)

मृदुला गर्ग के लिए साहित्य की छवि, एक विशाल प्रश्नचिह्न की है। वह समय और समाज में सतत घूमता हुआ कहीं भी जाकर टिक जाता है, समाज की व्यवस्था, मूल्य पद्धति, सौंदर्य अनुभूति, जीवन दर्शन, इतिहास दृष्टि, मानवीय अंतर्संबंध, किसी पर भी। या सब पर। यानी वस्तुस्थिति या सांस्कृतिक सत्ता को स्वीकार करने की बजाय, साहित्यकार लगातार उस पर प्रश्नचिह्न लगाता चला जाता है और उसका विकल्प इंडने की कोशिश करता है। मृदुला गर्ग के लिए साहित्य का अर्थ है खोज। साथ ही भावामुभूति को उन्होंने अनिवार्य शर्त माना। इसके अलावा साहित्य प्रश्नाकुलता के साथ नई विश्वदृष्टि और भावबोध की खोज को शब्द ही नहीं देता, खुद अपना भी विखंडन करता है।

स्वी को स्वभावगत अथवा जैविक प्रवृत्तियों के आधार पर अलग जाति मानने की धारणा को मृदुला गर्ग अस्वीकार करती हैं। मृदुला गर्ग का यह भी मानना है हो या औरत, हम सृजन भावबोध से करते हैं, लिंगबाँध से नहीं और उपन्यास की तरह कहानी का भी अपना विवेक होता है, जो रचना को रवानाकार से बड़ा बनाता है।" (साक्षात्कार/1996)

मृदुला गर्ग ने साहित्य में स्त्री की तीन छवियों को रेखांकित किया है-वे हैं देवी, प्रेयुसी और गृहिणी। (साप्ताहिक हिंदुस्तान/3 सितंबर, 1981/26) स्वातंत्र्योत्तर दौर के साहित्य का मूल्यांकन करते हुए मृदुला गर्ग ने कई महत्वपूर्ण बातें कही हैं। पहली बात यह रेखांकित की है कि "1950 के बाद आने वाले लेखकों ने जिस तरह जैनेंद्र, अज्ञेय और द्विवेदी की स्त्री छवि को आत्मसात किया, महादेवी की स्त्री को नहीं किया। इसके दो प्रभाव हुए। पहला यह कि स्त्री की अस्मिता की खोज पर लिखे जाने वाले उपन्यासों में जितनी भी सबल, विद्रोही और विचारवान स्त्री पात्र आई, उनका संघर्ष प्रमुखतः पुरुष से दिखाया जाता रहा, पुरुष केंद्रित सत्ता या व्यवस्था से नहीं। कहना न होगा कि इन उपन्यासों की स्त्री प्रवक्ता अधिकतर मध्य वर्ग की थीं। एक तो इनके लेखक या लेखिकाएं स्वयं इस वर्ग से आते थे, दूसरे यही वर्ग ऐसा था जिसके लिए अस्मिता का प्रश्न उठाया जा सकता था। तीसरे इस वर्ग की स्त्री का संघर्ष तो जिंदा रह पाने की आपाधापी का संघर्ष है।"

1950 के बाद जिन लेखकों ने मध्य वर्ग की स्त्री की अस्मिता का प्रश्न उठाया, उनके लिए शोषण का केंद्र बिंदु अधिकतर वैवाहिक जीवन रहा। इसे तीन तरह से चित्रित किया गया। विवाहेतर प्रेम संबंधों का विचारशील और बेवाक चित्रण जिसका अंत अधिकतर त्रासद रहता है. 1930 से लेकर अब तक, फर्क सिर्फ यह आया है कि पहले प्रेम संबंध के खत्म होने पर स्त्री को लांछन, अपमान और अपराध बोध सहते रहना होता था... अब वह इस निष्कर्ष पर पहुंचने लगी है कि उसका अभीष्ट पुरुष नहीं है, न पति, न आदर्श प्रेमी की तलाश, बल्कि अपने व्यक्तित्व को सशक्त (बनाना है। जिसमें पुरुष साथी हो सकता है, माध्यम नहीं। ऐसा मृदुला गर्ग के उपन्यास "उसके हिस्से की धूप" और राजी सेठ के "तत्सम" उपन्यास में हुआ। वैवाहिक जीवन की यंत्रणा और संत्रास का चित्रण, जिसमें फंसकर स्त्री की अस्मिता और प्रतिभा का नाश हो जाता है। इस तथ्य पर लिखें सिमी हर्षिता के उपन्यास का तो नाम ही "यातना शिविर" है। ज्योत्स्ना मिलन का "अपने साथ", मृणाल पांडे का "विरुद्ध",मन्नू भंडारी का "आपका बंटी", नासिरा शर्मा का "शाल्मली", सभी अपने तरीके से स्त्री अस्मिता विवाहित स्त्री की अस्मिता का प्रश्न उठाते हैं। स्त्री का विवाह से विमुख होना। ऐसा कर पाना विद्रोह का प्रतीक बनकर सामने आता है। मृदुला गर्ग ने अपने विश्लेषण में सबसे महत्वपूर्ण बात यह कही है कि "जैसे ही चित्रण पुरुष से हटकर नारी पर आता है, साहित्यिक विरासत और स्त्री की मादा छवि उन पर हावी हो जाती है। वह उसका वर्ग परिवेश, काम, पेशा सब

भूल जाते हैं और याद रहता है केवल यौन उत्पीड़न और यौन शोषण। उसके अनुसार स्त्री है तो मादा ही, चाहे जिस वर्ग से हो, जितने घंटे काम में खटती हो, जितनी कम मजदूरी पाती हो। उसके लिए न तो रोजी-रोटी की समस्या है, न मालिक-मजदूर के रिश्ते की, न ठेकेदार-मुकादम के शोषण की, न बेरोजगारी की, न जड़ों से उखड़ने बिखरने की। समस्या है तो शील की, शील की रक्षा और शील पर आक्रमण की।

हिंदी साहित्यालोचना की एक महत्वपूर्ण कमजोरी की तरफ अनामिका ने अपने लेख "स्त्री कथाकारों की स्त्रियां" में ध्यान खींचा। अनामिका ने लिखा है- "औरत की देह से जुड़े सत्यों का आकलन फ्रेंच फेमिनिस्टों के यहां तो मिल जाता है, पर अपने यहां दैहिक संवेदनाओं को अंतर्जगत के मर्मोद्घाटन से एकाकार करके देखने की परंपरा नहीं के बराबर रही है।" हिंदी लेखिकाओं में एक वर्ग ऐसी लेखिकाओं का भी है जो स्वतंत्र "महिला लेखन" या "स्त्री दृष्टि" नाम के वर्गीकरण को स्वीकार नहीं करते। पुरुषसत्ताक नजरिए का ही यह प्रभाव है कि स्त्री अपने को स्वतंत्र रूप में देखने में असमर्थ है। स्त्री के चेतना या दृष्टि पुरुष से स्वतंत्र ही नहीं भिन्न भी होती है यहां तक कि स्त्री दृष्टि का पुरुष दृष्टि से कोई सामंजस्य नहीं है अपितु विरोधभाव है, सामाजिक- जीवन में दोनों के हितों एवं लक्ष्यों में सीधा एवं तीखा अंतर्विरोध है। दोनों मानव समाज के अंश हैं किंतु दोनों को समान रूप से जीने, बड़े होने, संस्कार हासिल करने, निजी इच्छा एवं आकांक्षाओं को पूरा करने की सैकड़ों वर्षों से समाज ने कभी अवसर ही नहीं दिया। सृजन के समस्त क्षेत्रों से सचेत रूप से स्त्रियों को बेदखल किया गया। इतिहास से गायब किया गया और ऐसा परिवेश एवं ज्ञान का दबदबा पैदा किया गया जो पुरुषमय था और पुरुषमय है। समाज का पुरुषमय हो जाना, संस्कृति एवं साहित्य का पुरुषमय हो जाना, अंततः इस बात का प्रतीक है कि स्त्री एवं पुरुष को समान रूप से मानवीय प्राणी के रूप में देखने का अभ्यास ही छोड़ दिया और जब अभ्यास ही छोड़ दिया तो जो पुरुष का था, पुरुष रचित था, पुरुष दृष्टिकोण - था उसे ही स्त्री को समझा दिया और कहा कि यही उसका है अतः स्त्रियों में अभी भी स्वतंत्र स्त्री दृष्टि एवं स्त्री लेखन की कोटि अभी भी सर्वस्वीकृत नहीं बन पाई है। महाश्वेता देवी जैसी प्रतिष्ठित लेखिका अपने को स्त्री लेखिका की कोटि में रखे जाने का विरोध करती हैं। निर्मला जैन जैसी सुलझी आलोचिका एवं मृदुला गर्ग जैसी यशस्वी लेखिका "स्त्री दृष्टि" एवं "स्त्री लेखन" की कोटि को स्वीकार नहीं करती। जबकि हकीकत यह है कि स्त्री की स्वतंत्र दृष्टि होती है, स्वतंत्र संस्कृति होती है। स्वतंत्र इतिहासबोध एवं इतिहासदृष्टि भी होती है साथ ही स्त्री की की अनुभूतियों से भिन्न होती हैं। यह भिन्नता उसे सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितिया से मिली है। "स्त्री दृष्टि" एवं "स्त्री साहित्य" की कोटि को सर्वस्वीकृति अर्जित करने में हिंदी में अभी विलंब होगा उसका प्रधान कारण है समूचे सामाजिक राजनीतिक एवं साहित्यिक क्षितिज पर पुरुष वर्चस्व का हावी होना। इस वर्चस्व का जितना तेजी "से क्षय होगा "स्त्री दृष्टि" एवं "स्त्री साहित्य" की स्वतंत्र रूप से स्वीकृति का दायरा भी बढ़ेगा। हिंदी में भारतेंदु हरिश्चंद्र पहले आधुनिक लेखक थे जिन्होंने "स्त्री भाषा" की कोटि को रेखांकित किया। रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' पहले आलोचक थे जिन्होंने "स्त्री साहित्य" पदबंध के तहत स्त्री साहित्य पर विस्तार से लिखा। इसके अलावा इतिहासकारों में हजारीप्रसाद द्विवेदी पहले इतिहासकार हैं जिन्होंने "महिला लेखिकाएं"" पदबंध का साहित्य के इतिहास में सर्वप्रथम प्रयोग किया। स्त्री दृष्टि एवं स्त्री संस्कृति, स्त्री साहित्य की अवधारणाओं का मैंने अन्यत्र विस्तार से विवेचन किया है। यहां सिर्फ स्वातंत्र्योत्तर समीक्षा में इस पहलू पर हुई चर्चा तक ही सीमित रखना चाहूंगा।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी की स्त्री समालोचना में डॉ. प्रभा खेतान ने सबसे पहले पुरुष एवं स्त्री की भिन्न दृष्टियों की ओर ध्यान खींचा। प्रभा खेतान ने "दो उपन्यास और नारी का आत्म संघर्ष" शीर्षक निबंध में सिद्धांततः स्त्री एवं पुरुष के बीच में दृष्टिकोणगत अंतर को स्वीकार किया साथ ही कुछ उलझन पैदा करने वाली बातें भी कही हैं। वह

लिखती है, "स्त्री लेखन और पुरुष लेखन में फर्क होता है और रहेगा... क्योंकि स्त्री और पुरुष आज भी इस पितृसत्तात्मक समाज में जैविक, आर्थिक, सामाजिक धरातल पर भिन्न हैं।" प्रभा खेतान ने यह भी लिखा कि "स्त्री और पुरुष चेतना को समान रूप से देखते हुए भी हम उनकी भिन्नता और जटिलता की ओर ध्यान दें।" इसके साथ ही यह भी लिखा कि "किसी भी श्रेष्ठ और समर्थ कृति के रचनाकार के रूप में लेखक या लेखिका का भेद कर सकना मुश्किल है। प्लभा खेतान लिखती हैं "साहित्य में पुरुष मूल्यों की वर्चस्वता ने कभी लेखन के विकास को समग्रता में नहीं लिया। पुरुष सत्ता के प्रति अत्यधिक मोह तथा आलोचकों की अपनी-अपनी पुरुषोचित दुर्बलता के कारण स्त्री लेखन का सहज विकास अवरुद्ध ही हुआ है। जबकि साहित्य वह क्षेत्र है जहां हम सब से अधिक मानवीय मूल्यो की बात करते हैं, सहयोग और साझेदारी की कामना करते हैं, जीवन की त्रासदी को व्यक्त करने वाला लेखक, स्त्री के प्रति जाने-अनजाने अपने पुरुषोचित दुराग्रहों से मुक्त नहीं हो पाता। "सबसे बड़ी चुनौती तो स्त्री-लेखन के अपने पहचान की और उसकी रचनाधर्मिता की है। यदि स्त्री खामोश है, मूक है तब भी बात बनती है क्योंकि कम-से-कम अपनी अलग आवाज उठाने की कोशिश तो कर रही है। हो सकता है यह अपनी भाषा ईजाद करने की प्रारंभिक स्थिति हो क्योंकि सत्ता की भाषा के माध्यम से शोषित अपने शोषण को कैसे अभिव्यक्त कर पाएगा ? सबसे पहले स्त्री रचनाकारों को इस केंद्रीय समस्या के प्रति अवगत होना होगा। परंपरा में मिले हुए शब्दों, मुहावरों एवं विचारों के केंचुल को उतार फेंकना उसकी पहली जरूरत है। यह स्थिति नहीं चलेगी कि या तो वह खामोश रहे या फिर जो कुछ भी लिखे वह पुरुष के मानदंडों के अनुसार उसके मुहावरे में। तात्पर्य यह है कि "पुरुष बनाम स्त्री" का दृष्टिकोण औपनिवेशिक मानसिकता से पैदा हुआ। यह गलत है बल्कि इसके विपरीत बात है। स्त्री के शोषण, उत्पीड़न एवं दोयम दर्जे की ओर सबसे पहले आधुनिक काल में भारतीय नवजागरण के पुरोधाओं ने ध्यान खींचा। वे ही स्त्री अधिकारों, स्त्री सम्मान एवं मर्यादा के सबसे बड़े संघर्षकर्ता थे। ये ऐसे समाज सुधारक थे जो औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्त थे और "भारत की स्वतंत्र चिंतन परंपरा" के आधुनिक युग के सच्चे वारिस थे।

निर्मला जैन की धारणा है कि "वस्तुतः रचनाकार की न जाति होती है, न धर्म और न वर्ग।" इसके अलावा निर्मला जैन ने लेखिकाओं के उपन्यासों का वर्णन करते हुए यह कहा कि "बेघर, महाभोज, जिंदगीनामा, आग का दरिया और ऐसी तमाम और रचनाएं जिन्हें महिला-लेखन के लेबिल की जरूरत नहीं होती।" निर्मला जैन एवं मृदुला गर्ग की मान्यताओं को खासकर स्त्री साहित्य, स्त्री दृष्टि या स्त्री चेतना को अस्वीकार करने वाले नजरिए का सबसे सुसंगत एवं वैज्ञानिक मूल्यांकन डा. चंद्रा सदायत ने "साहित्य में स्त्री-दृष्टि" शीर्षक लेख में किया है। चंद्रा सदायत की राय है कि "किसी रचनाकार या विचारक, यहां तक कि साधारण आदमी की विश्वदृष्टि को बनाने-बिगाड़ने में उसके वर्ग, वर्ण, और लिंग की अनेक रूपों में निर्णायक भूमिका होती है।" चंद्रा सदायत ने यह भी लिखा कि "जब मृदुला गर्ग यह कहती हैं कि नारीवादी लेखक का संबंध लिंग से नहीं भावबोध, जीवन दृष्टि और चेतना से है तब वे यह भूल जाती हैं कि किसी लेखक के भावबोध, जीवन दृष्टि और चेतना का निर्माण हवा में नहीं होता, यह जिस समाज में रहता है उस समाज के जीवन, संस्कृति और साहित्य के इतिहास से होता है,जो पितृसत्ताक समाज लिंगभेद का जनक और पोषक है, जो जन्म से मृत्यु तक स्त्री-पुरुष का भेद बनाए रखता है और स्त्री को जीवन भर प्रत्येक क्षण स्त्री होने का ज्ञान, पहचान और अनुभव कराता रहता है। उसमें जीने वाले किसी भी व्यक्ति खास तौर पर किसी स्त्री का भावबोध, जीवन दृष्टि और चेतना का स्वरूप लिंग भेद से मुक्त कैसे हो सकता है। सच बात तो यह है कि स्त्री और पुरुष लेखन में भावबोध, जीवन दृष्टि और चेतना के स्तर पर जो फर्क होता है यही उनकी रचनाशीलता में भी व्यक्त होती है और उसी फर्क की पहचान साहित्य की आलोचना में स्त्री-दृष्टि की पहली शर्त है। भारत जैसे एक परंपराबद्ध समाज में सत्ता, शास्त्र, लोकमत और पुरुष की अधीनता में जीती स्त्री को

अपने व्यक्तित्व तथा अस्तित्व की स्वतंत्रता के लिए जैसा कठिन संघर्ष करना पड़ता है उसे पुरुष दृष्टि से नहीं पहचाना जा सकता। हिंदी में स्त्री लेखन क्यों पुरुष लेखन से पीछे है। इस प्रश्न पर स्त्री लेखन एवं हिंदी समाज के रिश्तों के बीच की अंतर्क्रियाओं एवं एक दूसरे पर पड़ने वाले प्रभावों की मीमांसा करते हुए चंद्रा सदायत ने लिखा कि "आज भी हिंदी समाज में स्त्री की स्वाधीनता अत्यंत सीमित है। जिसका प्रभाव हिंदी के स्त्री-लेखन पर पड़ रहा है। लेखन का सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश रचनाकार की दृष्टि ही नहीं अभिव्यक्ति के रूप को भी प्रभावित करता है। हिंदी के स्त्री-लेखन के विषय के चुनाव के दायरे का सीमित होना इसी बात की ओर संकेत करता है। सच बात तो यह है कि , अभी हिंदी में सहज और स्वतंत्र लेखन के उपयुक्त भाषा का भी विकास नहीं हुआ है।हिन्दी क्षेत्र में स्त्रियों के सीमित होने का बड़ा प्रमाण यह है कि हिंदी में स्त्रियों के आत्म-कथा लेखन का एकदम अभाव है। "समालोचना की स्त्री-दृष्टि को विकसित करने के लिए यह भी आवश्यक है कि साहित्य और समाज के इतिहास का स्त्री की दृष्टि से पुनर्लेखन करते हुए पुरुष प्रभुत्व के बोध और उसके विरोध से जुड़ी स्त्रियों की रचनाशीलता की परंपरा की खोज की जाए। विद्रोह की यह परंपरा पुरानी है और समृद्ध भी। लेकिन परंपरा बोध की पुरुष वर्चस्वशाली विचारधारा स्त्रियों के विद्रोह की परंपरा को हाशिए पर रखने और अदृश्य बनाने की कोशिश करती रही है। आशय यह कि स्त्री साहित्य के इतिहास के निर्माण के लिए स्वतंत्र स्त्री दृष्टि की पहचान पहली अनिवार्य शर्त है और इसी के बाद स्त्री समालोचना का आगे का मार्ग प्रशस्त होगा।

निष्कर्ष: स्त्री विशेषतः हिंदी स्त्री साहित्य ने ७५ वर्ष के इस अंतराल में विकास के पायदानों को पार किया हैं।

सहायक ग्रंथसूची

चतुर्वेदी जगदीश्वर- स्त्रीवाद साहित्य विमर्श

गर्ग मृदुला- हिंदी साहित्य में स्त्री की छवि - साप्ताहिक हिंदुस्तान

सराफ रामकली - समकालीन हिंदी कथा लेखिकाएं - विकास प्रकाशन कानपुर

संपा.सिंह नामवर -आधुनिक हिंदी उपन्यास -भाग २

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-B

ISSN : 2278-9308 December, 2023

दलित विमर्श : चिंतन और चुनौतियाँ (हिंदी दलित कविता के विशेष संदर्भ में)

डॉ. संजीवकुमार नरवाडे

प्रोफेसेर, आदर्श महाविद्यालय, हिंगोली भ्रमणध्वनि : 9422877573

ई–मेल : svnarwade1670@gmail.com

सारांष :

भारत की आज़ादी के 75 वर्षों में दलित विमर्श ने साहित्यिक विचारधाराओं के केंद्र में स्वंय को स्थापित किया है। इसने दलित समाज के शोषित समुदाय का यथार्थ–चित्रण कर नए विमर्श को जन्म दिया है। दलित कविता परंपराओं का विरोध और प्रजातांत्रिक मूल्यों की स्थापना पर बल देती है। इस कविता ने अपने सीमित काल में हीन, उपेक्षित समाज की चेतना को जगा कर एक नये समाज–निर्मिती का मार्ग प्रशस्त किया है। इसका मूल स्वर भारतीय समाज में हो रहे वर्ण और जाति भेद पर आधारित शोषण हैं, जिसका विरोध इसमें किया गया है। दलितों का अमानवीय शोषण तथा दलितों की सद्य स्थिति पर भी दृष्टिपात किया है। दलित कविता सामाजिक विकलांगता, जाति–व्यवस्था, आर्थिक असमानता, ईश्वरी सन्ता का अस्वीकार, अनुभव प्रामाण्यता एवं लोकतांत्रिक मूल्यों में विश्वास तथा अम्बेडकर–दर्शन आदि पर चिंतन करती है। दलित कविता के समक्ष महत्वपूर्ण चुनौतियाँ है–अपनी आंदोलन धर्मिता को बचाए रखना, स्थापित जातियवाद, ब्राम्हणवाद अनुभूतियों में आई एकरूपता आदि।

मूलषब्द : उत्पीड़न–शोषण, वेदना–पीड़ा, ईश्वरी सत्ता के प्रति अनास्था, असमानता एवं प्रतिरोध, आंबेडकरी दर्शन. अनुभव–प्रामाण्य,

उद्देष्य :

1.हिंदी दलित कविता के चिंतन धरातल का अवलोकन

2.हिंदी कविता में व्यक्त दलित विमर्श का अनुशीलन

परिकल्पना :

1.हिंदी दलित कविता में दलित जीवन की व्यथा–कथा हैं।

2.हिंदी दलित कविता में दलित विमर्श परक चिंतन और चुनौतियाँ हैं।

अनुसंधान पध्दति :

''दलित विमर्शः चिंतन और चुनौतियाँ, हिंदी दलित कविता के विशेष संदर्भ में'' विषयक शोधालेख के लिए संदर्भ अनुसंधान, विश्लेषणात्मक अनुसंधान और साहित्यिक अनुसंधान पध्दति का आवश्यकतानुरूप प्रयोग किया गया है।

प्रस्तावना :

स्वातंत्र्योत्तर काल में दलित विमर्श परक साहित्य भारतीय साहित्य की एक नई धारा के रूप में विकसित हो रहा हैं, जो दलित साहित्य के रूप में अपनी पहचान बना चुका है। देश की लगभग सभी भाषाओं की पत्रिकाओं द्वारा यह लिखा जा रहा है, तो कभी स्वतंत्र कृति के रूप में भी प्रकाशित होता रहा हैं। वैसे तो दलित समाज को केंद्र में रख कर पहले से लेखन हो रहा है, जिनमें प्रेमचंद, निराला, नागार्जून, फणीश्वरनाथ रेणू, जयशंकर प्रसाद आदि प्रमुख है। सन 1960 के बाद मराठी भाषा में प्रथमतः दलित साहित्य लिखा गया। दलित साहित्य के प्रेरणा स्त्रोत डॉ. आंबेडकर के विचार और उनकी जीवन–मुक्ति आंदोलन में विद्यमान हैं। इनकी विचारधारा और जीवन दृष्टि के पीछे भगवान बुध्द, संत कबीर तथा महात्मा फुले के विचार हैं, जिन्हें उन्होंने विरासत के रूप में पाया।

महाराष्ट्र में जिस समय दलित साहित्य–लेखन का आगाज़ हुआ उसी समय उत्तर दक्षिण भारत में इसकी ध्वनियाँ सुनाई देने लगी थी। प्रारंभ में गद्य के रूप में तो पद्य में लोकगीतों में ये साहित्य सामने आया तथा धीरे–धीरे कविता का रूप धारण कर विकसित हुआ। अस्सी के दशक तक यह दलित साहित्य चरमोत्कर्ष पहुँच गया।

आज़ादी के 75 वर्षों में विकास की दृष्टि से दलित साहित्य संपन्न है, क्योंकि इस कालखंड में दलित साहित्य ने अपना विधागत विस्तार किया है। कविता, आत्मकथा, कहानी, उपन्यास, एकांकी, नाटक, आलोचना क्षेत्र के साथ–साथ अनुसंधान और आलोचना के क्षेत्र में पर्याप्त लेखन हुआ है। इसकी बढ़ती लोकप्रियता के कारण यह प्रश्न भी उठा कि न तो साहित्य दलित होता है और न ही साहित्यकार, दलित

भावना रखकर कोई व्यक्ति अच्छा साहित्य लिख ही नहीं सकता। इसका समर्पक उत्तर दलित–साहित्यकारों ने दिया है कि 'वास्तव में 'दलित' शब्द हिन्दुओं की उस कुत्सित मानसिकता का प्रतिक है, जिसके तहत उन्होंने अविकसित पूरे वर्ग का दैहिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक शोषण कर उन्हें प्रताड़ित किया हैं। ऐसे वर्ग की पीड़ा, वेदना एवं संघर्ष को वाणी देणे का काम दलित साहित्य कर रहा है। अखिल भारतीय स्तर पर मराठी, हिंदी तथा समस्त भाषाओं में दलित साहित्य लिखा जा रहा हैं।

दलित विमर्श के साहित्य की अपनी स्वतंत्र वैचारिकी है। दलित साहित्य समता, स्वतंत्रता और बंधुता का पक्षधर रहा है। वह सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, मानसिक एवं दैहिक शोषण एवं जातियकवाद का घोर विरोधी है। दलित साहित्य हिन्दु धर्म की मान्यताएँ एवं–ईश्वर के अस्तित्व को नकारता है। दलित साहित्य की वैचारिक नींव भगवान गौतम बुध्द, महात्मा कबीर, महात्मा फुले एवं डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों से तैयार होकर संवैधानिक मूल्यों के भवन का स्वीकार करती है। दलित साहित्य वर्ण–व्यवस्था के विरोध में संघर्षरत मनुष्य से प्रतिबध्द है। वह यथार्थवादी जीवनवादी, क्रांतिकारी दृष्टि का साहित्य है।

विषयवस्तु :

दलित कविता : दलित विमर्ष चिंतन

आज़ादी के 75 वर्षों में हिंदी दलित कविता में दलित विमर्श परक चिंतन व्यक्त हुआ है, जिसे विषयवस्तु के रूप में यहाँ देखा जा रहा है। दलित कविता ने समाज में नये हिंदू धर्म, वर्ण–व्यवस्था एवं जातिभेद से उत्पन्न विषमता को नकारा है। वे जातिवाद एवं वर्ण व्यवस्था से निर्मित स्थितियों को चुपचाप सहने को तैयार नहीं है। यह कविता मनोरंजन नहीं है अपितु मुक्ति का मार्ग प्रशस्त कराने का साधन है। दलित कविता की विषयवस्तु एवं संवेदना के संदर्भ में श्री.रणजीत सहाय कहते है–''दलित भावोन्मेष के लिए कविता सशक्त माध्यम रहीं है और इसी चेतना में उसकी प्रक्रिया और आत्म सम्मान का पर्याय बनी कविताओं में विद्रोह, विरोध, क्षोभ और आक्रोश तथा पीड़ा, कुण्ठा, वंचना और वेदना के साथ बहिष्कृत जाति दंश और सामाजिक शोषण को मार्मिक और तार्किक अभिव्यक्ति मिली।''[1] स्पष्ट है कि इस कविता के केंद्र में दलित विमर्श है। इस कविता में दलित विमर्श चिंतन के जो बिंदु उभरे है, वे है–वर्ण व्यवस्था एवं जाति व्यवस्था का विरोध, वेदना–पीड़ा की सजग अभिव्यक्ति, स्वानुभूति और सहानुभूति, सामाजिक, परिवर्तन के लिए प्रतिबध्दता, डॉ. अम्बेडकर के जीवन–दर्शन का स्वीकार, ब्राम्हणवाद का विरोध, वर्ण एवं वर्ग विहीन समाज की पक्षधारता, तथा स्वतन्त्रता, सामाजिक न्याय की पक्षधरता।

1. जातिभेद एवं वर्ण व्यवस्था का विरोध :

दलित कविता भारतीय समाज व्यवस्था में वर्ण एवं जाति भेदाधारित शोषण का पुरजोर विरोध करती है। वर्ण व्यवस्था पर आधारित जाति–व्यवस्था में कनिष्ठ एवं निम्न समझी जानेवाली और आर्थिक दृष्टि से गरीब जातियों का अमानवीय शोषण हो रहा है। दलित कविता इस शोषण का विरोध करती है। समाज–व्यवस्था में तथाकथित उच्च जाति ब्राम्हण के वर्चस्ववादी व्यवहार इसके मूल में है। वे जातिवादी शोषण के लिए जिम्मेदार है, ऐसा दलित कविता मानती है। विषमता पूर्ण जातिव्यवस्था के संदर्भ में कवि मलखान सिंह 'ब्राम्हण' कविता में प्रश्न करते है–

''सुनो ब्राम्हण/हमारे पसीने से बू आती है, तुम्हे/
.../तुम मेरे साथ आओ चमड़ा पकाँएगें
दोनों मिल–बैठकर/.../शाम को थककर पसर
जाओ धरती पर/सूँधो खुद को/ बेटों को/बेटियों को/
तभी जान पाओगे तुम/जीवन की गंध को बलवती
है जो देह की गन्ध से।''[1]

अस्पृश्यता या छूत–अछूत का भेदभाव भारतीय समाज–व्यवस्था को लगा कलंक है। सभी भारतियों में जैविक विशेषताएँ लगभग समान होने के बावजूद छूआछूत का भेद क्यों है? दलित कवि चाहता है कि छूत–अछूत का भेदभाव समाज से मिट जायेगा और सभी समान होंगे, कोई अंतर नहीं रहेगा–

''मेरी माँ ने जने सब अछूत/तुम्हारे माँ ने सब बामन ही बामन।
कितने ताज्जुब की बात है/जबकि प्रजनन क्रिया एक ही जैसी है।
वह दिन कब आएगा/ जब बामन नहीं जनेगी बामन/
चमार नहीं जनेगी चमार/ भंगिन नहीं जनेगी भंगी/

तब नहीं चुभेंगें/ जातीय हीनता के दंश।''[2]

समाज व्यवस्था में जाति के दंश, दमन और उत्पीड़न को दलितों नें जितना अमानवीय रूप से भोगा है, उससे उनके मन में जाति–व्यवस्था के प्रति घृणा भर आई है। यहाँ व्यक्ति की पहचान नाम से नहीं जाति से होती है और उसके साथ उपेक्षा, घृणा एवं अस्पृश्यता का व्यवहार होता है–

''मैं इस देश में जहाँ भी रहता हूँ/आदमी मुझे नाम से नहीं जाति
से पहचानता है/और जाति से सलूक करता है।''[3]

2. वेदना एवं पीड़ा : दलित जीवन की त्रासदी :

दलित कविता दलित जन–जीवन की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक दशाओं में व्याप्त पीड़ाओं एवं वेदनाओं को चित्रित करती हैं। यह सच है हमारे भारतीय समाज में दलितों को इंसान की तरह न देखकर जानवर से भी बदत्तर व्यवहार किया गया है। दलित जीवन की वेदना एवं पीड़ा को सच्चाई के धरातल पर व्यक्त किया गया है–

''पैदा हुए वैसे ही/जैसे होते है पैदा/गलियों में कुत्ते–बिल्ली/
पैदा हुए वैसे ही/जैसी होती है खेत मे पैदा/खपतवार/
हर दूब–झाड़–झंखाड़/पेट्रोल से तारकोल।''[4]

दलित कविता में दलितों ने सदियों से भोगे–दर्द, पीड़ा शब्दबध्द होकर सजीव बन पड़ी है। दलितों के साथ सवर्णों द्वारा किया गया घृणित रवैया यहाँ बेपर्दा हो जाता है। अस्पृश्यता एवं जातिगत भेदभाव की मार, अलगाव तथा अंजानेपन के दंश के साथ–साथ शारीरिक, मानसिक उत्पीड़न से वे टूटते गए; जिससे वे मनुष्य होने का एहसास तक नहीं कर पाते है। जीविकोपार्जन तथा बुनियादी जरूरतों की आपूर्ति के लिए उन्हें दुसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। दलित जीवन की इसी त्रासदी को दलित कविता में अभिव्यक्त किया गया है–

''चूल्हा मिट्टी का/ मिट्टी तालाब की/ तालाब ठाकूर का/
भूख रोटी की/ रोटी बाजरे की/ बाजरा खेत का/ खेत ठाकूर का/
बैल ठाकुर का'/ हल ठाकुर का /हल की मूठ पर हथेली अपनी/
फसल ठाकुर की/ कुआँ ठाकुर का/ पानी ठाकुर का/
खेत–खलिहान ठाकुर के/ गल्ली–मुहल्ले ठाकुर के/
फिर अपना क्या?/गाँव? शहर? /देश?''[5]

3.मनुवाद एवं ईष्वर की सत्ता का विरोध :

दलित कविता मनुद्वारा प्रतिपादित व्यवस्था का विरोध करती है। जब तक मनुवाद अर्थात वर्ण–जाति व्यवस्था रहेगी तब तक अस्पृश्यता एवं विषमता बनी रहेगी। मनुस्मृति द्वारा प्रतिपादित 'रामराज्य' दलितों के लिए होगा क्या? यह प्रश्न दलित कवि के मन में उपस्थित होता है। रामराज्य आना अर्थात वर्णव्यवस्था का स्वीकार करना है। स्मृतियों, शास्त्रों, पुराणों, वेदों का लौटना अर्थात वर्ण शुचिता बने रहना है, अस्पृश्यता और जातिवाद प्रचलित होता है। दलित कविता ऐसी समाज–व्यवस्था को अस्वीकृत कर परिवर्तन की अपेक्षा करती है–

''समाज को प्रगतिशील बनना है/जाति के जहर को मिटाना है,
तो/उन तथाकथित धर्मग्रंथों को/ आग लगानी होगी और/
नकारना होगा/ वर्णित उस ईश्वर को/जो कर्मानुसार/फल देता है।''[6]

दलित कविता सृष्टि के निर्माता ईश्वर ब्रह्म की सत्ता का अस्वीकार करती है। वह जीव–सृष्टि के सृजन के संदर्भ में विज्ञान–सम्मत मान्यताओं का स्वीकार करती है। कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि 'मेरे पुरखे' में ब्रह्म के अस्तित्व पर प्रश्न करते है–

''तुमने कहा/ब्रह्म के पाँव से जन्मे शुद्र/और सिर से ब्राह्मण/
उन्होने पलट कर नहीं पूछा/ब्रह्म कहाँ से जन्मा?''[7]

4. आंबेडकर–दर्षन का स्वीकार :

हिंदी दलित कविता की प्रेरणा आंबेडकर–दर्शन है। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के सामाजिक परिवर्तनवादी विचारधारा से दलित कविता प्रभावित है। उनके 'शिक्षित बनो, संघटित बनो और संघर्ष करो' सिद्धांत को दलित कविता अपनाती है। दलित कविता के केंद्र में आंबेडकर दर्शन है–''दलित चेतना का सम्बन्ध आंबेडकर–दर्शन से है। वहीं प्ररेणास्त्रोत भी है। सामाजिक उत्पीड़न, सामन्ती सोच, वर्ण–व्यवस्था से उपजी □ँच–नीच ने दलितों को शताब्दियों से मानसिक गुलामी से जकड़कर रखा हुआ है। उसकी

मुक्ति के तमाम रास्ते बंद थे, इस गुलामी से मुक्त होने का विचार ही दलित चेतना है जिसे ज्योतिबा फुले और डॉ. आंबेडकर ने दार्शनिक आधार दिया जिसका केंद्रबिंदु यहीं शोषित सामान्य जन है।''[8]

डॉ. आंबेडकर की दलित–मुक्ति की लड़ाई सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक लड़ाई थी। उन्होंने दलितों को धार्मिक जड़ता से मुक्त कराने का बृहत्तम कार्य किया है। दलितों की गुलामी ईश्वरीय नहीं है, मानवीय है–जिससे मुक्ति संभव है। इसलिए दलित कवि दलितों के जीवन–परिवर्तन हेतु डॉ. आंबेडकर के विचारों पर मार्गक्रमण करता है–

''झाड़ू बांधि कमर पै चलते, मूक पुरूष बनि रहते थे।
ईश्वर की यदि करे वंदना, प्राण दंड वो सहते थे।।
पांव न पैर सकें वे जूता, नंगे पैरों चलते थे।
बने मकां गर कोई ऊँचा, क्षण में उसे कुचलते थे।।
उच्चासन पर बैठ न सकता, अनुचित दंड बनाये थे।
ज्ञान–दीप लेकर बाबा ने, सोते लोग जगाये थे।''[9]

5. वर्ण एवं वर्ग विरहित समाज की पक्षधरता :

हिंदी दलित कविता वर्ण एवं वर्ग विरहित समाज व्यवस्था की पक्षधर हैं। दलित कवि समाज जीवन का सूक्ष्म अध्ययन कर एक नए समाज की निर्मिती की चाह रखते हैं। उन्होंने देखा कि यहाँ की वर्णवादी एवं जातिवादी समाज व्यवस्था ने दलितों के जीवन को कैसे त्रासद बना दिया हैं। जातिवाद ने दलितों के जीवन को तहस–नहस किया है। दलित कविता मूलतः मनुष्यता को लेकर चलती है, जिसका भारतीय सवर्ण हिंदु समाज में अभाव–सा रहा है। यदि भारतीय समाज में मनुष्यता का यथायोग्य निर्वहन होता तो समाज विभिन्न वर्णों और जातियों में विभक्त नहीं होता। उसमें उँच–निच, स्पृश्य–अस्पृश्य का भेद नहीं होता और समाज का चित्र कुछ और ही होता। यह सच है कि जब तक जातिभेद या वर्गभेद रहेंगा तब तक अस्पृश्यता बनी रहेंगी। इसलिए दलित कवि एक नई समाज–व्यवस्था का निर्माण चाहता है, जिसमें वर्ण एवं वर्ग आधार पर कोठ भेदोपभेद नहीं होंगा, सभी समान होंगे। इसके लिए प्रथमतः पूँजीवाद एवं मनुवाद को खत्म करना होगा, जिससे मानवता पनपेगी और एक नये समाज की निर्मिती होंगी–

''पूँजीवाद मिटा दो, समता तभी विश्व में होंगी
मनुवाद मिटा दो दुनिया से तो मानवता पनपेगी।''[10]

6. सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रतिबध्दता :

हिंदी दलित कविता दलितों के सामाजिक जीवन में परिवर्तन हेतु प्रतिबध्द है। वह नए समाज और नई व्यवस्था के निर्माण के माध्यम से शोषित–दलित जनता के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना चाहती है। दलित कवियों को दृढ़ विश्वास है कि शिक्षा से समाज में परिवर्तन हो सकता है। शिक्षा से जीवन बदल सकता है। शिक्षित होकर संघटित बनकर समाजद्रोहियों एवं शोषकों से संघर्ष किया जा सकता है। दलितों के हो रहे शोषण एवं उत्पीड़न को मिटाकर शोषितों, दलितों की एक नई बस्ती बसानें का आह्वान करते हुए कवि बदलूराम 'रसिक' कहते है–

''उठो! क्रांति के दूत बन आगे आओ
बढ़ा पाप संताप सारा मिटाओ,
सुदृढ संगठित शक्ति अपनी बनाओ,
करो या मरो पाठ सबको पढ़ाओ
यही वक्त है, गुँजा दो अपना नारा।''[11]

दलित कवि दलितों के अंदर छिपी कुंठा तथा हीन भावना को समाप्त कर देना चाहते है। साथ ही वे उच्च वर्ग के सवर्णों के भीतर छिपी असंवेदनशीलता से अवगत कराते है। दलितों की शोषण से मुक्ति परिवर्तन से ही हो सकती है, ऐसा वे मानते है। यह मानव–मुक्ति के परिवर्तन की लहर धर्म–मठाधिशों की सत्ता को धराशय कर नए समाज एवं व्यवस्था का निर्माण कर सकती है जिससे सदियों से होता आया दलितों का शोषण समाप्त हो सकता है–

''घबराओं नहीं/समय आ रहा है/ जब हम भी बढेंगे तुमसे/
दौड़ने की शर्त/जीतेगे बाजी/तोड़ेगे तुम्हारा दर्प/सुनो
परिवर्तन की सुगबुगाहट/बदलती हवा का रूख/
पहचानो, पहचानो, पहचानो।''[12]

हिंदी दलित कविता : दलित विमर्ष–चुनौत्तियाँ :

दलित कविता सामाजिक पटल पर चल पड़े व्यापक दलित आंदोलन की रचनात्मक अनुभूति हैं। दलित आंदोलन के आदर्शों और लक्ष्यों को अपनाते हुए दलित कविता आगे बढ़ी है। दलित कविता में आंदोलन धर्मिता की प्रवृत्ति विद्यमान है। कोई भी सामाजिक, राजनैतिक एवं साहित्यिक आंदोलन अपनी स्थापना और उभार के काल में अति उत्साही और आक्रमक रहता है। इस दौर में पारंपारिक गढ़ो–मढों को तोड़कर अतित, वर्तमान और भविष्य में अपनी पहचान बनाए रखने के लिए उत्साह होना स्वाभाविक है। वास्तविकता ये है कि किसी आंदोलन की वास्तविक सफलता उसके उत्साह और आक्रमकता पर नापी नहीं जा सकती, बल्कि उसके लिए गंभीर एवं सजत आत्मालोचन तथा बुनियादी प्रश्नों को लेकर स्पष्ट समझ का होना अनिवार्य हो जाता है। दलित आंदोलन और दलित कविता के संदर्भ में भी यहीं बातें लागू होती है। ऐसे में उसके सामने कई चुनौतिया है, जिनमें प्रमुख है–आंदोलन धर्मिता, अनुभूति की एकरूपता, स्थापित जातिवाद, ब्राम्हणवाद आदि।

1. आंदोलन धर्मिता :

आंदोलन धर्मिता को बचाए रखना दलित कविता के सामने बड़ी चुन्नौति है। दलित कविता आंदोलनधर्मी रही है। प्रारंभ में वह आक्रमकता को लेते हुए चलती दिखाई देती है। आज वह अपनी प्रौढ अवस्था में है। समय के साथ स्थितियाँ एवं संदर्भ बदलते जा रहे है। दलित कविता जातिभेद, धर्म, ईश्वर, एवं दलितों की अस्मिता को लेकर आंदोलनधर्मी रहीं है। आज उसे अपनी मूल प्रवृत्ति आंदोलनधर्मिता को बचाए रखना अनिवार्य बन गया है।

2. अनुभूतियों की एकरूपता :

दलित कविता का प्रारंभ क्रांतिकारी रहा है, जिसने दलित जीवन के ऐसे प्रसंगों से समाज को परिचित कराया जो पूर्ववर्ती या अन्य कविताओं में नहीं थे। इसने हिंदी कविता की विषयवस्तु एवं संवेदना को बदल कर नया मोड़ दिया है। इसमें दलित कविता के नयेपन की प्रभावोत्पादकता विद्यमान रहीं हैं। अपने चार दशकों के सफर में दलित कविता दलित समाज के शोषण, उत्पीडन को प्रतिरोध में परिवर्तित कर अभिव्यक्ति देने का महत्वपूर्ण कार्य किया है। दलित कवियों की स्वानुभूतियाँ एक समान रहने से उनमें दुहराव दिखने लगा। विषय–वस्तु की दृष्टि से प्रधानतः सामाजिक उत्पीड़न एवं शोषण के चित्रण के कारण उनमें एकरसता आने लगी जिससे कविता के अन्य पहलू दुर्लक्षित होते रहे। ऐसे में जातिवादी मानसिकता, शोषण–उत्पीड़न, सामाजिक अपमान आदि को दलित जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त करते–करते उनमें जीवन की रागात्मकता का चित्रण हटता–सा गया। परिणामतः 'अनुभूति क्षेत्र' का विस्तार कविता में जैसा दिखना चाहिए वैसा नहीं दिखाई दिया।

3. स्थापित जातिवाद और जातिविहीन समाज निर्मिति का संकल्प :

दलित कविता 'दलित मुक्ति' के मुहावरे को लेकर चलती है। सामाजिक उत्पीड़न और जातिवादी शोषण से दलितों को मुक्त करना उसका उद्देश्य रहा है। आज इस उद्देश्य की परिपूर्ति करना दलित कविता के सामने बड़ी चुनौति रही है।

निष्कर्ष :

हिंदी कविता का दलित विमर्श परक चिंतन–धरातल विशिष्ट रहा है। उसमें दलितों के जाति आधारित उत्पीड़न, शोषण और असमानता से भरे व्यवहार आदि का चित्रण है। ये चिंतन व्यापक धरातल पर कुछ बिंदुओं को प्रस्तुत करता है–जातिभेद एवं वर्णव्यवस्था का विरोध, वेदना एवं पीड़ा : दलित जीवन की त्रासदी, आंबेडकरवादी दर्शन का स्वीकार, सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रतिबध्दता। दलित कविता के सामने दलित विमर्श को लेकर कुछ चुनौतियाँ है– आंदोलन धर्मिता, अनुभूतियों की एकरूपता तथा स्थापित जातिवाद और जातिविहीन समाज की निर्मिति का संकल्प।

संदर्भ ग्रंथ :

1. संपा. कँवल भारती, साहित्य उपक्रम, इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2009, पृ.49.
2. वाल्मीकि ओमप्रकाश, 'बस्स! बहुत हो चुका', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. 1997, पृ.46
3. जयप्रकाश कर्दम, दलित कविता : समकालीन परिदृश्य, अमन प्रकाशन, कानपूर, संस्करण : प्रथम 2018, पृ.सं.18
4. ओमप्रकाश वाल्मीकि, सदियों का संताप, गौतम बुक सेंटर, शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1997, पृ.13
5. ओमप्रकाश वाल्मीकि, 'बस्स! बहुत हो चुका', वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन 1997, पृ.सं.03
6. जयप्रकाश कर्दम, गूगाँ नहीं था मैं, अमन प्रकाशन, कानपूर, संस्करण 2019, पृ.सं.66

7. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करणः 1997, पृ.सं.44
8. ओमप्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पहला संस्करणः2001, पृ.सं.96
9. अनेगासिंह दास, भीम ज्योति, मानसिंह प्रकाशन, मथुरा, प्रथम संस्करण,1983, पृ.सं.9
10.जयप्रकाश कर्दम, दलित कविताः समकालीन परिदृश्य, अमन प्रकाशन, कानपूर, संस्करणःप्रथम 2018, पृ. सं.24
11.बदलुराम रसिक, बहुजन हुंकार, बहुजन कल्याण प्रकाशन लखनऊ, छठा संस्करण 1983, पृ.सं.9
12.http://kavitakosh.org/kk/%EO, सी.बी.भारती, 'चुनौती'.

भारतीय नवजागरण और

डॉ. वी. गोविंद

सहायक प्राध्यापक (हिंदी विभाग) कर्नाटक केंद्रीय विश्वविद्यालय, कड़गंची, अलंद रोड़, कलबुर्गी—५८५३६७ ,मेल — jadavgovind001@gmail.com फोन नं. ९४९४२५००६१.

स्त्री विमर्ष

उन्नीसवीं सदी का आरंभ आधुनिक भारतीय नवजागरण का प्रथम चरण है। अठारहवीं सदी के अंतिम चरण में यहाँ ब्रिटिष षासन स्थापित हुआ। लेकिन भारतीय समाज में अंधविष्वास और धर्मांधता का फैलाव रहा। बाल विवाह, सती प्रथा, छुआछूत जैसी कुरीतियाँ पनपती रहीं। स्त्री की दयनीय हालत थी। इसमें बदलाव लाने के लिए सामाजिक सोच में बदलाव आना जरूरी था। उसी माहौल में समाज सुधार के क्षेत्र में अगुआ बनकर भारत में राजा राममोहन राय सामने आये। भारतीय समाज को जागरूक करने और उसमें सुधार लाने के लिए षिक्षा की अनिवार्यता पर उन्होंने ज़ोर दिया। खासकर स्त्री षिक्षा की ज़रूरत उन्होंने महसूस की। सामाजिक कुरीतियों से सतर्क रहने का उन्होंने आह्वान किया। नारी की स्थिति और समाज में उसकी जगह क्या हो ? इस पर राजा राममोहन राय ने गहराई से सोचा। धर्म के नाम पर प्रचलित कुरीतियों, अमानवीय भावनाओं के खिलाफ़ वे लड़के रहे। इस लड़ाई में उनको अपने माँ—बाप का विरोध झेलना पड़ा। उदारतावाद और मानवतावाद के साथ कार्य करने की आवष्यकता उन्होंने समझायी। सन् १८१५ में उन्होंने 'आत्मीय सभा' की स्थापना की। कुछ उपनिशदों का बंगला अुनवाद किया। बंगाली और संस्कृत के अलावा फ़ारसी, उर्दू और अंग्रेजी के वे बड़े विद्वान थे। सन् १८२८ में विलियम बैंटिंक गवर्नर नियुक्त होकर कलकत्ता आये। सती प्रथा रोकने का कानून राजा राममोहन राय के प्रयत्न से सन् १८२९ में तत्मकालीन गवर्नर विलियम बैंटिंक ने बनाया। अपनी पत्रिका 'संवाद कौमुदी' के माध्यम से उन्होंने सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ़ लेखनी चलायी। बहुपत्नी प्रथा और खासकर विधवाओं की बुरी हालत के खिलाफ़ आवाज़ उठायी। उन्होंने बालविवाह का विरोध किया साथ ही विधवाओं के पुनर्विवाह पर ज़ोर दिया। जाति भेद के वे विरोधी थे। सन् १८२८ में द्वारकानाथ ठाकुर के सहयोग से 'ब्रह्मसमाज' की स्थापना की। सामाजिक कुरीतियों से लड़ना ही इसका उद्देष्य था स्त्री सषक्तीकरण के सन्दर्भ में राजा राममोहन राय का स्त्री विमर्ष भारतीय परिप्रेक्ष्य योगदान षंसनीय है।
नवजागरण की लहरें पूरे भारत में उठ रही थीं। महात्मा जोतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले, बेहरामजी मलबारी, जस्टिस महादेव गोविन्द रानडे, महर्शि धोंडो केषव कर्वे, श्री नारायण गुरू, पेरियार जैसे सुधारकों के प्रयत्न से भारतीय समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन संभव हुआ। ''महाराश्ट्र में नवजागरण आन्दोलन में कुछ नये पहलू भी थे। मुगल सम्राट औरंगजेब के जमाने से महाराश्ट्र में षिवाजी के नेतृत्व में मराठा षक्ति ने केन्द्रीय मुगलिया सल्तनत को चुनौती देनी षुरू की थी। औरंगजेब की मृत्यु के बाद देखते—देखते मुगल साम्राज्य विघटित होने लगा और मुगल सम्राट का ही अस्तित्व उसके सूबेदारों की मेहरबानी पर टिकने लगा। मराठा षक्ति ने लगभग सौ साल तक हिन्दुस्तान में 'भाग्यविधाता' की भूमिका निभाई। लेकिन परिस्थिति की विचित्रता यह थी कि मुगल सम्राट से मराठा षासक को 'छत्रपति' कहलाने का हुक्मनामा मिलता था और हुक्मनामा हासिल करवाने वाला छत्रपति का मुख्य मंत्री—पेषवा—छत्रपति से ज़्यादा षक्तिषाली बनता जा रहा था। महाराश्ट्र में पूना में पेषवाओं की सत्ता का केन्द्र था। पेषवा वर्ण से ब्राह्मण थे। जबकि, 'छत्रपति' गैरीब्राह्मण थे और सो भी षास्त्रों की 'व्यवस्था' पाकर 'क्षत्रिय' बनाये गये अधिपति थे। महाराश्ट्र में इसलिए अंग्रेजी कंपनी के आगमन से उनकी सत्ता के विस्तार ने एक विचित्र—सी परिस्थिती पैदा कर दी थी।
उन्नीसवीं सदी से लेकर भारतीय महिलाओं की सामाजिक हैसियत में सुधार लाने का प्रयास किया गया। १९वीं सदी के सामाजिक माहौल में स्त्री की स्थिति और प्रचलित मान्यताओं पर प्रष्न चिन्ह लगाती हुई सन् १८८२ में मराठी में ताराबाई षिंदे ने स्त्री—पुरूश तुलना लिखी थी। दुनिया भर की स्त्री जाति की वास्तविक स्थिति पर विचार विमर्ष करने का आह्वान इसमें है। ताराबाई षिन्दे का जन्म मराठी कुनबी परिवार में हुआ था। उनके पिता हरि षिंदे, ज्योतिबा फुले के ब्राह्मण विरोधी आन्दोलन

से जुड़े थे। परिवार में ही सामाजिक जागरण का माहौल था। उनका जीवन काल १९वीं सदी का उत्तरार्द्ध था और वे १९०५ के कुछ बात तक ज़िंदा रहीं। उनके पिता बापूजी हरि षिंदे में डिप्टी कमिष्नर के दफ्तर में हेडक्लर्क थे। ताराबाई के पिताजी सत्य षोधक समाज के सदस्य थे। षिक्षित एवं एक सुधारक संस्था से जुड़े रहने की वजह से उन्होंने बेटी ताराबाई को षिक्षित किया। ताराबाई ने मराठी के साथ ही अंग्रेज़ी और संस्कृत का भी अध्ययन किया। ताराबाई नि:संतान विधवा थीं। उनका दूसरा विवाह नहीं हुआ क्योंकि ब्राह्मणों के प्रभाव से मराठों में भी विधवा विवाह का चलन उठ सा गया था। स्त्री–पुरूश समानता पर बल देते हुए उन्होंने चेतावनी दी कि स्त्री को आप दरकिनार नहीं रख सकते। ताराबाई ने लिंग भेद के आधार पर स्त्री–पुरूश के अधिकारों में फ़र्क करने और दोहरे मापदंड बरतने के खिलाफ़ आवाज़ उठाइ।१ वह बार–बार पूछती हैं कि पुरूश अपने आप को स्त्रियों से इतना भिन्न क्यों समझता है ? स्त्री की तुलना में वह खुद को इतना महान और बुद्धिमान क्यों मानता है अगर वे इतने ही महान और हीरो थे तो अंग्रेज़ों के गुलाम कैसे बन गये ? उनके बीच ऐसी क्या भिन्नता है कि पत्नी के मरने से पति पर कोई आफत नहीं आती वह जब चाहें दूसरा विवाह कर ले, पर पति के मरने से विधवा स्त्री को ऐसे दुख दिये जाते हैं मानो उसीने पति को मारा हो ? ये दोहरे मापदंड क्यों जबकि स्त्री ऐसी विधवा होने से अच्छा तो सती होना है।

धर्माचार्यों ने षास्त्रों में सब नियम पुरूशों की सुख–सुविधा का ख्याल रखकर बनाये हैं, स्त्रियों की नहीं।२ पुरूश प्रधान संस्कृति में घर के चारदीवारों के भीतर बाहरी दुनिया से दूर पड़ी रहनेवाली भारतीय नारी की दुर्दषा की ओर ताराबाई षिंदे इषारा करती है। पुरूश सत्ता की पैनी आलोचना तीखे षब्दों में वे करती हैं। स्त्री की स्वतन्त्रता छीनने का अधिकार पुरूश के पास कैसे आया ? वे समाज के सामने अपना सवाल उठाती हैं। पुरूश के अन्याय का यथार्थ रूप वे सामने लाती हैं। उनका सवाल है – ''तुम ने अपने हाथों में सब धन दौलत रखकर नारी को कोठी में दासी बनाकर, धौंस जमाकर दुनिया से दूर रखा। उसपर अधिकार जमाया। नारी के सद्‌गुणों को दुर्लक्षित कर अपने ही सद्‌गुणों के दिये तुमने जलाये। नारी को विद्याप्राप्ति के अधिकार से वंचित कर दिया। उसके आने–जाने पर रोक लगा दी। जहाँ भी वह जाती थी, वहीं उसे उसके समान अज्ञानी स्त्रियाँ ही मिलती थीं। फिर दुनियादारी की समझ कहाँ से सीखती वह ?३ तत्कालीन समाज में स्त्री के तनावग्रस्त जीवन यथार्थ को यहाँ वाणी मिली है। पुरूश सत्तात्मक समाज की स्त्री जो बेआवाज थी, ताराबाई के स्वर में वह बोल उठी। पुरूश वर्चस्ववाले समाज में स्त्री चेतना ने प्रष्न चिन्ह खड़ा कर दिया। पुरूश द्वारा विधवा पर किये जानेवाले अत्याचारों के खिलाफ़ उन्होंने आवाज उठायी। तत्कालीन समाज में विधवा की दयनीय स्थिति की ओर ध्यान से सोचने के लिए उन्होंने लोगों को मज़बूर किया। आक्रोष भरे स्वर में पुरूश प्रधान समाज व्यवस्था को चुनौती देती हुई ताराबाई षिंन्दे ने पूछा कि पत्नी के मरते ही दूसरा विवाह करने की आज़ादी यदि पुरूशों को है तो कौन सी ताकत है जो विधवाओं को पुनर्विवाह करने से रोकती है ? ''तुम तो पहली की मृत्यु के पष्चात दसवें ही दिन दूसरी को ब्याह कर लाते हो। बताओ भी कि कौन से ईष्वर ने तुम्हें ऐसी सलाह दी है ? जैसी स्त्री वैसा ही पुरूश ! तुम में ऐसे कौन से गुण विद्यमान है, तुम कौन ऐसे षूर और जांबाज़ हो कि जिसकी वजह से परम पिता ने तुम्हें ऐसी स्वतन्त्रता दी है ?''४ पुरूश सत्ता के निर्मम दबाव में दम घुटनेवाली निरीह स्त्री की असहाय दषा की ओर ताराबाई ने ध्यान आकर्शित किया है। लेकिन खेद के साथ कहना पड़ता है कि वहाँ भी उनको अन्य कवियों के बराबर का दर्जा नहीं दिया गया। साहित्य के जिज्ञासु पाठक उनके गद्यकार व्यक्तित्व से अपरिचित नहीं हैं। उनकी कविता में रहस्यवादी प्रवृत्ति और दुखवाद की अधिकता है, भावुकता है। लेकिन गद्य में विचारक के रूप में उनका बौद्धिक पक्ष प्रखर है। यह उनके व्यक्तित्व के दो पहलू हैं। इन दोनों पक्षों पर समग्रता से विचार करने पर ही उनकी सही आलोचना संभव है। अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ, श्रंखला की कड़ियाँ जैसी रचनाओ के ज़रिए महादेवी जी ने भारतीय स्त्री जीवन के अनदेखे पहलुओं पर प्रकाष डाला है। इसी कारण से स्त्री विमर्ष के सन्दर्भ में उनकी गद्य रचनाओं का पुनर्मूल्यांकन आवष्यक हो जाता है।

महादेवी नारी चेतना की भारतीय परम्परा पर विचार करनेवाली अद्वितीय विचारक रही हैं। उनके विचार रेखाचित्रों से होकर श्रंखला की कड़ियाँ बनकर हमारे सामने उभर आते हैं। श्रंखला की कड़ियाँ भारतीय नारी की समस्याओं का जीवत विवेचन ही है।

संदर्भ सूची :—

डॉ. राजम नटराजन पिलै, गाधी भुगीन नारी जागरण और हिन्दी उपन्यास
श्री अरविद — दे रेनेसाँ ऑफ इण्डिया
ताराबाई षिंदे — स्त्री—पुरूश तुलना
वीर भारत तलवार — पुरूश तुलना
ताराबाई षिंदे — स्त्री तुलना।

B.Aadhar International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-B

ISSN : 2278-9308 December, 2023

नासिरा शर्मा के उपन्यासों का सामाजिक चिंतन

डॉ. नागनाथ एस. वारले

सहायक प्राध्यापक लाल बहादुर शास्त्री महाविद्यालय धर्माबाद

nagnathwarlewarle4367@gmail.com ,7875732155

'साहित्य समाज का दर्पण है' इस लोक प्रचलित सूक्ति के अनुसार साहित्य रुपी दर्पण में समाज प्रतिबिंबित होता है।एक साहित्यकार समाज को जैसा महसूस करता है, वही उसके साहित्य में प्रतिफलित होता है। समाज के प्रति संवेदनशीलता ही साहित्य का मूल होता है। व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग होता है। अतः कोई भी लेखक साहित्यकार ,कथाकार अथवा कवि प्रथमत: व्यक्ति होने की नाते समाज का ही एक अंग होता है। समाज की एक इकाई या घटक के रूप में लेखक दिन-रात जो कुछ भी जीता है अनुभूत करता है वह सब उस संवेदनशील हृदय में प्रवेश कर साहित्य के रूप में प्रस्फुटित हो उठता है। युग परिवर्तन के साथ सामाजिक परिवर्तन का वह साक्षी होता है । इसी बदलाव का सच हमें समकालीन साहित्य में देखने को मिलता है। नासिरा शर्मा जी का साहित्य भी समकालीन समाज तथा उसके अंतरमन को मुखरता के साथ अभिव्यक्त करता है। उनके उपन्यासों का अध्ययन करते समय पाठक स्वयं उस परिवेश में खो जाता है। नासिरा जी ने हिंदू मुस्लिम दोनों समाज के वास्तविक स्वरूप, सोच मंतव्य को स्पष्ट रूप से अपने साहित्य में चित्रित किया है। जो पाठक वर्ग को चिंतन करने के लिए मजबूर कर देता है।

आज के दौर में नई पीढ़ी ज्यादातर भटकाव का शिकार है। पश्चिम के प्रभाव से वह अपने मूल संस्कारों से दूर होती जा रही है। उसके आचार -विचार, पहनावा,खानपान उठने-बैठने का ढंग दिखावे की प्रवृत्ति का शिकर हो चली है। नव वर्ष के आयोजन को ले या किसी और आयोजन व त्यौहार को सभी के मनाने के तरीके व मायने बदल गए हैं। आज की पीढ़ी पूर्णतः उन्मुक्त व स्वच्छंद विचरण कर रही है। उसमें आत्मबोध की न्यूनता दृष्टिगोचर हो रही है। इसी की ओर संकेत करते हुए नासिर जी अपने उपन्यास 'अक्षयवट' में आंग्ल नव वर्ष के समय उपस्थित एक दृश्य का जाहिर चरित्र की नजर से वर्णन करती हुई लिखती है कि-"इन सारी रंगीनियों को देखने जहीर और मित्र मंडली भी पहुंची हुई थी। वे सब जवान थे, मगर इन नौजवानों को देखकर जो पन्द्ह से बीस तक की उम्र के थे वे अपने को बुजुर्ग महसूस कर रहे थे। इस बीच समय किस तेजी से बदला है इसका अंदाज उन्हें आज हो रहा था की हर लड़की-लड़के का कोई ना कोई बॉयफ्रेंड और गर्लफ्रेंड था। जिसके साथ वह नए आनेवाले वर्ष का सपना देख रहे थे। इसमें से जाने कितने जोड़े विवाह मंडप तक पहुंचे और कितनों की मित्रता साल के मध्य तक जाते-जाते टूट गई। संबंधों का इतनी जल्दी खिलना और उतनी ही शीघ्रता से कुम्हला जाना शायद ही आज का यथार्थ है?"१यही बात नासिरा शर्मा के उपन्यासों के सामाजिक चिंतन की है।

भटकाव की शिकार नई पीढ़ी को यदि मां-बाप चाहे तो सही गलत के मायने समझाकर, अच्छे संस्कार देखकर पुनः रास्ते पर ला सकते हैं। पर इसके लिए बड़े बुजुर्गों को चाहिए कि वे अपनी औलादे के सामने आदर्श बनकर खड़े हो। जैसे 'कागज की नाव'उपन्यास में मजहबी अपनी बेटी महलका को समझाती हुई कहती है-"मैंने तुम्हें कहीं बातों में गलत मशविरे दिए वह मेरी ममता की खुदगर्जी थी। अब मेरी आंखें खुल चुकी है। जैसे मैंने अपनी गलती मान ली है, अब तुम भी मान लो और तौबा करो। तौबा का दरवाजा हमेशा खुला रहता है। उसे नेक बंदे को जो तुम्हारे शौहर का बाप है उसकी खिदमत कर अपना कफफारा आदा करो वरना मैं तुम्हें दूध बखशाने

वाली नहीं हूं, यह मेरा आखिरी फैसला है।"२ इस प्रकार नासिर जी आज की भटगांव की जिंदगी जी रही नई पीढ़ी पर चिंतन करने के लिए विवश करती है।

आज के युग में सामाजिक ताना-बाना टूटता जा रहा है। इसका कारण बाजारवाद व भौतिकवाद है। सारे-रिश्ते नाते स्वार्थपरक होते जा रहे हैं। परिवार में जो कमाता है उसके साथ सारे लोग चिपके रहते हैं।इस प्रकार के अर्थ प्रधान समाज का चेहरा हमारे सामने रखते हुए नासिर जी लिखती है कि-" इस शहर को बाजार ने बिगड़ा है और बाजार आया कहां से? बात सिर्फ पैसे की है। हमारा इलाका पैसे का लालची हो चुका है। बाहर का आया पैसा जो मर्दों के खून-पसीने की कमाई है। उनकी कुर्बानी और तन्हाई का निचोड़ है। वह अपनी जगह से चल हमारे बैंकों में जब पहुंचता है तो कभी दुगना तो कभी चौगना हो जाता है। उसे मेहनतकश इंसान के कुणबेवाले उससे सिर्फ पेट नहीं भरते है बल्कि अय्याशी में लग गए हैं। गुलछर्रे उडाते.... मां का इलाज हो सके बाप की आंखें खुल सके बहन की डोली उठ सके और रहना पड़ी जमीन छूट सके..."३

समाज में भ्रष्टाचार इस कदर बढ गया है कि मानो वह मानव-जीवन का हिस्सा हो। किसी भी महकमे को गरीबों में झांककर देखो सबका हाल बेहाल है। बिना जान-पहचानओर मुट्ठी गर्म किये किसी भी कार्य का करवाना बहुत कठिन है । इसमें पुलिस महकमा तो बेहद बदनाम है। 'सात नदियाॅ एक समंदर', 'अजबी जजीरा', 'जीरो रोड', 'अक्षय वट' इन सभी उपन्यासों में मुखरता के साथ इस यथार्थ स्थिति को लेखिका नासिरा जी ने उजागर किया है। जो एक महत्वपूर्ण सामाजिक चिंतन का विषय है। सिपाही रामस्वरूप अपने पाट्टीदारी के विवाद से तंग आकर अपने साथी बालवीर से कहता है- " पुलिस की जात को तुम जानत हो, दरोगा हरपाल सिंह बड़ा हारामी है। खाए- पिये के आगे ओका कुछ औंस सुझत नाही है।ठाकुर का लौंडा बोतल-वोतल दिये- दिलाय के मुठ्ठी गर्म कर सच्चाई दबाय दिस.... पुलिस के मोहकमा मैं आये के जानो आॅख खुल गयी। सब समझ के भी हाथ कटवाये का पडत है। अब का बोले?"४

आज गांव से शहरों की ओर पलायन होने के कारण समाज अनेक प्रकार की समस्याओं का शिकार होता जा रहा है। जो एक महत्वपूर्ण सामाजिक चिंतन का विषय है। युवकों के काम धंधे की तलाश में शहर व परदेश में लम्बे समय के लिए चले जानें के कारण पीछे रह जाते हैं, असहाय व बुढ़े मां-बाप अबोध और अजन्मे बच्चे और अनेक बंदिशों व विरह वेदना से पीड़ित पत्नी इस कारण परस्पर विश्वास,प्रेम, त्याग ,सेवा मेलजोल आदी शुष्क होते चले जाते हैं। 'कागज की नाव' उपन्यास के जहूर मियांऔर मलकानूर हो चाहे जीरो रोड का सिद्धार्थ सभी इस समस्या से ग्रस्त है ।लगभग यही रिश्तो की दूरी के जीते-जागते उदाहरण है। जो पाठक वर्ग को सामाजिक चिंतन करने के लिए मजबूर करते हैं।

अनेक समस्याओं के बावजूद भी नासिरा जी ने पाठकों की चिंतन शक्ति को झकझोरने का प्रयास किया है। कहा है कि 'सारे जहॉ से अच्छा हदुस्ता हमारा। निजाम बंटवारे के बाद पाकिस्तान चला गया और अपनी मेहनत के भार बड़ा अमीर आदमी बनता है,घर परिवार बसता है औद मौज से रहता है पर जब वह लम्बे अरसे बाद अपने मूल वतन भारत लौटता है और अपने भतीजे की जीवन शैली को देखता है तो वह कुंठित सा हो जाता है और पछताते हुएगुस्सा हो जाता और पछताते हुए कहता है-"पछतावा.. बहुत पछतावा हो रहा है बेटे। तुमसे क्या छुपाना कुछ मजा नहीं आया जिंदगी में सब कुछ पाकर भी। क्या खोया यह आजसमझ में आया। आज तक हिंदू मुस्लिम की खबरें पाकिस्तान में पहुंचती थी मगर यह इत्तला वहां नहीं पहुंची थी कि एक मुस्लमान अफ़सर के नीचे हजारों मातहत हिंदू भी हो सकते हैं और... दंगे फसाद से मारे जाने के बाद भी इस मुल्क में उनकी खुशहाली पिछले चालीस वर्षों मे पनप उठी है जो बहुत कुछ न कहकर भी बहुत कुछ बतातीं है कि असलियत वह नहीं जो

बताई है, बल्कि सच्चाई वह है जो नजर आ रही है।"५इस तरह से नसिरा जी ने समाजीक जातिगत भेदभाव पर चिंतन करने के लिए पाठक वर्ग को विवश करती है।

नासिर जी ने मध्य वर्ग की जीवन शैली के एक पक्ष को उद्घाटित कर सामाजिक चिंतन को उजागर किया है। नौकरी की तलाश तथा उॅचा उठने की मनसा ने मध्यवर्ग के परिवारों को अपनी जड़ों सेदूर शहरों में ले जाकर अलग-थलग सा कर दिया है। जब तक सब कुछ अनुकूल होता है तब तक अपने को धन्य समझता है परंतु जब भी विपरीत समय होता है या दुख- दर्द आता है तब वह सहारे की तलाश में अपनों को याद करता छटपटाता है । क्योंकि अजनबी शहर में वह अपने नाते-रिश्तेदारो परिवार वालों से दूर होता है। ऐसी ही स्थिति 'शब्द पेकेरू' उपन्यास में देखने को मिलती है। सूर्यकांत की पत्नी साधना के बीमार होने पर घर की नीव हिलने लगती है। एक तरफ दोनों बेटियों की पढ़ाई और उनके सपने दूसरी तरफ पत्नी की देखभाल और नौकरी में से किसी एक का चुनाव क्योंकि उसका स्थानांतरण दूसरे शहर में हो जाता है।साधना की सुध-बुध लेने तथा उसके मन को समझने के लिए किसी के पास समय नहीं होता है। पर धीरे-धीरे सिर्फ साधना को ही नहीं बल्कि पूरे परिवार को यह बात समझ में आ गई थी कि रोगी का रोग केवल शारीरिक नहीं होता बल्कि संवेदनाएं भी शरीर को क्षतिग्रस्त बना देती है। जिसकी तरफ किसी का ध्यान नहीं जाता है कि हौसले की बढ़ावे की प्यार कि सख्त जरूरत होती है।पति सूर्यकांत भी कर्तव्य के चक्कर में उससे दूर चला जाता है। बेटियां भी दूर-दूर से देखती और कमरे से भाग जाती थी। कितनी व्यथा, कीतनी वेदना, पीड़ा सही है साधना ने आखिर वह सोचने लगती है कि इस तरह जीकर करती भी क्या?लेटे-लेटे वह अपनी ननद की बातें सुनती वह कहती है-"भैया अब दूसरी शादी का सोचो हम भी कब तक अपनी गृहस्ती को छोड-छोड़कर आते रहेंग।"६

इस प्रकार से नासिरा शर्मा जी ने अपने उपन्यासों में विभिन्न कथानकों, चरित्रों एवं पत्रों के माध्यम से समकालीन समाज के यथार्थ को उजागार कर सामाजिक चिंतन को बढ़ावा दिया है।समाज के विविध स्वरूपों एवं विविध पक्षों पर प्रकाश डालकर पाठको को चिंतन करने के लिए विवश किया है कि उन्हें समाज में किन-किन पक्षों पर सुधार करने की जरूरत है।और किन-किन बातों को साथ लेकर चलना है? बदलते परिवेश व युगीन परिस्थितियों के अनुरूप उन्हें बदलना है।

संक्षेप में कहे तो नसिरा जी ने सामाजिक चिंतन कर एक स्वस्थ समाज की परिकल्पना को समाज के सम्मुख प्रस्तुत करतीहै ।जो अंत्यत प्रशंसनीय है!

संदर्भ सूची

१) अक्षयवट -पृ.संख्या-२८-२९

२) कागज की नाव-पृ.संख्या-४९

३)कागज की नाव-पृ.संख्या-६६

४)अक्षयवट -पृ.संख्या-१०२-१०३

५)जिन्दा मुहावरे -पृ.संख्या-१२६-१२७

६) शब्द पखेरू -पृ.संख्या-५४-५५

राजभाषा हिंदी की चुनौतियां

डॉ. (प्रोफेसर) शुभदा पांडेय

चित्तौड़गढ़- राजस्थान मोबाइल -7498742907

हिंदी सर्वमान्य भाषा के रूप में स्वीकृत हो चुकी है, इसमें कोई दो राय नहीं है।यह समय अतिबौद्धिकता का है, इसलिए सरलता से कोई किसी को स्वीकार नहीं करता,अपनी प्रतिभा की प्रवरता उसमें खोजता है, तुलना करता है। सहज सम्मान पाना आज बहुत कठिन है, या तो कृत्रिम और औपचारिक मान दिया जा रहा है, जिसमें कोई प्रलोभन हो, या फिर बहुत ठोंक ठठा कर हम स्वीकृति दे पाते हैं। ऐसा ही हिंदी के साथ भी है, एक ओर इसके डैने दूर आकाश से होते हुए, सामुद्रिक यात्राओं की दूरी तय कर रहे हैं तो, वहीं कभी अपने घर में अपने अस्तित्व को तलाशती दिखती है हिंदी।

हिंदी ने अभिव्यक्ति देकर सबको भाषा दान दिया।

हर क्षेत्रों में विपुल सार्थक वैश्विकता पहचान दिया।

राजभाषा हिंदी की संवैधानिकता निम्न प्रकार है -----

343- संघ की भाषा (1) संघ की राजभाषा हिंदी और लिपि देवनागरी होगी।संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।

(2)खंड (1) में किसी बात के होते हुए भी,इस संविधान के प्रारंभ से पंद्रह वर्ष की अवधि तक संघ के उन सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा,जिनके लिए उसका ऐसा आरंभ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था।

परंतु राष्ट्रपति उक्त अवधि के दौरान, आदेश द्वारा,संघ के शासकीय प्रयोजनों में से किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी भाषा का और भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के अतिरिक्त देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा।

(3) इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी,संसद उक्त पंद्रह वर्ष की अवधि के पश्चात,विधि द्वारा ----

(क) अंग्रेजी भाषा का,या

(ख) अंकों के देवनागरी रूप का

ऐसे प्रयोजनों के लिए प्रयोग उपबंधित कर सकेगी,जो ऐसी विधि में विनिर्दिष्ट किए जाएं।

344- राजभाषा के संबंध में आयोग और संसद की समिति (1) राष्ट्रपति,इस संविधान के प्रारंभ से पांच वर्ष की समाप्ति पर और तत्पश्चात ऐसे प्रारंभ से दस वर्ष की समाप्ति पर, आदेश द्वारा,एक आयोग गठित करेगा,जो एक अध्यक्ष और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट विभिन्न भाषाओं का प्रतिनिधित्व करने वाले ऐसे अन्य सदस्यों से मिलकर बनेगा,जिसको राष्ट्रपति नियुक्त करे और आदेश में आयोग द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया परिनिश्चित की जाएगी।

(2) आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वह राष्ट्रपति को -----

(क) संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए हिंदी भाषा के अधिकाधिक प्रयोग

(ख)संघ के सभी या किन्हीं शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर निर्बंधनों

(ग) अनुच्छेद 348 में उल्लिखित सभी या किन्हीं प्रयोजनों के लिए प्रयोग की जाने वाली भाषा,

(घ) संघ के किसी एक या अधिक विनिर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए प्रयोग किए जाने वाले अंकों के रूप में,

इस तरह अनेक अनुच्छेद द्वारा इसे राजभाषा का दर्जा दिया गया।साथ ही यह भी कहा गया कि ---

संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए,उसका विकास करे,जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।

भारत में अनेक भाषाएं हैं, कोई भी भाषा किसी दूसरी भाषा से वैमनस्य नहीं रखती,सब के अपने साहित्य और महत्ता हैं। इनमें परस्पर प्रतिद्वंदिता भी नहीं है। इसमें कोई दो राय नहीं कि स्वतन्त्रता संग्राम की युद्ध नीति की भाषा अंग्रेजी नहीं थी, उसका श्रेय हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को जाता है। हमारे देश को एकाकार करने में हमारी संस्कृति की अग्रणी भूमिका है, जो चारों दिशाओं में समान रूप से फल- फूल रही है। भाषा सांस्कृतिक गतिमयता को प्रवाह देती है और इसमें हिंदी का वर्चस्व आज अत्यधिक है।

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन भारत में नागरी लिपि और हिंदी के प्रचार को राष्ट्रीयता मानते थे।भारत के लिए हिंदी की अनिवार्यता को व्यक्त करते हुए,, विनोबा भावे ने कहा था ---" यदि मैंने हिंदी का सहारा नहीं लिया होता तो, काश्मीर से कन्याकुमारी और असम से केरल तक गांवों-कस्बों में जाकर भूदान और ग्रामदान का संदेश जन-जन तक नहीं पहुंचा पाता।"

इसी तथ्य का अनुमोदन करते हुए डा. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था ----

" राष्ट्र भाषा के माध्यम से ही राष्ट्र- हित एवं निर्माण संभव है।"

हिंदी के विषय में अलग-अलग विद्वानों ने अपने -अपने उद्गार देकर,उसकी प्रभुता स्वीकार की है -

महान राष्ट्रकवि सुब्रमण्यम भारती ने कहा है कि --" राष्ट्र की एकता को यदि बना कर रखा जा सकता है तो,उसका माध्यम हिंदी ही है।किसी दूसरी भाषा को जानना सम्मान की बात है, लेकिन दूसरी भाषा को अपनी राष्ट्रभाषा के बराबर दर्जा देना शर्म की बात है।"

महर्षि दयानंद सरस्वती ने कहा कि ---" हिंदी द्वारा सारे भारत को एक सूत्र में पिरोया जा सकता है।"

काव्य जगत में भी कवियों ने इसकी महत्ता को स्वीकार करते हुए, रचनाएं लिखीं हैं ---

गोपाल सिंह नेपाली --

बढ़ने दो इसे सदा आगे।
हिंदी जन- जन की गंगा है।
यह माध्यम उस स्वाधीन देश का।
जिसकी ध्वजा तिरंगा है।
हो कान पवित्र इसी सुर में।
इसमें हर हृदय मुखरने दो।
हिंदी है भारत की बोली।
तो अपने-आप पनपने दो।

पं. रामेश्वर दयाल दूबे ने लिखा है ----

भारत जननी एक हृदय हो।

एक राष्ट्र भाषा हिंदी में।

कोटि- कोटि जनता की जय हो।

स्नेह सिक्त मानस की वाणी।

गूंजे गिरा यही कल्याणी।

उच्चाधिकारियों, राजभाषा अधिकारियों और हिंदी अधिकारियों को शासकीय कामकाज में हिंदी का प्रयोग करना चाहिए,तथा अन्य कर्मचारियों को भी प्रेरित करें। इन्हें समय-समय पर संवैधानिक एवं विधिक व्यवस्था तथा नियमों, अधिनियमों, निर्देशों से भी अवगत कराते रहना चाहिए।इसी प्रकार उच्चादेशों के माध्यम से हिंदी में कार्य करने के प्रावधान का अनुपालन करने के लिए यथोचित कार्यवाही करते रहें।इस हेतु निम्न विंदुओं पर ध्यान देना आवश्यक है ---

1- स्वयं को हिंदी में कार्य करने के लिए मानसिक रूप से तैयार रखना।

2- तत्पश्चात इसका निश्चय कर लीजिए कि धीरे-धीरे हिंदी को सरकारी कार्यों का माध्यम बनाना है।

3- हिंदी के प्रचलित शब्दों का अधिक से अधिक प्रयोग करें।

4- जिस शब्द की हिंदी तत्काल नहीं सूझ रही हो उसका किसी अन्य भाषा में नियमित बोले जाने वाले शब्द को देवनागरी लिपि में प्रयोग कीजिए।

5- जैसे अंग्रेजी में टिप्पणी,आलेखन,पत्र व्यवहार करते हैं,उसी तरह हिंदी में भी करें।

6- कार्यालय में प्रशासनिक शब्दकोश का होना आवश्यक है, जिससे हिंदी के कार्यों में सुगमता मिले।

7- प्रतिदिन व्यवहार की तरह सरकारी कार्यालयों में भी हिंदी का प्रयोग शिष्टता के साथ कीजिए।

8- धीरे-धीरे यह प्रक्रिया जोर पकड़ लेगी और इसमें आपको सुगमता का अनुभव होगा।

9- समय-समय पर कार्यालयों में कार्यशालाओं, गोष्ठियों, बैठकों और सम्मेलनों का आयोजन करते रहें। कार्यालय का उद्देश्य काम काज में प्रयोग होने वाली व्यवहारिक हिंदी का ज्ञान कराना होना चाहिए।

10- बैठक और आयोजन इतने रूचिकर हों कि सभी को आनंद की अनुभूति हो, ऊबाऊ नहीं लगना चाहिए।

11- राजभाषा संबंधी पत्र- पत्रिकाओं का प्रकाशन होते रहना चाहिए।

हिंदी की वैश्विक प्रसिद्धि के लिए महत्वपूर्ण घटक निम्न हैं ------

1-हिंदी भाषा- भाषी प्रमुख देश

2- विदेश में हिंदी शिक्षण प्रशिक्षण की व्यवस्था

3- प्रवासी भारतीयों द्वारा हिंदी का प्रयोग एवं प्रचार

4- दूतावासों का योगदान

5- अनुवाद कार्य

6- हिंदी दिवस समारोह व कवि सम्मेलन का आयोजन

7- विश्व हिंदी सम्मेलन

8- विदेश में स्थित हिंदी संस्थाओं तथा विदेशों से प्रकाशित हिंदी पत्र- पत्रिकाओं का योगदान

9- हिंदी फिल्मों तथा भारतीय गीत - संगीत का प्रचलन

10- पुरस्कार व सम्मान योजना

हिंदी भाषा के विकास में संतों, महात्माओं, उपदेशकों, कथावाचकों, आदि के योगदान का भी विशेष महत्व है, क्यों कि वे जनोपयोगी भाषा में, सामाजिक संचेतना के संदेश देते हैं,जो लोगों की ज़ुबान तक चढ़ जाता है।उत्तर भारत और अन्य क्षेत्रों में भी भक्ति काल के सूरदास, तुलसीदास, मीरा और कबीर को समान रूप से गाया,सुना व अन्य प्रयोग में लिया जाता है।इसकी समरसता और जन मंगलता ही इसके अपनाए जाने के पीछे का निहितार्थ है। इसके अतिरिक्त आज हिंदी विश्व बाज़ार की भाषा बन चुकी है।पर चंद राजनीतिक स्वार्थ के कारण, हम उसे उसके सम्मानित स्थान देने से वंचित किए बैठे हैं।

सन् 1947 की सत्ता हस्तांतरण के पश्चात शारीरिक परतंत्रता तो एक प्रकार से समाप्त हो गई, किंतु मानसिक परतंत्रता से अब भी हम जूझ रहे हैं।यह अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के लिए जुझारूपन आजीवन बना रहता है, और हम आज भी अपने आंतरिक परतंत्रता की लड़ाई में संलग्न हैं।भाषा की सहज स्वीकृति न होने से, हिंदी के लिए कृत्रिम प्रयास जैसे चलने वाले उपक्रम में स्वाभाविकता नहीं है, जिससे अथक परिश्रम और अथाह खर्चे का सफल परिणाम देखने को नहीं मिलता है ।यह स्वीकार्यता आंदोलनों या क्रांतियों से नहीं प्राप्त होगी।इसके लिए हिंदी को रोजगार से जोड़ना होगा।आज भारत विश्व का सबसे बड़ा बाज़ार बन चुका है, बाज़ार मूलक भाषा का स्थान शीघ्र ग्रहणीय होगा।साथ ही अनुवादों और मानकीकरण के जरिए इसे और समृद्धता प्रदान की जा सकती है।

संजीव के कथा साहित्य का कथ्य: एक चिंतन

प्रा.दया शंकर यादव

प्रतिभा निकेतन महाविद्यालय नांदेड़ महाराष्ट्र

आधुनिक काल में कथा साहित्य का क्षेत्र आायत विस्तृत है। इसमें लेखक ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक, नैतिक, आर्थिक किसी भी प्रकार के कथ्य को लेकर अपनी रचना का निर्माण करता है। कथ्य किसी व्यक्ति, स्थान, वर्ग आदि से संबंधित हो सकता है। उसके माध्यम से लेखक जीवन के समग्र आयामों को चित्रित करने के साथ उसको समझने का प्रयास भी करता है। इस प्रकार के साहित्य का प्रारंभ प्राचीन लोक जीवन में ही वैचित्र्यपूर्ण दृश्यों घटनाओं, जीवों आदि को देखने से लोक मानव के मन में उत्पन्न जिज्ञासाओं के रूप में परिलक्षित हुआ है।

जिस प्रकार कथा साहित्य में सफल रचना की निर्मिति के लिए कुछ तत्वों की आवश्यकता होती है। कथानक या कथावस्तु कथा साहित्य का प्राण है। इस शब्द का निर्माण संस्कृत के कथ धातु से हुआ है जिसका अर्थ 'जो कुछ कहा जाये। इस प्रकार साहित्य कथात्मक रूप को हम कथानक कह सकते हैं। यह कथात्मक रूप साहित्य की अनेक विधाओं में मिलता है, जैसे- महाकाव्य, खण्डकाव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि। कया और कथानक में अंतर है। कथा कथानक का कच्चा रूप है। कथा और कथानक में फर्क है, बिल्कुल उसी प्रकार कथ्य भी रचना का केन्द्र बिंदु है। रचना को सफल बनाने के लिए प्रभावात्मक एवं जानदार कथ्यों की आवश्यकता होती है।

कथ्य का अर्थ:-

'नालंदा विशाल शब्द सागर में कथ्य का अर्थ, "कहने के योग्य' बताया है।"1 स्पष्ट है कि साहित्यकार द्वारा रचना का निर्माण करते समय जो भी कथ्य चुना जायेगा वह समाज की दृष्टि से योग्य होना चाहिए। कथनीय होना चाहिए जिससे समाज कुछ अपने जीवन में अनुकरण कर सके। साहित्य प्रारंभिक काल में मनोरंजन को लेकर लिखा गया है। परिस्थिति और समय के साथ-साथ मनुष्य में परिवर्तन होता गया। मनुष्य की दैनंदिनी आवश्यकताएं बदलती रहीं। विचार करने का ढंग बदलता गया। उसी के साथ साहित्य का रूप भी बदलता रहा और कथ्य का स्वरूप भी परिवर्तित हुआ। कथ्य के बारे में डॉ. आशा मेहता के विचार उचित लगते हैं, "जीवन का अंकन करते हुए उसके प्रति लेखक की अनुभूत-जीवन दृष्टि की अभिव्यक्ति ही कथ्य है। इससे स्पष्ट होता है कि साहित्य लिखते समय साहित्यकार या कलाकार को समय के साथ बदलने की आवश्यकता है। समाज की अभिरुचि को जानकर काल्पनिक घटनाओं तथा प्रसंगों को छोड़कर, वास्तविक जीवन जीते समय जिन परिस्थितियों को उन्होंने भोगा है, अनुभव किया है, देखा है, जिया है ऐसे अनुभवों को कथ्य के रूप में चुनना चाहिए। कल्पना को छोड़कर वास्तविकता की ओर संकेत दिया है। आज अपेक्षाएं बदल रही हैं। शिक्षा का प्रचार-प्रसार होने के कारण पाठक कल्पना के अलावा तार्किक बन गया है। परिणाम स्वरूप चमत्कारिक बातों पर अविश्वास करने लगा है। इसी कारण साहित्यकारों को जीवन की अनुभूति को कथ्य के रूप में उठाना चाहिए जो प्रेमचंद और उनके समकालीन साहित्यकारों ने किया।

आज का युग विज्ञान, कम्प्यूटर, इंटरनेट का युग है। एक तरफ विज्ञान वरदान साबित हो रहा है, तो दूसरी तरफ शाप। भौतिक विकास के कारण मनुष्य मर्यादित, संकुचित, आत्मकेंद्रित बनता जा रहा है। समय के साथ

उसकी अभिरुचि बदल रही है। वह हमेशा नवीनता चाहने लगा है। साहित्य में भी मौलिकता की अपेक्षा करने लगा है। मुझे यहां लूनाचरस्की के विचार कथ्य के बारे में महत्त्वपूर्ण लगते हैं, "कलाकारों को ऐसे कथ्य सामने लाना चाहिए, जिन पर कुछ न लिखा गया हो।"3 इससे स्पष्ट होता है कि कलाकारों को समाज की सुविधाओं से जो घटक वंचित हैं, जो गरीब हैं, जो शोषित हैं, जिस पर अन्याय हो रहा है, भ्रष्ट नेता आदि नये-नये कथ्यों को उठाकर साहित्य में योगदान देना जरूरी समझते हैं। ऐसी रचनाएं समाज, साहित्यिक क्षेत्र में मील का पत्थर साबित हो सकती हैं। कथा को मनोवैज्ञानिक सामाजिक घात-प्रतिघातों से स्वाभाविक विकसित करते हुए तथा उनके बीच पात्रों की उनकी विशिष्टता में जीते हुए ही कथ्य की सजीव पुनर्स्थापना होती है। बहुप्रचारित वादों के इस युग में कथ्य की परख के लिए सजग और संतुलित दृष्टि की आवश्यकता और भी अधिक है। विशेषकर तब जब उपन्यासकार अपने दृष्टिकोण को व्यक्त कर रहा हो। कथ्य की परख करते समय यह जानना आवश्यक है कि, "हम जीवन को जितना देख पाते हैं उससे कितना अधिक उपन्यासकार देखता है और उसकी दृष्टि में कितनी गहराई है। उसकी क्या व्याप्ति है, उसका मर्मस्पर्शी अथवा तीव्रतम स्थल कौन सा है।"4

कथाकार संजीव जनवादी धारा के प्रखर कथाकार हैं। वे विचारधारा और कथा-साहित्य की कला दोनों के प्रति प्रतिबद्ध हैं। संजीव के कथा-साहित्य के कथ्य को लेकर आलोचक रवि भूषण के विचार यहां महत्वपूर्ण लगते हैं, "प्रेमचंद और यशपाल को छोड़कर इतने बड़े कथा-फलक का अन्य कोई कथाकार हिंदी में नहीं है। उनकी कहानियों का भूगोल भी बड़ा है। भारतीय राज्य सत्ता और व्यवस्था, पुलिस तंत्र, प्रशासन, नक्सलबाड़ी, भारतीय मध्यवर्ग, निम्नवर्ग, गांव कल-कारखाना, आदिवासी समूह, मुस्लिम समाज, लिंग और जाति, नट-बाजीगर और खानाबदोश जाति पुराने सामंत-जंमीदार और नये सामंत न्याय व्यवस्था, नेता, विज्ञान, धर्म, सगुनिए, फौजी, जेल, दलित, नारी, सेठ-साहूकार, शिक्षक, कवि, लेखक, कलाकार, फिल्म और नाटक नौटंकी से पति-पत्नी, मछुआरे, पहाड़ी चरित्र आदि से उनकी कहानियां भरी पड़ी हैं।"5

संजीव के कथा-साहित्य का कथ्य निम्नलिखित रूप से दिया गया है-

संजीव के कहानी साहित्य का कथ्य

1:- तीस साल का सफरनामा' - संजीव का यह प्रथम कहानी संग्रह है जो सन १९८१ में प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत संग्रह में नौ कहानियों को समावेश किया गया है। संग्रहित कहानियों में भारत की आजादी के तीस सालों के सफर में हासिल जन-मन की व्यथा और आकांक्षाओं का चित्रण किया है। कहानीकार ने तीस वर्षों के आर्थिक, नैतिक, राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक यथार्थ को कथ्य के रूप में चुना है। इस संग्रह की कहानियों के बारे में ज्योतिराम खडे लिखते हैं, 'संजीव की प्रस्तुत कहानियों में आतंकवाद, गरीबी, भुखमरी तथा आर्थिक परिस्थितियों से जकड़ा निम्न मध्य वर्ग यथा-तथ्य सामने लाता है। इसमें वर्तमान न्यायव्यवस्था, पुलिस, कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। न्याय व्यवस्था और पुलिस यंत्रणा किस प्रकार इशारों पर चलती है इसका यथार्थ वर्णन इसमें हुआ है।"6

20वीं सदी के उत्तरार्ध में नई भाव भूमि को लेकर उभरे कथाकारों में संजीव अपनी अलग एवं महत्वपूर्ण पहचान रखते हैं। संजीव एक परिश्रमी प्रतिबद्ध एवं बेचैन कथाकार हैं। संजीव उपन्यास लेखन के कारण को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं "कई कथानक ऐसे होते हैं जिनके लिए चादर छोटी पड़ने लगती है। तब तक कुछ उपन्यास पढ़ चुका था। जासूसी से लेकर फुटपाथी और प्रेमचंद, विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक, वृंदावन लाल वर्मा, भगवती चरण वर्मा और बंगाल के उपन्यास। जीवन वहां अपेक्षाकृत ज्यादा पूर्णता में मिला हुआ महसूस विधा को साधा जाए तो साहित्य कला और ज्ञान - विज्ञान के विविध रूप यथा आवश्यक, इसमें समाहित किए जा सकते हैं।"7

संजीव के कथा-साहित्य में धार्मिक समस्या का बड़े पैमाने पर चित्रण हुआ है। दलित आदिवासी लोगों में अशिक्षा, अज्ञान के कारण आज भी अंधविश्वास की मात्रा बढ़ती हुई दिखाई देती है। हर धर्म मानवता और प्रेम की सीख देता है। धर्म का प्रभाव हर समाज पर होता है। धार्मिक प्रभाव से समाज में अनेक अनुचित प्रकार घटित होते हैं। आज विज्ञान युग में भी दलित, आदिवासी लोगों में धर्मांधता के कारण अंधविश्वास, शुभ अशुभ, भूत-प्रेत तथा डायन, मंत्र इत्र तथा जादू-टोना, पाप-पुण्य संबंधी अंधविश्वास, भविष्य देखना, ओझा को महत्व देना, देवी-देवता की प्रार्थना करना, हरिन का मांस खाने से हैजा होना, गाय का दूध पीने से कोप होना, अकाल महामारी का कारण धर्म को मानना, दान-दक्षिणा देना आदि अंधविश्वास है। अतृप्त मृतात्मा का भूत-पिशाच बनना, भूत का गांव में घूमना । मंत्र-तंत्र के बल पर भूत से छुटकारा पाना। भूत-प्रेत डायन संबंधी अंधविश्वास है। शाप देना, मन्नत मांगना, यह धारणाएं रही है। शिक्षित समाज भी अंधविश्वास के जाल में अटका हुआ है। भारतीय संस्कृति में धार्मिकता को काफी महत्व दिया जाता है लेकिन संजीव के कथा साहित्य में पूंजीपति सवर्ण समाज धार्मिक आडंबरों तथा अंधविश्वास के सहारे दलितों का एवं आदिवासियों का मानसिक एवं आर्थिक शोषण करता हुआ परिलक्षित होता है।

संजीव जी हिंदी कथा साहित्य के एक अग्रसर साहित्यकार माने जाते है। समकालीन जनवादी कथाधारा के एक बेहद संवेदनशील कहानीकार हैं। संजीव ने लगभग नौ कहानी संग्रह और सात उपन्यास तथा एक किशोर उपन्यास के रूप में हिंदी कथा साहित्य को समृद्ध किया है। उनके उपन्यास साहित्य में कोयलांचल, जातिवाद, सामंतवाद, क्रूरता, अनैतिक दुष्कर्मों, ज्योतिष अय्याशी और स्त्रियों मेहनतकशों का शोषण, दमन, सर्कस में काम करनेवाले कलाकारों की व्यथा और ऊपर से सुन्दर लगने वाले जीवन की अंदरूनी कायरता एवं उनके प्रति मालिकों का अनुचित व्यवहार, कोयला खदान, फैक्ट्री में काम करने वाले लोगों का शोषण, ठेकेदार, दलालों की कुटिलताएं, शोषण तंत्र के नये रूप, लोक कला और लोक संस्कृति आदि विषयों को उन्होंने उपन्यास का कथ्य बनाया है। संजीव के उपन्यासों का कथ्य मौलिक ही नहीं वरन् अनेक नये विषयों को लेकर अवतरित होता है। ये कथ्य में नवीनता ही नहीं ढूंढते बल्कि उसको व्यापक धरातल पर अभिव्यक्ति करते है। उनके उपन्यासों के लिए विषय पिछड़े आंचलों की त्रासदी, औद्योगीकरण के तहत होने वाला विस्थापन, दलित चेतना लोकजीवन और लोक संस्कृति से संबंधित अनेक संदर्भों को स्पष्ट करते हैं। धार का कथ्य विचार के माध्यम से समाधान की ओर अग्रसर होता है। इसमें कोयलांचल के आदिवासियों की रचनात्मक संघर्ष गाथा को खोलकर सामने रखा है। पूंजीवादी व्यवस्था, शोषण तंत्र, माफियागिरोहों का आतंक, राष्ट्रीय संपत्ति की लूट और व्यवस्थागत विसंगतियों को उजागर करता है। संजीव के उपन्यासों का कथ्य मौलिक और अछूते संदर्भों को उजागर करता है। वे कैसी व्यक्ति की कहानी कहने के अलावा परिवेश, समस्या या संदर्भ के धरातल पर स्पष्ट करते हैं। उनके उपन्यासों का कथ्य चुनौतीपूर्ण राहों से गुजरता है। उन्होंने लोक संस्कृति को आधार बनाया है। उनके उपन्यासों का कथ्य न केवल मौलिक है अपितु वे उसका व्यापक धरातल पर अन्वेषण करते हैं।

संदर्भ सूची:-

1:- नालंदा विशाल शब्दसागर, पृष्ठ 165

2:- मेहता डॉ. आशा- 'विचार प्रधान उपन्यासों में कथ्य और शिल्प' पृष्ठ 17

3:- मिश्र डॉ. शिवकुमार, 'मार्क्सवादी साहित्य चिंतन' पृष्ठ 390

4:-मेहता डॉ. आशा-'विचार प्रधान उपन्यासों में कथ्य और शिल्प' पृष्ठ 18

5:- 'पहल,' पुस्तिका, कथासमय: 2, पृष्ठ 10-11

6;- संपा.काशिद गिरीश - कथाकार संजीव पृष्ठ 198

7:- हंस जनवरी 1999 पृष्ठ 133

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-B

ISSN : 2278-9308 December, 2023

साहित्य एवं मनोविज्ञान में वैचारिक समानता का मूल्याङ्कन

डॉ.आशा कुमारी

सहायक आचार्या हिंदी विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली,110007

डॉ. राजेश

एसोसिएट प्रोफेसर मानविकी एवं समाज विज्ञान संकाय आई. ई. सी. विश्वविध्यालय

सारांशिका :

राष्ट्रीय शिक्षा निति 2020 के भारतीय शिक्षा पद्धति में आत्मसाथ हो जाने के बाद। आज आवश्यकता बन रही है कि हम भिन्न भिन्न विषयों में अंतर्संबंध को समझ सकें और विषयगत अध्ययन को और अधिक उन्नत बना सकें। हम अगर गहनता से अध्यन करें तो हम पाते है कि मनोविज्ञान एवं साहित्य में पारस्परिक सम्बन्ध है। भारतीयता की प्रतीक मानी जाने वाली भारतीय भाषा हिंदी का दिन प्रतिदिन विकास हो रहा है। हिंदी भाषा अब सामान्य बोल चल की भाषा से एक तकनीकी और वैज्ञानिक रूप लेती जा रही है। जिस सरलता से हिंदी भाषा का सामान्य व्यापर एवं इन्टरनेट इत्यादि में प्रचलन बढ़ा है। वह दिन दूर नहीं जब अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ने वाली भाषा हिंदी विश्व में सबसे ज्यादा प्रचलित भाषा के रूप में अपना वर्चस्व बना पाएगी। आज विश्व के कोने कोने से यूट्युबर्स हिंदी भाषा के माध्यम से ही शीघ्र सफलता हासिल कर रहें हैं। जिस कारण सम्पूर्ण विश्व में हिंदी भषा को जानने समझने एवं अपनाने के लिए मनोवैज्ञानिक रूप से दबाव बन रहा है। निश्चय ही भाषा हिंदी एक दिन अपनी सरलता एवं सहजता के कारण जन जन की भाषा बन कर उभरेगी। आज विश्व का रुझान दो चीजों को समझने पर ही केन्द्रित होने जा रहा है जिनमें पहली हिंदी भाषा दूसरा मनोविज्ञान के सिद्धांत। व्यवहारिक जटिलता को समझने की लिए मनोविज्ञान को जानना जरूरी है वहीँ आम आदमी तक मनोवैज्ञानिक सोंच को सरलता से पहुचाने में हिंदी भाषा का महत्वपूर्ण योगदान है। साहित्य की रोचकता को बनाये रखने के लिए साहित्य के साथ मनोवैज्ञानिक विचारों का समावेश भी आवश्यक है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि साहित्य एवं मनोविज्ञान एक दूसरे से परस्पर वैचारिक समानता रखते हैं।

शब्द कुंजी : साहित्य, मनोविज्ञान, वैचारिक, समानता, साहित्यकार, मनोवैज्ञानिक, भाषा, हिंदी।

साहित्यकार का सामान्य वैचारिक चिंतन :

साहित्यकार का एक प्रमुख गुण होता है कि वह स्वयं के विचारों के साथ ही समाज एवं राष्ट्र के प्रति स्वयं के चिंतन को सकारात्मक रूप से अभिव्यक्त करने का प्रयास करता है। वही एक मनोवैज्ञानिक अपने अधिगामित अनुभूतियों से राष्ट्र समाज एवं व्यक्ति विशेष में राष्ट्रीय चिंतन का विकास करता है साथ ही इन सभी में व्याप्त नकारात्मक अभिव्यक्तियों को समाप्त कर सकारात्मक नैतिक विकास की संभावनाओं को मूर्त रूप प्रदान करता है। इस प्रकार दोने के कार्य किसी न किसी रूप में एक दूसरे से सम्बंधित होते हैं। हिंदी जितनी सरल एवं सहज है उतनी ही वैज्ञानिक भी है। आज समय है कि हम अपनी भाषा में साहित्य के सृजन के लिए मनोवैज्ञानिक विधियों प्रविधियों का प्रयोग करें। भारतीय शिक्षा पद्धति को उन्नत बनाने के लिए आवश्यक है कि हम शिक्षण विषयों को मनोविज्ञान से जोड़कर अध्ययन करें। जिससे शिक्षण विषयों को सहज एवं प्रभावशाली बनाया जा सके।जबकि साहित्यकार मनुष्य के सामान्य व्यवहारों का अलंकारिक अध्ययन प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से करता है। वह अपने कृति के माध्यम से ऐसे ही व्यवहारों का महिमा मंडन करता है। जो समाज में नवीन अभिवृतियों के विकास में भविष्य में सहायक हो सकती हैं। जिससे भविष्य में समाज में एक आदर्श व्यवहार प्रतिरूप प्राप्त होता है।

मनोवैज्ञानिक का सामान्य वैचारिक चिंतन :

साहित्य के अंतर्गत हम जो कुछ भी पढ़ते है उसमें किसी एक मनुष्य के मानसिक संवेगों, आन्तरिक भावनाओं, अतृप्त स्वप्नों, दिवास्वप्नों और व्यवहार का वर्णन किया जाता है। जिससे साहित्य को रोचक एवं अलंकारिक रूप मिलता है। दूसरी तरफ हम मनोविज्ञान के अंतर्गत मानव व्यवहारों का अध्ययन किसी उद्दीपक विशेष के सन्दर्भ में करते हैं। साहित्य एवं मनोविज्ञान दोनों में हम किसी भी मनुष्य के चरित्र का चित्रण करते हैं। जिसका सीधा सम्बन्ध मनुष्य के व्यवहारों से होता है। कभी-कभी साहित्यिक रूप से चरित्र के अध्ययन को हम

'आध्यात्मिक' की संज्ञा देते हैं । मनोविज्ञान के आधार पर हम कह सकतें हैं की किसी मनुष्य का चरित्र अंतर्मुखी (एकाकी)तो किसी का बहिर्मुखी (मिलनसार) प्रवृति का भी हो सकता है । मनोवैज्ञानिक सामान्य एवं असामान्य दोनों प्रकार के चिंतन, व्यवहार और व्यवहारिक मनोवृत्ति के सिद्धांतों का अध्ययन करता है ।

मनुष्य के व्यवहारों में विक्षुब्ध होने या उदत्त बने रहने के पीछे कुछ पर्यावरणीय कारक, अनुवांशिक प्रभाव और कुछ स्वाभाविक गुण होते हैं। जिसके कारन मनुष्यों के व्यवहारों में अंतर पाया जाता है । जिसे हम प्रायः अन्त्रवैक्तिक विभिन्नता के नाम से भी जानते हैं । साहित्यकार इन्ही अंतर्वैक्तिक विभिन्नता का महिमा मंडान अपनी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से करता है जबकि एक मनोवैज्ञानिक इसी अनंत्र्वैक्तिक विभिन्नता के कारणों के प्रभावों का मूल्याङ्कन भिन्न भिन्न मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों एवं उपकरणों के माध्यम से करता है । इन्ही कार्य कारण प्रभाव सम्बन्धी कारकों पर मनोवैज्ञानिक भी अध्ययन करता है ।

साहित्य एवं मनोविज्ञान में वैचारिक समानता :

हिन्दी भाषा में मनोविज्ञान और हिंदी साहित्य के अन्तः संबंधों को आधार मानकर कुछ नाम मात्र की ही पुस्तकें लिखी गई हैं । सम्पूर्ण विश्व में प्रथम महायुद्ध की विभीषिका ने वैज्ञानिकतावाद और मनोविज्ञान की प्रवृत्ति पर आधारित रोचक सहित्यिक रचनाओं के निर्माण की विचारधारा को दिन प्रतिदिन बढ़ावा दिया । तभी से समाज के लोगों ने यह सोचना शुरू किया कि किसी व्यक्ति विशेष में अंतर्निहित योग्यताओं के आधार पर उसके नेपोलियन या हिटलर बनने की प्रबल संभावनाएं होती हैं । जबकि मनोवैज्ञानिकों का यह मानना है कि इसके पीछे कुछ विशिष्ट पर्यावरणीय कारण होते हैं। मनोवैज्ञानिक सिद्धांत यह भी कहते हैं कि हर एक व्यक्ति पर्यावरण में रह कर मार्क्स नहीं बन सकता है। साहित्य का प्रत्येक रचनाकार अपने मानसिक अभावों की प्रतिपूर्ति साहित्यिक रचना कर सहित्य के कला जगत के संसार में वर्णन कर करता है। अगर हम गंभीरता से देखें तो हम पातें हैं कि प्रायः एक साहित्यकार अपने स्वयं की व्यक्तित्व की अपूर्णता या लघुता को अपनी स्वरचित किसी रचना के पात्रा में देखना चाहता है । वर्तमान हिंदी साहित्य में मनोविज्ञान के अनेक अध्यन बिंदु जैसे लिबिडो, इलेक्ट्रा मनोग्रंथि, इडिपस मनोग्रंथि, हीनता की मनोग्रंथी, उच्चता की मनोग्रंथि, अंतप्रज्ञा:, अंतश्चेतना को आधार बनाकर रचनाओं में रोचकता लाने के लिए अनेक साहित्यिक रचनाओं का निर्माण किया गया हैं।साहित्य के बड़े बड़े रचनाकार मनोवैज्ञानिक स्तर पर पाठकों को आकर्षित करने के लिए अलंकारिक रचनाओं का निर्माण करते हैं ।

निष्कर्ष :

साहित्यिक रचनाकार अपने पाठकों के मनोभावों को पढने के लिए ऐसी रचनाओं का निर्माण करता है । जिससे वो समाज के हर स्तर के लोगों को प्रभावित कर सके और उसकी रचना समाजोपयोगी बन सके । महाकवि तुलसीदास जी द्वरा रचित महान ग्रंथ श्री राम चरित मानस के एक एक दोहे आज भी जनोपयोगी प्रतीत होते है यही नहीं महान कथाकार मुंशी प्रेमचंद जी की अनेक साहित्यिक रचनाएं इसका मुख्य उदाहरण है । जिनके पढने मात्र से कथा पात्रों की चितन एवं वेदनाओं की अनुभूति स्वयं पाठक की अंतरात्मा तक होती है । यह इन सभी साहित्यकारों को मनोवैज्ञानिक विचारधारा का ही प्रतिफल है । आज ऐसे ही कथाकारों कलाकारों सहित्यकारों और सामाजिक चिंतन रखने वालों की जरूरत है । जिनकी कलम की ताकत समाज में पनपती अनेक बुराइयों को जड़ से समाप्त कर सकें । आज हमारा देश जिस गैर जिम्मेदाराना मानवता विहीन एक बड़े युवा समुदाय की जमात दिन बा दिन बढती चली जा रही है । जिससे भारत का भविष्य अधर में भी पड सकता है । हम साहित्य के माध्यम से ही मनोवैज्ञानिक रूप से वैचारिक चिंतन में सकारात्मक बदलाव ला सकते हैं । अंत में हम यह कहना चाहतें है । कि यदि राष्ट्र चिंतन की अलख जगानी है तो साहित्यकरों को अपनी लेखनी को मनोवैज्ञानिक स्तर पर वैचारिक चिंतन करते हुए जनोपयोगी साहित्यों का निर्माण करना होगा । क्योंकि साहित्य एक ऐसा माध्यम है । जिसके द्वारा हम जन जन तक पहुच सकते है । उत्कृष्ट साहित्यिक सृजन के द्वारा हम मनोवैज्ञानिक रूप से भारत को विश्वगुरु बनाने की दिशा में अग्रसर कर सकते हैं ।

सन्दर्भ ग्रंथ :

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. विमलेश कांति वर्मा, फीजी में हिंदी स्वरूप और विकास पृ.1-2, 2000

2. साहित्य अमृत, सितंबर 2010, पृ. 39

3. पूर्वोक्त, पृ. 38

4. पूर्वोक्त, पृ. 40

5. विमलेश कांति वर्मा, फीजी में हिंदी स्वरूप और विकास पृ.1-2, 2000

6. राकेश शर्मा निशीथ, विदेशों में हिंदी का बढ़ता प्रभाव, अक्टूबर 2006, सृजनगाथा

7. कृष्ण कुमार यादव, भूमंडलीकरण के दौर में हिंदी, साहित्य कुंज 17, जनवरी 2009

B.Aadhar' International Peer-Reviewed Indexed Research Journal

Impact Factor -(SJIF) –8.632, Issue NO, (CDXLVI) 451-B

ISSN : 2278-9308 December, 2023

निर्मल वर्मा के उपन्यासों में मानवीय संबंधों की टूटन

प्रा. डॉ. मुखत्यार शेखवहाब

हिंदी विभागाध्यक्ष कला महाविद्यालय, बीडकिन

प्रो.संतोष कुमार यशवंतकर

हिंदी विभागाध्यक्ष कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, शिवाजीनगर गढीतह-गेवराई, जिला- बीड़

सन 1960 के बाद लोगों के सामाजिक और पारिवारिक जीवन में बदलाव आने से आत्मापीड़न, विसंगति, मानसिक तनाव, आत्म-निर्वासन, टूटन, ऊब, बिखराव, दिशाहरण, अनस्था और स्वप्नभंग आदि विकृतियों ने स्थान ग्रहण किया। महानगरों की आर्थिक सामाजिक बुराइयाँ सामने आ गईं । स्वतंत्रता प्राप्ति की उष्मा खत्म हो चुकी थी। गाँवों से नगर- महानगर में आने वाली युवा पीढ़ी अपनी पत्नी, बच्चों को भी अपने पास बुलाकर रखने लगी। घर के बड़े-बूढ़े प्राय: गाँव में ही रहते थे। भाई-भाई में टकराव होने लगा, इन सब स्थितियों के पीछे अधिकतर आर्थिक स्थितियाँ कार्यरत रहीं हैं । आज के आदमी की सोच अपनों से (संयुक्त परिवार) हटकर अपने तक (स्वयं और बीवी- बच्चों) सीमित होने लगी। साठोत्तरी हिंदी साहित्य में ऐसे ही परिवेश का बखूबी चित्रण हुआ है। पारिवारिक विघटन, परिवार में बनती स्वार्थ की भावना और कमतर होती त्याग की भावना को कई साहित्यकारो ने बारीकी से पकडने का सफल प्रयास किया है।

आज हम देखते हैं परिवार में माता-पिता और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर न होने वाली संतानों के बीच खाई बढ़ रही है। महानगरों में रहने वाले मध्यवर्गीय परिवारों में यह अक्सर देखा जाता है। संयुक्त परिवार में भी विघटन तथा पारिवारिक संबंधों में बदलाव का एक प्रमुख कारण पुरानी तथा नई पीढ़ी की वैचारिकता में अंतर है।

निर्मल वर्मा आधुनिक हिंदी उपन्यास के एक सशक्त रचनाकार हैं । उनके पाँचो उपन्यासों में देश की स्वतंत्रता के बाद की राजनीतिक परिस्थितियों के साथ बदलती हुई सामाजिक स्थिति और आधुनिक जीवन शैली में उभरते अकेलापन और अजनबीपन के हावी हो जाने से व्यक्ति संबंधों में गहराती और आत्मीयता की टूटन का उल्लेख दिखाई देता है। उनके साहित्य में मानवीय संबंधों का टूटन, मृत्युबोध, महानगर बोध,अस्तित्व की तलाश जैसी अनेक आधुनिक विचारधारा की विशेषताएँदृष्टव्य हैं । उनके लगभग सभी उपन्यासों में दांपत्य संबंधों में टूटन,ऊब, हताशा आदि दिखाई देती है। 'वे दिन' उपन्यास में स्त्री-पुरुष संबंधों के बदलाव की आधुनिक मन: स्थितियों का भीतरी दस्तावेज है।

'वे दिन' उपन्यास मेजाक और उसकी पत्नी रायना के संबंधो की जडता ऐसी बढ़ती है कि वे एक दूसरे के लिए असह्य हो जाते हैं। रायनाजाक से अलग हो जाती है। रायना का कथन है-"हम दोनों अब भी किसी कान्सन्ट्रेशनकैम्प में रह रहे हैं... एक ही घर में। उसके बाहर जाक... वह जीवित नहीं था... मैं भी नहीं। हम सिर्फ उसमें रहकर जी सकते थे... लेकिन मैं नहीं रह सकी। एक दिन मैं बाहर आ गयी... यह जानते हुए भी की बाहर मैं किसी काबिल नहीं रह गयी हूं... नॉटईवनफारलव... फिर वह चुप हो गयी।"1आधुनिक मानसिकता पारिवारिक संबंधों, संबंधों की भावात्मकता, आत्मीयता आदि को प्राय: नष्ट कर देती है।

दांपत्य संबंध परिवार की नींव है। परिवर्तित परिस्थितियों का प्रभाव व्यक्ति के जीवन पर पड़ता है। बदलती हुई परिस्थितियों में व्यक्ति स्वयं बदलता है और उसका प्रभाव पारिवारिक संबंधों पर पड़ता है जिससे पारिवारिक संबंध परिवर्तित होते हैं। 'एक चिथड़ा सुख' उपन्यास में नित्ती और उसकी पत्नी के बीच संबंधों की आत्मीयता खंड-खंड हो जाती है वह दोनों एक छत के नीचे रहते हुए भी उन दोनों के बीच में बहुत कम बातचीत होती है। इसका कारण नित्ती भाई की प्रेमिका ईरा है। यह बात बिटटी से हुई बातचीत से स्पष्ट हो जाती है "तुम क्या सचमुच उसे प्यार करते हो? तुम क्या सोचती हो? मैं सोचती हूं- तुम कुछ करते क्यों नहीं? बिटटी तुम्हें सब कुछ आसान लगता है। अपने बच्चों को छोड़ना... या अपनी पत्नी को। तुम्हें कुछ नहीं मालूम... तुम अपने से बाहर

कुछ भी नहीं देखती। मुझे इतना मालूम है, वह कितना तड़पती है।"2नित्ती भाई आर्कीटेक्ट हैं और लंदन से भारत आए हैं। वह दिल्ली में अपने परिवार के साथ रहते हैं। ईरा विदेश से अपने प्रेमी नीति भाई के लिए यहां आयी है। नीति भाई अपने और अपने परिवार और ईरा के बीच सामंजस्य बिठा नहीं पाते। वह ईरा और पत्नी के मध्य झूलते हुए अपना जीवन जी रहे हैं।

वर्तमान युग में पारिवारिक संबंधों में व्यापक परिवर्तन दृष्टिगत होता है। जिसके कारण परंपरागत मान्यताएँ अब क्षीण होती नजर आ रहीं है। पारिवारिक संबंधों में संघर्ष, तनाव आदि दिखाई पड़ता है। रात का रिपोर्टर उपन्यास भी मानवीय संबंधों की टूटन की कथा है। रिपोर्टर रिशी और उसकी पत्नी उमा के संबंध रिक्त हो चुके हैं और वह पत्नी के बजाय प्रेमिका पर केंद्रित हो जाता है। उसे अपनी अस्वस्थ पत्नी के प्रति कोई संवेदना नहीं है। स्थिती इतनी विषम है कि रिशी से डॉक्टर ने साफ कह दिया है कि "आप समझते क्यों नहीं! कोई भी चीज जो उन्हें आपकी याद दिलाएगी, उनके लिए घातक होगी। वह चाहे आप हों, या आपका घर...।"3 यह निश्चित ही ऐसी दारूण स्थिति है जो स्त्री अस्मिता पर प्रहार करती है तथा दांपत्य संबंधों के साथ-साथ पारिवारिक संबंधों में आई उदासीनता का व्रत प्रस्तुत करती है। दाम्पत्य जीवन की कठिनतम स्थितियों में पति-पत्नी में रहा स्नेह और सहयोग परिवार को चलाने में सहायक बनता है। पति-पत्नी को जीवन के उत्तरार्ध में स्नेह की अतीव आवश्यकता होती है। परम्परितदाम्पत्य जीवन में यह स्थिति स्वयंभू रूप से रहती थी किंतु आज परिवार के अन्य संबंधों के साथ पति-पत्नी संबंध में पारस्परिक स्नेहहीनता आ गई है।

'अंतिम अरण्य' उपन्यास की पात्र तिया भी अपने माता-पिता के स्नेह से वंचित है और स्वयं अपने आप में है। तिया बीच-बीच में कुछ दिनों के लिए घर अपने माता-पिता के पास आती है फिर भी वह इस घर को अपना घर नहीं समझती- "मैं होश में हु अन्ना जी... इतना होश में हूँ कि समझ में नहीं आता, मैं यहां क्यों हूं, क्यों बार-बार लौट आती हूँ । क्या बात करती हो... यह तुम्हारा घर है... यहां नहीं आओगी, तो और कहां जाओगी? मेरा घर... कौन सा घर? आपको तो मालूम है... मैंने अपने को पराए घर की सीढ़ियों पर पाया था... उसे आप मेरा घर कहती हैं?"4 हर मनुष्य स्वतंत्रता का आकांक्षी होता है। वह सोचने समझने, निर्णय लेने, रहन-सहन, कार्य करने में स्वतंत्रता चाहता है यदि किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसकी स्वतंत्रता का हनन होता है तो उसके मन में असंतोष निर्माण होता है और रिश्ते में दरार निर्माण होती है। परिवार में पुरानी और नई पीढ़ी में वैचारिक अंतर के आधार पर भी माता-पिता और बच्चों के संबंधों में दरार पड़ने लगती है।

आज वर्तमान काल में जब पूंजी के वर्चस्व के दौर में बाजार आदमी एवं आदमी के बीच संबंधों का सूत्रधार बनने के कारण संयुक्त परिवार प्रणाली पर प्रश्न चिन्ह लग गये। आधुनिक समाज में शिक्षा तथा विज्ञान के प्रसार, औद्योगिकरण तथा व्यक्तिवादी सोच ने संयुक्त परिवारों का विघटन कर दिया। आज पारिवारिक संबंधों में बदलाव हो रहा है। पति-पत्नी, भाई-बहन, पिता- पुत्र, भाई-भाई आदि के संबंधों में एक प्रकार का अजनबीपन आ रहा है। विघटित जीवन- मूल्यों के परिणामस्वरुप परंपरागत स्थापनाओं एवं आदर्शों का खंडन हो रहा है। पुरानी तथा नई पीढ़ी में द्वंद्व की स्थिति निर्माण हुई है। इसी द्वंद्व के कारण वैचारिक टकराव तथा संबंधों में परिवर्तन होते हुए दिखाई पड़ते हैं। पुरानी एवं नई पीढ़ी का द्वंद व मानवीय संबंधों तथा पारिवारिक संबंधों में द्वंद्वपूर्ण स्थिति का सूक्ष्म चित्रण निर्मल वर्मा ने अपने उपन्यासों में किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1) वे दिन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पुनमुद्रित1997, पृ.सं.163

2) एक चिथड़ा सुख, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पुनरावृति1998, पृ.सं.94

3) रात का रिपोर्टर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, तृतीय संस्करण 1992,

पृ.सं.110

4) अंतिम अरण्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 2000, पृ. सं.

152

प्रेमचंद की आलाेचना परंपरा और डॉ.सूर्यनारायणन रणसुभे का चिंतन।

प्रा. डॉ.जयराम सूर्यवंशी

हिंदी उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद हिंदी के कई पाठकाेंं, लेखकों और आलोचकों की दृष्टि में उच्च कोटि के उपन्यासकार रहे हैं। रामविलास शर्मा से नामवर सिंह तक हिंदी के सभी बड़े आलोचकों ने प्रेमचंद के साहित्य पर गहन चिंतन करते हुए मौलिक किताबें लिखी हैं। प्रेमचंद के समय में ही जनार्दन झा 'द्विज' द्वारा लिखित 'प्रेमचंद की उपन्यास कला'(1933) इस प्रथम आलोचना कृती के अलावा, रामविलास शर्मा की 'प्रेमचंद : आलोचनात्मक परिचय' (1940) तथा 'प्रेमचंद और उनका युग' (1952), अमृत राय द्वारा लिखित प्रेमचंद की जीवनी 'कलम का सिपाही', मदन गोपाल कृत अंग्रेजी में लिखित किताब 'मुंशी प्रेमचंद', प्रेमचंद की पत्नी शिवरानी देवी की रचना 'प्रेमचंद घर में', जैसी तत्कालीन दाैर में लिखी गई किताबाेंं के साथ ही पिछले कुछ दशकाेंं में लिखी गई किताबें जिसमें कमल किशोर गोयंका द्वारा लिखित, 'प्रेमचंद के अध्ययन की नई दिशाएं', 'प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प विधान', नंदकिशोर नवल की 'प्रेमचंद का सौंदर्यशास्त्र', शिवकुमार मिश्र की 'प्रेमचंद की विरासत और गोदान', नामवर सिंह की 'प्रेमचंद और भारतीय समाज', मैनेजर पांडेय की किताब 'उपन्यास और लोकतंत्र' और वीरेंद्र यादव का आलाेचकीय चिंतन प्रेमचंद के कथा साहित्य को समझने की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण सामग्री है।

प्रेमचंद के समग्र कथा साहित्य में स्वाधीनता पूर्व भारतीय देहाती जनजीवन काे सूक्ष्मता से देखा जा सकता है। आझादी के आंदोलन की पृष्ठभूमि में लिखें गए प्रेमचंद के कथा साहित्य में तत्कालीन किसान समस्या, स्त्री-दलित जैसे उपेक्षित समुदाय को लेकर विशेष चिंता दिखाई देती है। गोदान का हाेरी, धनिया, रंगभूमि का सूरदास, कफन के घिसु, माधव जैसे पात्र हिंदी ही नहीं समग्र भारतीय साहित्य में चर्चित रहे हैं। अपनी कहानियां, उपन्यासों के अलावा हंस, जागरण जैसी पत्रिकाओं की संपादकीय भूमिका के माध्यम से प्रेमचंद ने व्यक्त किए हुए वैचारिक चिंतन से आज भी भारतीय साहित्य काे दिशा निर्देश मिलता है। किंतु फिर भी प्रेमचंद के याेगदान काे लेकर आलोचकों में एकमत नहीं है। हिंदी के कुछ आलोचक प्रेमचंद और उनकी परंपरा के उपन्यासाेंं का खंडन करते हैं, ताे कुछ आलाेचकाेंं ने उन्हें 'घृणा का प्रचारक' कहा। रामविलास शर्मा जैसे मार्क्सवादी आलोचक ने उनके साहित्य में व्यक्त दलित चिंतन को नजरअंदाज करते हुए मात्र आर्थिक समस्याओं पर ही प्रकाश डालकर उनके सरोकारों को सीमित किया। प्रेमचंद विशेषज्ञ डाॅ.कमल किशोर गोयंका उन्हें भारतीय संस्कृति और हिंदु धर्म के करीब देखते हैं, तो कुछ स्त्री आलोचक प्रेमचंद के साहित्य में चित्रित स्त्री जीवन पर प्रश्नचिन्ह उपस्थित करती है।

इसके अलावा डॉ.धर्मवीर जैसे दलित आलोचक प्रेमचंद के साहित्य की समीक्षा करते हुए उन्हें स्त्री-दलित विरोधी लेखक कहते हैं। साथ ही उन्हें किसान जीवन की त्रासदी का चित्रण करनेवाला लेखक न मानकर 'सामंत का मुंशी' कहते हैं। इस संदर्भ में उन्होंने 'प्रेमचंद : सामंत का मुंशी' इस शीर्षक से एक ग्रंथ की रचना की है। इस किताब के माध्यम से डाॅ.धर्मवीर ने प्रेमचंद को खारिज करने का काम किया है। इसमें वे प्रेमचंद के निजी जीवन की घटनाओं पर, अनावश्यक प्रसंगाेंं पर लिखते हुए उनके व्यक्तित्व हनन का प्रयास करते हैं। प्रेमचंद ने अपने जीवन के अंतीम समय में निजी जीवन की कुछ घटनाओं को अपनी पत्नी शिवरानी देवी के साथ साझा किया

था। जिसका जिक्र शिवरानी देवी ने 'प्रेमचंद घर में' इस किताब में किया है। इस प्रसंग के आधार पर डा॔.धर्मवीर ने 'प्रेमचंद की एक रखैल थी, वे जारकर्म में लिप्त थे। ऐसा व्यक्ति दलित, व्यथित का हमदर्द हो ही नहीं सकता'।1 यह मान्यता प्रस्थापित की। प्रेमचंद के निजी जीवन की घटना के आधार पर डा॔. धर्मवीर प्रेमचंद के समग्र साहित्य को ही खारिज करते हैं। डा॔.धर्मवीर के अलावा समकालीन दा ैर के कुछ आला ेचक प्रेमचंद के बैंक पासबुक की खोज करके उन्हें आर्थिक दृष्टि से संपन्न बताने का काम कर रहे हैं। प्रेमचंद आर्थिक दृष्टि से संपन्न थे या विपन्न इसके आधार पर उनके साहित्य का मूल्यांकन करना उचित नहीं है। बल्कि उन्होंने आर्थिक विषमता पर किस प्रकार प्रहार किया है इसपर चर्चा हा ेनी चाहिए।

ऐसी स्थिति में व्यक्तीप्रतिष्ठा को सर्वोच्च मूल्य माननेवाले डा॔.सूर्यनारायण रणसुभे डॉ.धर्मवीर की सभी मान्यताओं का खंडन करते हुए अपने लेख, 'प्रेमचंद का साहित्य और दलित चिंतन' में कई दलीलों के माध्यम से प्रेमचंद का समर्थन करते हैं। उनकी दृष्टि से सन् 1970 तक के भारतीय साहित्य में दलित जीवन का चित्रण मिलता ही नहीं जिसमें केवल अपवाद प्रेमचंद है। साथ ही वे दया पवार के उस वक्तव्य का हवाला देते हैं जिसमें दया पवार ने कहा था, 'मराठी में अगर प्रेमचंद होते तो यहां दलित साहित्य का विस्फोट नहीं होता'। इससे स्पष्ट है कि हिंदी प्रदेश में दलित साहित्य, दलित जीवन त्रासदी का े चित्रित करने की दृष्टि से प्रेमचंद का बड़ा योगदान है। रणसुभे जी की दृष्टि से हिंदी ही नहीं समग्र भारतीय भाषाओं में दलित व्यथा वेदना को प्रखरता से व्यक्त करनेवाले प्रेमचंद पहले लेखक है। उन्हें दलितेत्तर लेखक होने के कारण खारिज करने की डा॔.धर्मवीर जैसे आलोचकों की इस मुहिम का े लेकर वे गहरी चिंता व्यक्त करते हैं। रणसुभे जी का यह कहना है कि, प्रेमचंद का मूल्यांकन उनके निजी जीवन की किसी घटना के आधार पर करना उचित नहीं। बल्कि प्रेमचंद ने अपने साहित्य के माध्यम से जो मूल्य प्रस्थापित किए हैं उन मूल्यों के आधार पर उनका मूल्यांकन करना चाहिए। क्या प्रेमचंद के साहित्य को पढ़कर किसी पाठक के मन में जाति या वर्णव्यवस्था के प्रति आकर्षण पैदा हुआ है, सामंती व्यवस्था के समर्थन में उसकी मानसिकता तैयार हुई है? अगर ऐसा नहीं है तो प्रेमचंद को 'सामंत का मुंशी' कहना सरासर गलत है ऐसा वे मानते हैं। रणसुभे जी डा॔.धर्मवीर के आलोचकीय अंतर्विरोधा ें पर चर्चा करते हुए यह साबित करते हैं कि, डॉ.धर्मवीर अपनी सुविधा के अनुरूप प्रसंगा ें पर खुलकर चर्चा करते हैं और जिन प्रसंगों से प्रेमचंद की आदर्श, प्रगतिशील छवि तैयार हो सकती है उन प्रसंगों पर कुछ लिखते नहीं। शिवरानी देवी की किताब में एक प्रसंग है, जब प्रेमचंद मृत्यु के निकट पहुंचे हैं तब शिवरानी देवी कहती है, 'अब तो राम का नाम लो तब प्रेमचंद राम नाम का जप करने की अपेक्षा देश के दलित, शोषित, किसानों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को व्यक्त करते हैं। प्रेमचंद के ऐसे उदात्त विचारा ें को धर्मवीर चर्चा के केंद्र में नहीं रखते हैं। यह उनकी संकुचित मानसिकता का प्रतीक है। प्रेमचंद की दलित विरा ेधी छवि बनानेवाले डा॔.धर्मवीर भूल जाते हैं कि, 1925 में प्रकाशित 'रंगभूमि' हिंदी का वह पहला उपन्यास है, जिसका नायक 'सूरदास' दलित जाति का है।

वास्तविकत: प्रेमचंद का े खारिज करते हुए उनके विचारा ें का े संकुचित करने का काम उनके समय में ही शुरु हुआ था। उस समय उन्हें 'घृणा का प्रचारक' कहा जाने लगा था। इस संदर्भ में रणसुभे जी एक घटना का जिक्र करते हुए कहते हैं, "प्रेमचंद के काल में और उसके बाद सन् 1950-55 तक हिंदी के ब्राह्मण्यवादी समीक्षक प्रेमचंद को विजातीय कहकर उनके योगदान को नकारते रहे। इनमें रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' प्रमुख थे। सन् 1964 में इलाहाबाद में हुई एक गोष्ठी में जब प्रेमचंद के योगदान को, शा ेषिता ें के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को नकारा जा रहा था तब केरल के प्रो.चंद्रहासन मंच पर आए और उन्होंने कहा कि, 'अगर प्रेमचंद को आप लेखक नहीं मानते तो हम हिंदीत्तर प्रदेश के लोग आज से हिंदी को बाय-बाय कहेंगे"।2 इससे स्पष्ट है कि, प्रेमचंद के योगदान को

नकारने का यह सिलसिला दशकों पुराना है। किंतु खेद यह है कि, जिस लेखक ने दलित जीवन की त्रासदी को चित्रित करने के लिए गोदान, रंगभूमि इन उपन्यासों में और सद्गति, ठाकुर का कुआं, कफन जैसी कहानियों में विस्तार से चिंतन किया हाे उन्हें ही दलित विरोधी कहना उन पर बहुत बड़ा अन्याय है। रणसुभे जी का स्पष्ट कहना है कि, "प्रेमचंद के उपन्यासों और कहानियों में सामंती व्यवस्था की क्रूरता, अमानवीयता व्यक्त हुई है। इन्हें पढ़कर उस व्यवस्था के प्रति चीढ पैदा होती है। पाठक के भीतर एक नई सोच की शुरुआत हो जाती है।"3 इसलिए ऐसे लेखक की आलोचना संकुचित दृष्टि से करना और उन्हें दलित विरोधी कहना यह बहुत गलत है। वरीष्ठ आलोचक वीरेंद्र यादव भी डाॅ.धर्मवीर जैसे आलोचकों की प्रेमचंद काे खारिज करने की मुहीम का विराेध करते हुए कहते हैं, 'गोदान' के 'होरी' को 'पंडित दातादीन' ने खेत, जमीन-जायदाद से बेदखल किया था। आज हिंदी साहित्य के महापंडितों द्वारा 'हाेरी' को साहित्य से बेदखल करने की तैयारी है। अफसोस यह है कि 'हाेरी' की इस बेदखली में इस बार 'पंडित दातादीन' के साथ 'गोदान' के 'हरखू चमार' के भी कुछ संगी साथी है।' जाहिर है कि 'हरखू चमार' के बहाने वीरेन्द्र यादव उन दलित आलोचकों पर कटाक्ष करते हैं, जो प्रेमचंद को दलित विराेधी कहते हुए आरोपों के कठघरे में खड़ा करते हैं।

कुलमिलाकर यह कहा जा सकता है कि, प्रेमचंद के बहाने रणसुभे जी समकालीन दौर के उन दलित चिंतकाेंं की संकीर्ण मानसिकता का विराेध करते हैं जाे दलितेत्तर लेखकों द्वारा किए गए दलित चिंतन को नकारते हुए केवल 'स्वानुभूति' की बात कर रहे हैं। उनकी मान्यता है कि, दलितेत्तर लेखकाेंं के दलित साहित्य की सीमाओं पर जमकर बहस होनी चाहिए किंतु उनके समग्र लेखन को नकारा नहीं जा सकता। उनकी संवेदना पर प्रश्नचिन्ह उपस्थित करना ठीक नही है।

संदर्भ सूची :

1) सूर्यनारायण रणसुभे रचनावली, संपादक, डाॅ.सुरेश माहेश्वरी, डाॅ.शैलेजा माहेश्वरी,खंड 1 पृ. 237

2) वही, पृ.241

3) वही, पृ.238

4) विवाद नहीं हस्तक्षेप, वीरेंद्र यादव, पृ.37

हिंदी का भूत, वर्तमान और भविष्यः चिंतन और चुनौतियां

डॉ. दुर्गेश कुमार शर्मा

जवाहर नगर, सुरक्षा विहार, जीटी रोड अलीगढ़ अलीगढ़, उत्तर प्रदेश

durgeshsharma0204@gmail.com, 9411880204

भाषा आदमी को आदमी से जोड़ने का जरिया मात्र नहीं है, बल्कि भाषा हमारी भूतकालिक विरासत को संरक्षित भी करती है। ये भाषा का ही कमाल है कि शताब्दियों से लिखा गया चिंतन आज एक भाषिक विरासत की तरह हमें मार्ग-दर्शन दे रहा है। भाषा सामाजिक व्यवहारों पर निर्भर करती है इसलिए इसमें बोलने वाले समूहों की जातिगत विविधता और उनकी संस्कृति अभिव्यक्ति पाती है। हमारी ऐसी ही समर्थ भाषा है, इसने हमारी अभिव्यक्ति की भाषा, संपर्क भाषा, राज्य भाषा, राष्ट्र भाषा, टंकण और मुद्रण की भाषा, संचार की भाषा, कम्प्यूटर की भाषा का सफर तय करते हुए हमारी अस्मिता को विश्व के विशाल धरातल पर सुशोभित किया है। इसकी धारा जनजीवन में सदा से प्रवाहित है। राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के समय ये समझ लिया गया था कि हिन्दी ही स्वाधीनता के पश्चात् अंग्रेजी का विकल्प हो सकती है। विशाल भारतीय जनसंख्या की भाषा होने के कारण भी राष्ट्रीय मुख्य धारा हिन्दी ही थी। फलतः 14 सितम्बर 1949 को देश की राजभाषा बनाने संबंधी अनुच्छेद स्वीकृत किये गये। 'हिन्दी' शब्द का मूल अर्थ है - हिन्दी का, भारत का अर्थात् भारतीय। जैसे जापान का जापानी, चीन का चीनी इसलिए तो एक गीत -

सारे जहॉ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा में कहा गया है -
''हिन्दी है हम, वतन है''। हिन्दोस्तां हमारा .....

यहॉ 'हिन्दी' हैं हम - 'हम' से तात्पर्य भारतीय है। ये तो हम सभी जानते है कि आज जिसे हम मानक हिन्दी कहते है, वह खड़ी बोली का विकसित रूप है, इसे 'कौरवी' भी कहा जाता है। दिल्ली, मेरठ, बिजनौर, मुरादाबाद के पूर्वी भागों में आज भी अपने मूल रूप में ये बोली जाती है। 14वीं शताब्दी में सर्वप्रथम अमीर खुसरों ने हिन्दी की इसी खड़ी बोली में काव्य रचना की, इसलिए इन्हें हिन्द का तोता भी कहा जाता है। इनकी पहेलियॉ आपने भी शायद पढी होगी-

एक थाल मोती से भरा, सबके सिर पर औंधा धरा।
चरों ओर वह थाली फिरे, मोती उनके एक न गिरे।।

यही खड़ी बोली ही हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी का आधार है। हिन्दी शब्द का आरंभिक प्रयोग पंडित विष्णु शर्मा की पुस्तक 'पंचतंत्र' की भाषा के लिए हुआ। यह पुस्तक संस्कृत में लिखी गई थी पर इसका अनुवाद प्राचीन ईरानी में किया गया और पुस्तक की भूमिका में लिखा था - यह अनुवाद जबाने हिन्दी से किया गया है। इस तरह जबाने हिन्दी ही हिन्दी भाषा बनी। यह खड़ी बोली ही हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी का मूल आधार है। हिन्दी जब संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ प्रयुक्त हुई तो हिन्दी कहलायी और अरबी, फारसी शब्दों के साथ बोली गई तो उर्दू कहलायी। इस तरह हिन्दी और उर्दू एक मॉ की दो संतान है।

हिंदी को आज हम विश्व का नेतृत्व करने वाली भाषा के रूप में देखते हैं। आज दुनिया की आबादी के हिसाब से हर छठा व्यक्ति हिंदी बोलने और समझने लगा है। देश में 45 फीसदी यानी 53 करोड़ लोगों की मातृभाषा हिंदी हैं।13 करोड यानी 11 फीसदी से अधिक की यह दूसरी भाषा है। 55 फीसदी भारतीयों की मातृभाषा या दूसरी भाषा हिंदी है। दुनिया में 64 करोड़ से ज्यादा लोग हिंदी भाषी हैं। हिन्दी भाषा की लोकप्रियता भारत के अतिरिक्त लगभग 40 प्रतिशत भूभाग पर फैल चुका है। एक रिपोर्ट के अनुसार भारत में लगभग 77 प्रतिशत लोग हिंदी बोलते और समझते हैं। विश्व में लगभग 50 करोड़ लोग हिंदी बोलते हैं। देश का लगभग 60त्न बाजार हिंदी बोलने वाले लोगों का है। तकनीक ने हिंदी का विस्तार सात समुंदर पार तक पहुंचा दिया है। हिंदी अपने आप में एक समर्थ भाषा है। जहां अंग्रेजी में मात्र 10 हजार मूल शब्द है वही हिंदी के मूल शब्दों की संख्या 2 लाख 50 हजार से भी अधिक है। भारत में केवल 2 प्रतिशत लोग ही अंग्रेजी जानते हैं। आज जर्मन जापान चीन अमेरिका आदि ने अंग्रेजी को नकार कर अपनी.अपनी भाषा में अपने.अपने देशों की प्रगति हर क्षेत्र में कर ली है तो हम हिंदुस्तानी क्यों नहीं कर सकतेघ् हिंदी सबसे प्रभावी संचार माध्यम होनी चाहिए। हिन्दी भाषा अन्य भाषाओं की तुलना में आसान है। विश्व के अनेक देशों में लिपि के नाम पर केवल चित्रात्मक विधियां हैं। तब भी वे देश उन्नति के मामले में शीर्ष पर हैं। रूसए चीनए जर्मनीए फ्रांसए आस्ट्रेलियाए जापानए नीदरलैंड आदि देशों के उदाहरण सबके सामने हैं। बोली की दृष्टि से हिंदी विश्व मे द्वितीय स्थान पर है

आपको जानकर ताज्जुब होगा कि हमारी हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अहिन्दी भाषी भारतीय और अंग्रेजों का विशेष योगदान रहा - सर्वप्रथम 1800 ईस्वीं के कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना करने वाले एक अंग्रेज प्रो. गिल क्राईस्ट थे। उस समय नवागत अंग्रेज अफसरों के प्रतिशक्षण की व्यवस्था थी। इस प्रतिशक्षण में भारतीय भाषाओं की जानकारी भी शामिल थी पढाने के लिए राम प्रसाद निरंजनी, लल्लू लाल और सदल मिश्र को नियुक्त किया गया। इन्होंने सर्वप्रथम हिन्दी गद्य में पुस्तकें लिखी। अंग्रेजों के द्वारा शुद्ध व्यावसायिक मुनाफे के लिए बिछाये गये रेलों के जाल से भी दूरगायी लाभ मिले। पहले से ही हिन्दी देश के बड़े भू-भाग की भाषा थी। रेल और यातायात के साधनों ने इसे फैलने में मद्द की। हिन्दी की राष्ट्रीय भूमिका को अहिन्दी प्रदेशी भारतीय नेताओं जैसे तिलक, गांधी, सुभाषचन्द्र बोस, अबुल कलाम आजाद जैसे नेताओं ने पहचाना। सन् 1883 में स्वामी दयानंद ने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ ''सत्यार्थ प्रकाश'' हिन्दी में लिखा।

एंग्लो वैदिक कॉलेज में छात्रों के लिए हिन्दी पट से समझ जायेगा। हिन्दी व्यावहारिक शब्दों को समेटते हुए चल रही है। इस सन्दर्भ में पंडित गिरधर शर्मा ने म्या खूब कहा है - हजारों लब्ज आयेंगे नये, आ जायें क्या डर है? पचा लेगी उन्हें हिन्दी, कि है जिन्दा जुंबा हिन्दी। शत रूपा हिन्दी के अनेक रूप हैं - जनभाषा, राजभाषा, राष्ट्रभाषा, संपर्क भाषा, मशीनी भाषा, टकसाली भाषा। इन दिनों हिन्दी के एक और रूप की संभावना उभरी है - यह नया रूप है - हिन्दी विश्व भाषा या अंतर्राष्ट्रीय भाषा रूप।

हिंदी भारत देश की सार्वभौम भाषा बन गई है और इसके अपना अधिकार प्राप्त किया है भाषाओं के बीच एक दौड़ थी और हिंदी में दौड़ लगाई है और अब आप इस से नहीं रोक सकते हैं। हिंदी के पीछे विशाल दुनिया है। हिंदी कोई क्षेत्रीय भाषा नहीं हैए उसके कई बड़े द्वार हैंए जो दुनिया की तरफ खुलते हैं। तकनीक ने भाषा के विकास में बड़ी भूमिका निभाई है। तकनीक के चलते ही हम दुनिया के कोने.कोने से जुड़ कर बात कर पा रहे हैं। समाज की उन्नति से ही भाषा का विकास होगा। भाषा और साहित्य के क्षेत्र में अधिक शोध होने चाहिए। सबसे महत्वपूर्ण हिंदी के प्रति यदि आकर्षण बढ़ाना है तो समाज के आकर्षण को बढ़ाना हो। अंग्रेजी के कई शब्द अब हिंदी में स्वीकार कर लिए गए हैं और हिंदी के कई पुराने शब्द प्रचलन से बाहर हो गए हैं। इन सब ने हिंदी को काफी नुकसान पहुंचाया

है। अंग्रेजी की जिस जंजीर से हमने खुद को जकड़ रखा हैए उसे तोडऩा होगा। अंग्रेजी का प्रभाव इस हद तक बढ़ रहा है कि हमारे बच्चे अब ग्यारह बारहए छियासी नहीं समझते हैं बल्कि अंग्रेजी के अंकों को ही समझते और बोलते हैं। एक सच्चाई यह भी है कि हिंदी के विकास के बावजूद इसकी पूरी वर्णमालाए पूरी गिनती या हिंदी महीनों के नाम बहुत कम लोगों को याद होंगे। ज्यादातर कामकाजी लोगों को कंप्यूटर पर काम करना होता है। ऐसे में उन्हें संवाद से लेकर लेखन तक में अंग्रेजी मिश्रित हिंदी का उपयोग करना पड़ता है। हेलोए हायए थैंक्यूए एसक्यूज़ मीए डिनरए लंचए फिटनेसए ग्लैमरए कांग्रेचुलेशनए नाइस पिकए मीटिंग जैसे जाने कितने अनगिनत अंग्रेजी शब्द हमारी बोलचाल की हिंदी भाषा में घुस चुके हैं। हमें एहसास भी नहीं होता कि हमारी हिंदी का प्रयोग कितना बदल गया है।

चूँकि हिन्दी विश्व के एक महानतम लोकतंत्र की भाषा है, इसलिए इस भाषा ने अनेक देशों को आकर्शित किया है। कुछ देश ऐसे हैं जहाँ भारत के मूल निवासी बड़ी संख्या में बसे हैं, जैसे मारीशस, फ़ीजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद। इसी तरह कुली मजदूर के रूप में विदेशों में गये भारत वांशियों ने अपने त्याग और तपस्या से हिन्दी को अंतर्राष्ट्रीय भाषा बना दिया है। उन्होंने अपने श्रम और साधना के बल पर अंतर्राष्ट्रीय धरातल पर हिन्दी को जो गरिमा प्रदान की है, वह स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है। भूमंडलीकरण और निजीकरण के चलते आज पूरे विश्व की निगाह भारत पर है- क्योंकि भारत सबसे बड़ा बाजार है। एक विशाल उपभोक्ता क्षेत्र है। यही कारण है कि आज विदेशी कँपनियाँ प्रचार सामग्री हिन्दी में छपवाते हैं। आज टी.वी. के सारे चैनल हिन्दी का प्रयोग कर रहे हैं। बी.बी.सी. भी अपना वैज्ञानिक कार्यक्रम डिस्कव्हरी भी हिन्दी में प्रसारित कर रही है। इन सबके बाद भी हमें यह ध्यान रखना है कि जैसे हमारा अपना संस्कार होता है, भाषा की भी संस्कृति होती है। भाषा के संस्कार शब्द के मूल अर्थ में होते हैं, जो उसकी आत्मा होती है। आज हिन्दी साहित्य बोलचाल की सौम्य एवं अनुसशासित भाषा से अलग ही तेवर में प्रयुक्त हो रही है। हिन्दी 'आप' पर'तू' भारी हो गया है, मुझे-तुझे का स्थान मेरे को तेरे को ने ले लिया है। इसके अलावा अपून तो यहीच्च रहना मांगता: कट ले, कल्टी कर ले, तेरी तो वॉट लग गई जैसे जूमले लोगों की जुबान पर च तक आपकी बात या मेरी बात आप तक इस तरह पहुँचा दे कि वो आपकी अपनी बात बन जाये - देखिए गुफतार की खूबी, कि जो उसने कहा। हमने ये समझा कि, गोया वो मेरे दिल में था।।

संदर्भ-

- https://www.worldwidejournals.com/global-journal-for-research-analysis-GPJRA/recent_issues_pdf/2019/April/April_2017_1492167248__110.pdf
- https://www.hindijournal.com/
- https://www.shodh.net/index.php?option=com_content&view=article&id=38&Itemid=2
- https://www.shabdkosh.com/dictionary/english-hindi/research-paper/research-paper-meaning-in-hindi#google_vignette
- www.wikipedia.com
- Encyclopedia.com
- www.vishwahindi .com

वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में हिंदी साहित्य

डॉ. पांडुरंग चिलगर

सहयोगी प्राध्यापक, हिंदी विभाग महात्मा फुले महाविद्यालय, अहमदपुर

बीज शब्द: मनुष्य,समाज, वैश्वीकरण, बाजारीकरण,इंटरनेट, कॉम्प्युटर, भाषा, साहित्य।

प्रास्ताविक: मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और मनुष्य जाति के कारण ही सामाजिकता का अस्तित्व विद्यमान है। समस्त संसार में मानव ही एक ऐसा प्राणी है जिसमें बुद्धि, विवेक, ज्ञान, जिज्ञासु प्रवृति इत्यादि गुण विद्यमान हैं जो उसे संसार में सर्वश्रेष्ठ बनाते हैं और पशु प्रवृति से उसकी विभिन्नता का अंश रखते हैं। साधारणत: मनुष्य की इस दशा हेतु केवल भाषा की नि:स्वार्थ सेवा का सराहनीय कार्य ही रहा है जिसने मनुष्य के विचारों एवं भावों को एक मजबूत एवं स्थिर आधार दिया। भाषा के बिना मनुष्य निरा पशु है। भाषा के कारण ही मनुष्य में बुद्धि एवं विवेक का विकास होना संभव हुआ है और मनुष्य का समाज में अस्तित्व कायम हुआ। भाषा तथा समाज के संबंध में डॉ. मुकेश अग्रवाल कहते हैं कि 'भाषा और समाज अभिन्न रूप से जुड़े हैं। समाज भाषा के बिना अस्तित्वहीन हो जाएगा और समाज न होने पर भाषा की आवश्यकता ही नही रहेगी।'

संसार में विभिन्न प्रकार की भाषाएँ, बोलियाँ एवं उपभाषाएँ बोली जाती हैं जिससे संसार के लोगों में रहन सहन, संस्कार, सभ्यता इत्यादि में अंतर पाया जाता हैं। किन्तु भाषा का केवल एक ही मंतव्य है कि वह मनुष्य को उसकी जिज्ञासु प्रवृति के तहत विकासशील होने में अग्रणी रहने को मजबूर बनाए रखती है। पाषाण युग से आधुनिकता तक के सफर में भाषा का अहम योगदान रहा है जो इसने अपना उत्तरदायित्व समझ के निभाया है। मनुष्य के विकास के साथ-साथ भाषा में भी समयानुसार वांछित परिवर्तन आये हैं तथा भविष्य में भी जारी रहने की संभावना से हम कदाचित् इन्कार भी नही कर सकते।

समस्त संसार को ज्ञातव्य है कि, परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। विकास अथवा विनाश शब्दों में अप्रत्यक्ष रूप से परिवर्तन होने की प्रक्रिया ही विद्यमान है। इस शाश्वत नियम के तहत ही समाज में मनुष्य अपनी जिज्ञासु प्रवृति की तृप्ति हेतु कार्य करता आ रहा है और कदाचित् निश्चित रूप से करता भी रहे जिससे परिवर्तन अस्तित्व में आता है। भारतीय समाज में बीसवीं सदी के 90 के दशक में वैश्वीकरण नामक एक ऐसा परिवर्तन आया। इस परिवर्तन से भारतीय समाज में एक ऐसा अभूतपूर्व बदलाव आया कि उसने समाज के प्रत्येक हिस्से पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का आगमन हुआ। प्रत्येक देश संसार के अन्य देशों से व्यापार एवं बाज़ार के संबंध में समझोते करने लगा। इलेक्ट्रानिक उपकरणों के माध्यमों से सूचना एवं तकनीकि प्रसारण में अभूतपूर्व विकास हुआ। कम्प्यूटर ने तो इसमें ओर भी तेजी ला खड़ी कर दी। जिससे समाज के कुछ हिस्सों पर तो अच्छा प्रभाव पड़ा। किन्तु कुछ सामाजिक मूल्यों, सभ्यता के कुछ अंशों तथा संस्कृति के अनेक हिस्सों पर उसने करारी चोट की। फिल्में, भाषा, खाना-पीना, रहन-सहन, यातायात, साहित्य, वेशभूषा इत्यादि सबकुछ खिचड़ी के स्वरूप में भारतीय लोगों के सम्मुख प्रस्तुत होने लगा जिससे पढ़े लिखे वर्ग के साथ-साथ अनपढ़ वर्ग को भी काफी परेशानी, असुविधा तथा न चाहते हुए भी नयेपन का सामना करना पड़ा। जिसका असर आज तक भारतीय समाज तथा उसका प्रत्येक भाग भुगत रहा है। हिन्दी साहित्य भी इस से अछूता नही रहा। अप्रत्यक्ष रूप से सूचना प्रौद्योगिकी ने हिन्दी भाषा का भी विश्व स्तर तक प्रचार प्रसार किया। भाषा में शब्दावली संबंधी कई

प्रकार के बदलाव आये, जिससे साहित्य भी प्रभावित हुआ क्योंकि इससे हिन्दी भाषा के साथ-साथ विद्वानों तथा लेखकों के विचारों में बदलाव आ गया था। हिन्दी भाषा ने अपने रूप में विभिन्न अन्य भाषाओं का समावेश न चाहते हुए भी करवा लिया था। सोचने, समझने, लिखने के स्तर इत्यादि में विशेष बदलाव आ गये थे। काव्य का तो प्रारम्भिक ढांचा ही बदल गया था। छन्द, लय इत्यादि तो उनमें से कहीं गायब ही हो गये थे। खुली कविताएँ ही चलने लगी थी, उनका स्तर भी बिल्कुल बाजारी हो गया था और बदस्तूर आज भी वैसा ही जारी है।

वैश्वीकरण के कारण हिन्दी साहित्य पर जो असर पड़ा उसका अंतर जानने हेतु हमें पुरातन हिन्दी साहित्य तथा वैश्वीकरण के दौर के साथ-साथ आधुनिक दौर के साहित्य पर भी नजर डालते हुए उनके तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से समझना पड़ेगा। साहित्यकार सदैव ही अपने अनुभव, विवेक एवं कल्पना का समावेश करवा आदर्शवादिता का सहारे लेते हुए सामाजिक तानेबाने का चित्रण करता है। 'साहित्य समाज की बिखरी हुई इकाइयों को एक स्थान पर केन्द्रित कर देता है। अपने अनुभव और लोक-दर्शनके आधार पर साहित्यकार अपनी रचना में किसी भी ऐसी बात को नही छोड़ता जो समाज के हित के लिए आवश्यक हो। सत्य तो यह है कि साहित्य में समाज के सौन्दर्य की भाँति ही उसकी कुरूपता का भी सुन्दर रूप में चित्रण किया जाता है।' यदि समाज में किसी भी प्रकार का कोई भी परिवर्तन अथवा बदलाव आता है तो साहित्यकार उसी प्रकार अपनी लेखनी चलाने को बाध्य है। भारतेन्दु युग में या उससे भी पहले आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल इत्यादि में धर्म, चरित्र, प्रेम, सौदर्यात्मकता, भक्ति, अलंकार इत्यादि का साहित्य से प्रगाढ़ संबंध था। साथ ही साथ भाषा के स्तर पर भी विशेष ध्यान दिया जाता था। जिस कारण उनकी रचनाएँ आधुनिक काल तक पहुँचते ग्रन्थों की कोटि में स्वीकार की जाने लगी हैं तथा लेखनी चलाना सीखने हेतु वह रचनाएँ आज भी प्रासंगिक है। आदिकाल, भक्तिकाल एवं रीतिकाल की अधिकांश रचनाएँ पद्यात्मक रूप में थी। रीतिकाल में वातावरण के अनुसार साहित्य की गहराई में थोड़ा अंतर पाया जाता है। किन्तु छन्दों, अलंकारों, भावार्थों इत्यादि का अच्छा प्रयोगात्मक विवरण देखने को मिलता है। 'साहित्य में बहुत दिनों तक यह परिपाटी रही कि कविगण अपने काव्य का आरम्भ अपने देवता की स्तुति से करते थे। लेकिन अब वह परिपाटी समाप्त हो गई है। हिन्दी में राष्ट्रवादी कवि मैथिलीशरण गुप्त इस परिपाटी के अन्तिम उदाहरण थे। अब कोई भी कवि अपने ग्रन्थ का आरम्भ देव स्तुति से नही करता'। साहित्यिक कार्यों के संदर्भ में इस प्रकार की देव स्तुति भारतीय संस्कृति का एक अभिन्न अंग रही है। साहित्यिक कार्यों में ही क्या, लगभग प्रत्येक कार्य के शुभारम्भ में इसका चलन रहा है। किन्तु ऐसा लगता है कि भौतिकवाद की आग सब कुछ खत्म करने पर अमादा है। लेखन कला के दायरे में बहुत बड़ा विस्तार हुआ है। आधुनिकीकरण तथा वैश्वीकरण ने समकालीन लेखकों की मानसिकता पर भी प्रभाव डाला है जिस कारण आधुनिक रचनाओं में खुलापन है। खुली कविताएँ, छोटी कहानियाँ, लय-मुक्त दोहे, उपन्यासों में आ रही कमी, शब्दों में हलकापन यह सभी आधुनिकीकरण की वजह से है।

रचनाओं में अपनी जी-जान लगा देने की प्रक्रिया आज लगभग समाप्त ही है जो कि पुरातन साहित्य से बिल्कुल ही विरोधाभास रखती है। मैथिलीशरण गुप्त जी द्वारा रचित 'साकेत' हिन्दी साहित्य की अमर रचना कदाचित् दुबारा नही मिलेगी, लिखी जाने पर भी आशंका है। जिसके लिए मरणासन्न होने पर भी मैथिलीशरण गुप्त जी ने प्रभु से जीवन दान मांग कर उसे पूरा किया। ऐसी रचनाएँ लेखकों के जिगर का टुकड़ा रही हैं।

निश्चित रूप से वैश्विकरण से समाज के प्रत्येक हिस्से में इतने बदलाव आये कि सारी दुनिया 'वसुधैव कुटुम्बकम' की धारणा पर खरी उतरती नजर आने लगी। क्या व्यापार, क्या सूचना, क्या तकनीकि जानकारी सभी प्रकार के सामाजिक कार्य के एक हो जाने से पूरा पृथ्वी मंडल एक गाँव बन आपस में सिमट गया। साहित्य के मूल

रूप में विघ्न पड़ने का केवल यही एक कारण रहा क्योंकि इस परिवर्तन से साहित्यकार अथवा लेखक की सोच प्रभावित हो गयी। जिस सोच से पुरातन साहित्यकार अपनी लेखनी चलाते थे, कदाचित् वह कहीं समाप्त ही हो गई थी। सामाजिक कल्याण का आदर्श ले चलने वाले लेखक या साहित्यकार वैश्वीकरण की चकाचौंध से अपनी प्रसिद्धि को सर्वोपरि रखने लगे। मातृभाषा या राष्ट्रीय भाषा में विदेशी शब्दावली का इस्तेमाल करने लगे। यद्यपि भाषा और साहित्य का आपसी अटूट संबंध है। भाषा के बिना साहित्य का अस्तित्व ही नही है 'जिस प्रकार हमारे महर्षियों ने जीव जगत का अनुसंधान करके प्रत्येक प्राणी में शरीर और आत्मा का प्रतिपादन किया है, उसी प्रकार साहित्यकारों ने साहित्य के भी शरीर और आत्मा का निरूपण किया है। साहित्य की आत्मा है उसकी भाव व्यंजना अर्थात अर्थ और शरीर है उसकी शब्द रचना अर्थात भाषा।' किन्तु वैश्वीकरण नामक नयेपन के कारण साहित्यकार की सोच तथा भाषा के बदलाव ने तो साहित्य को एक नये मुकाम पर ला खड़ा कर दिया। जिससे पाठकों के दिलो-दिमाग पर भी असर पड़ना स्वाभाविक था। आज से तकरीबन 120 साल पहले चन्द्रकांता जैसे उपन्यासों को पढ़ने हेतु जिन लोगों ने हिन्दी सीखने जैसे कार्य किये थे और वह भी उस समय जब कि समकालीन सरकारों तथा बहुसंख्य लोगों को हिन्दी सीखने पर मनाही थी तथा अंग्रेजी भाषा का बोलबाला था। भाषा के प्रति वही ललक, वही जज्बा, वही जोश आज कहीं भी देखने में नही मिलता। अगर सत्य कहा जाये तो जिस प्रकार बाधाओं के बाद भी जब लोग हिन्दी सीख सकते हैं तो आज तो हिन्दी पर रोक की बजाए उसे बढ़ावा ही दिया जा रहा है किन्तु फिर भी लोगों में इसके प्रति उदारता ही है। आधुनिकता के कारण भाषा में अब वह वजन नही रह गया है जो साहित्य में गंभीरता, सौन्दर्य जीवन के निकट एवं औजस लाये। वजन तो दूर आज इसमें इतनी गिरावट आ गई है कि आज वार्तालाप एवं संवाद हेतु भी लोग बिल्कुल भद्दे एवं चलताऊ शब्दों का इस्तेमाल करने लगे हैं और यह प्रक्रिया इस स्तर तक पहुँच चुकी है कि अब खुद लोगों को भी इसका अहसास होने लगा है। इस संबंध में डॉ. हेमलता श्रीवास्तव कहती हैं कि 'भाषा में मर्यादा की अब कोई सीमारेखा नही रह गई है। आम बोलचाल से लेकर सोशल मीडिया और यहाँ तक कि फिल्म व साहित्य में भी चलताऊ शब्दों की बेजा घुसपैठ समाज को अंधी गली पर ले जा रही है। वयस्कों के साथ किशोरों यहाँ तक कि बच्चों की जुबान पर भी इन शब्दों का इस्तेमाल बढ़ रहा है।' इस प्रकार की छिछोरी भाषा से साहित्य में भी हल्कापन आ रहा है। आज सभी प्रकार के लेखकों में मानव कल्याण हेतु याथार्थ के साथ-साथ आदर्शवाद का अभाव है, जिससे कोई सारांश निकलता हो, अप्रत्यक्ष रूप से कोई शिक्षा मिलती हो। इस प्रकार के अभाव के कारण आज मानव बाहर से खुशहाल अंदर से कंकाल बनता जा रहा है। जो कि 'साहित्य' शब्द हेतु सिवाय धब्बे के कुछ भी नही है।

प्रश्न यह निर्माण होता है कि, आज भाषा या साहित्य के प्रति ऐसा क्यों नही हो रहा है। आज से दो सौ पचास साल पहले जब भारत पर अंग्रेजों ने भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित किया था तो उन्होंनें अंग्रेजी भाषा को अपनी सुविधा हेतु जन साधारण पर लागू करवाने की कोशिश की थी ताकि अपने सामराज्य को फैलाने हेतु अंग्रेजी भाषी लोग मिल सके। उनका मकसद अंग्रेजी भाषा के प्रसार प्रचार का नही था और न ही उसमें कोई साहित्यिक रचनाएँ लिखवाने का। किन्तु उस समय भी हिन्दी भाषा प्रेमिओं ने हिन्दी भाषा को बचाने हेतु अंग्रेजों से पूरी टक्कर ली थी। डॉ. रामविलास शर्मा ने 'भारत की भाषा समस्या' शीर्षक नामक अपनी पुस्तक में इस संबंध में वर्णन किया है कि 'यदि राजस्थान में 19 वीं सदी में हिन्दी राजभाषा के रूप में काम आती थी और उसका व्यवहार हिन्दुस्तान के लोग ही नहीं अंग्रेज भी करते थे तो कोई कारण नही कि, 20 वीं सदी के अन्तिम चरण में अंग्रेजी प्रेमी भारतवासी अपना अंग्रेजी मोह त्यागकर हिन्दी का उपयोग न कर सके।' सन् 1917 में महात्मा गांधी जी ने दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रचार प्रसार हेतु अपने पुत्र देवदास गांधी तथा स्वामी सत्यदेव को भेजा। उन्होंने

वहाँ जाकर सराहनीय कार्य किया। हालांकि इस कार्य के लिए उन्हें अनेक मुसीबतों का सामना भी करना पड़ा था। किन्तु प्रश्न भारतीय सांस्कृतिक गौरव तथा भाषा बचाने का था। प्रसिद्ध सामाजिक विश्लेषक प्रभु जोशी मानते हैं कि भूमंडलीकरण का सबसे बड़ा औज़ार भाषा है। भाषा के आधार पर ही इसका प्रचार प्रसार नियत है। यह तो हम सब जानते हैं कि भारत एक विभिन्न भाषाई देश है। यहाँ मध्यम वर्ग काफी बड़ी मात्रा में अपना जीवन बरस कर रहा है। जिस कारण यहाँ का बाज़ार भी बहुत बड़ा है। जो सारी दुनिया के व्यापारी वर्ग को लालायित करता है। वह यहाँ पर तब ही कामयाब हो सकते हैं जब सभी लोग एक ही भाषा के अंतर्गत कार्य-व्यवहार करें। इसी के तहत सोची समझी रणनीति के आधार पर अंग्रेजी भाषा का प्रचार प्रसार किया जा रहा है। जो हिन्दी भाषा के साथ-साथ भारतीय साहित्य संस्कृति इत्यादि के लिए भी खतरनाक साबित हो सकती है।

पुरातन से आधुनिक साहित्य की गुणवत्ता पर यथार्थता के केंद्र बिन्दू पर चर्चा करें तो कुछ आचम्भित करने वाले मुद्दे सामने आते हैं कि जिस प्रकार पुराने साहित्यकार या लेखक लोगों को बाँध कर बैठाने का मादा रखते थे। वह जिस प्रकार की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक अथवा राजनैतिक समस्याओं पर अपनी लेखनी चलाते थे जिस कारण लोगों में यह भावना जागृत होती थी कि वह उन्हीं की कहानी है या वह स्वयं को उस कहानी का एक हिस्सा मानने लगते थे, वह बात आज ढूँढने पर भी कहीं नजर नही आती। आज हिन्दी के तुलसीदास, सूरदास, केशव जैसे कवि कहाँ गये जिन्होने धर्म के नाम पर इतनी सशक्त रचनाएँ दीं कि हिन्दी साहित्य को अमर कर गये। तुलसी के राम भारतीय समाज के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में रहे हैं जिससे लोगों ने मर्यादा सीखी। सूरदास के कृष्ण आज भी वृन्दावन में अठखेलियाँ करते हैं। महाभारत के युद्ध में श्री कृष्ण जी द्वारा अर्जुन को दिए गये ज्ञान को आज भी सारी दुनिया प्रणाम करती है एवं उसके नक्शेकदम पर चलते हुए कर्म को ही तरजीह देती है। चूंकि हमें निश्चित भी नही हैं कि यह सारा कुछ घटित भी हुआ था अथवा नही। किन्तु फिर भी हम उन्हें दिल से मानने को बाध्य हैं क्योंकि यह सारा कार्य दिल से किया गया था और वह भी मानवीय कल्याण हेतु था। इन कार्यों के पीछे नफा नुक्सान, प्रसिद्धि जैसी किसी भी निम्न प्रवृति का कोई स्थान नही था। जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा जैसे छायावादी कवि जिन्होंनें कल्पनाओं को ऐसी उड़ान दी कि प्रेम, स्नेह, वियोग इत्यादि की गहराइयों का ज्ञान हुआ। चर्चित उपन्यासों अथवा कहानियों पर पहले फिल्में भी बनती रही हैं किन्तु आधुनिक युग में यह कार्य लगभग समाप्त ही हो गया है। पहले फिल्मों की गिनती भी कहीं न कहीं साहित्यिक कोटि में होती थी और प्रेरणा से ओतप्रोत भी होती थी। किन्तु आज तो नंगे दिखाकर पैसे बटोरते हुए बिजनेस करने के अलावा कोई दुसरा रास्ता है ही नही। त्योहारों पर गीत अथवा नाच या देशभक्ति पर तो फिल्में बननी जैसे बंद ही हो गयी हैं।

आश्चर्यचकित होने के अलावा कोई ओर चारा बचता ही नही है कि आज क्यों नही ऐसा काव्य अथवा कहानी, नाटक या निबंध लिखा जा रहा जो हमें सोचने के लिए मजबूर कर दे अथवा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की याद दिला सके, जिनके निबंधों ने धूम मचा कर रख दी थी। आज क्यूं नही ऐसी रचनाएँ मानवीय मस्तिष्क को बांधने पर, सोचने पर मजबूर करती। क्या आज का लेखक स्वयं को उस स्तर तक नही ले जा पाता। यदि नही तो यह भाषा तथा साहित्य दोनों के लिए विनाशकारी साबित हो सकता है तथा भावी पीढ़ियों के लिए तो यह उनको भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति से तोड़ने वाली बात होगी। जिसका बीज आज हम बो रहे हैं। सोचने वाली बात है कि बाजारीकरण में ऐसा क्या था, क्या है जिसनें मानवीय नैतिकता, मानवीय व्यवहार, मानवीय सोच के साथ-साथ अखण्ड भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को भी घायल कर दिया। हिन्दी भाषा के नाम का सहारा लेकर हम आगे तो बढ़ रहे है। साथ ही साथ भाषा का भी प्रसार फैलता जा रहा है। किन्तु अपनी छाप नही छोड़ पा रही है जो कदाचित् भावी पीढ़ियों हेतु नितांत आवश्यक है। वह उन्हें ढूंढने से भी नही मिल

पायेंगें। वैश्वीकरण ने मानव को भावहीन बना उसे साहित्य की अपेक्षा बाजार की ओर धकेल दिया है जिससे उसका व्यावसायिकरण, बाजारीकरण हो गया है। आज बाजार एवं विज्ञापनों की आड़ में शेखी, प्रसिद्धि, मुनाफा, स्पर्धा, बाहरी दिखावा जैसे गुण प्रमुख हो गये हैं और दया, धर्म, सहनशीलता, करूणा, धैर्य इत्यादि मानवीय मूल्य गौण हो गये हैं।

सामाजिक मुद्दे आज भी लगभग वहीं हैं। जो लगभग एक सदी पूर्व थे। बल्कि आज उनमें बढ़ोतरी ही हुई है। यदि मुंशी प्रेमचन्द समकालीन मुद्दे उठाकर उनके माध्यम से पूरे समाज में एक जागृति की लहर पैदा कर सकते हैं तो आज यह कार्य क्यूं नही हो सकता। क्या आज हम यह समझें कि हिन्दी भाषा केवल दिखावे की भाषा रह गई है। आज लेखक एक विशेष प्रकार के मुद्दे उठाता है। भाषा के इस्तेमाल में अंग्रेजी तड़का लगाता है। यह सब वैश्वीकरण का ही असर है। वैश्वीकरण से राजनैतिक स्तर पर तो हम कदाचित् यह मान सकते हैं कि हम विकास की दौड़ मे हैं। बढ़ती दुनिया के साथ कंधे से कंधा मिला कर चल रहे हैं। किन्तु नैतिकता, साहित्यिक, अथवा सांस्कृतिक स्तर पर तो हम मानसिक रूप से गुलाम ही हैं। वैश्वीकरण की वजह से मास-मीडिया ने साहित्य पर एक विशेष प्रकार का असर डाला। अब यहाँ पर 'मास मीडिया' शब्द को ही लीजिए। हिन्दी भाषा में 'मास' शब्द का अर्थ है भीड़ या जनता और 'मीडिया' शब्द का अर्थ है माध्यम। इसलिए मास मीडिया का अर्थ है जनता का माध्यम। किन्तु आधुनिकता की वजह से 'जनता का माध्यम' शब्द के स्थान पर अंग्रजी भाषा का शब्द 'मास मीडिया' शब्द ही इस्तेमाल किया जा रहा है। इस मास मीडिया के तहत भी 'इन्टरनेट' शब्द अंग्रेजी भाषा का है। जबकि हिन्दी में 'अन्तर्जाल' शब्द का बहुत कम इस्तेमाल हो रहा है। निश्चित रूप से वैश्वीकरण की वजह से अन्तर्जाल पर हिन्दी साहित्य से संबंधित विभिन्न रूप और उनसे संबंधित सामग्री भी प्रचुर मात्रा में मिल रही है। किन्तु इसने हिन्दी भाषा की गुणवत्ता पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है।

इस बात से कदापि इन्कार नहीं किया जा सकता कि वैश्वीकरण ने विश्व स्तर पर विचारों, घटनाओं एवं सूचनाओं हेतु एक मंच तैयार कर दिया है जिससे सामाजिक परिस्थितियों में अनचाहा बदलाव आया जिससे साहित्य भी उसी ओर मुड़ गया। साहित्य का कोई भी रूप गद्य अथवा पद्य हो। साहित्य पर इसका धीरे-धीरे असर होता हुआ आज मुख्य मुद्दा ही बदलता जा रहा है। विभिन्न कवियों ने अपनी लेखनी के दौरान उस समय की विभिन्न परिस्थितियों पर अपनी रचनाओं में उनका विशेष उल्लेख किया।

'आज मैं आया। थका-माँदा
एक किलो आलू का भाव दस पैसा घटाने में
पूरी झिकझिक के बाद भी नाकामयाब
हर बार चार आना और महँगा आलू
दुनिया की आधी आज़ादी की तरह खरीदे'
'मैं तुम्हारे बारे में बहुत नही सोच सकता
मुझे दवाओं के पैसे चुकाने हैं दूध का हिसाब करना है'

इस प्रकार की रचनाएँ स्वयं सिद्ध करती हैं कि साहित्य को जो रूप छायावादी विचारधारा से प्रभावित था कदाचित् वह आज खत्म हो चुका है।

' वो तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर.....

कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
श्याम तन, भरा बँधा यौवन
नत नयन प्रिय, कर्म रत मन
गुरु हथौड़ा हाथ
करती बार-बार प्रहार.....'

निराला जी की इन पंक्तियों में तथा लीलाधर जगूड़ी की काव्य पंक्तियों में जो अंतर दृष्टव्य है वह यह है कि निराला जी की रचना में गरीबी, मेहनत एवं शोषण दिखाई पड़ता है जबकि जगूड़ी की रचना में मँहगाई, जीवन यापन की चिन्ता, भविष्य की चिन्ता के लक्षण नजर आते हैं। हालांकि दोनों रचनाएँ लगभग समान दिखाई पड़ती हैं। यह अंतर वैश्वीकरण की उपलब्धि है। भारत में वैश्वीकरण से अमीर एवं गरीब, दलित, शोषित वर्ग के दरमियान खाई ज्यादा बड़ी हुई है। गरीबों के कारण बाज़ार है जिसका फायदा अमीर उठा रहा है और अंग्रेजी भाषा के कारण गरीब अमीर से कट रहा है। प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, यशपाल महादेवी वर्मा इत्यादि लेखकों ने गरीबी की गहराइयों की तह तक जाकर उनकी भावनाओं, उनकी सोच, उनके कार्यों इत्यादि को महसूस कर, उसे भोगकर अपनी लेखनी में उतारा। बिना किसी विज्ञापन के वह रचनाएँ विश्व प्रसिद्ध हुई। आज भी लोग इन रचनाओं को बड़े चाव से पढ़ते हैं। आज भाषा के कारण अमीरी और गरीबी में गहरा अंतर है तो अंतरात्मा को झकझोर देने वाली रचनाओं की उम्मीद कहाँ से की जा सकती है। आज किताबों में तो शब्दावली प्रचुर मात्रा में है। किन्तु लोगों के दिलो-दिमाग में नहीं है। किसी भी रचना को संवेदनशील और प्रभावशाली बनाने हेतु छवि, प्रतीक, बिम्ब इत्यादि जैसे न तो शब्द मिलते हैं और न ही इनसे संबंधित इनके अर्थ। सौन्दर्यात्मकता जैसे भावों एवं गुणों का तो बंटाधार ही हो गया है। इस प्रकार की त्रासदी के लिए केवल वैश्वीकरण ही जिम्मेदार है।

इस बात से कदापि इन्कार नही किया जा सकता कि अन्तर्जाल के कारण हिन्दी भाषा का प्रचार प्रसार आज विश्व स्तर पर हो रहा है। भाषा के प्रसार से साहित्य भी पनप रहा है। किन्तु साहित्य का जो स्तर इतनी समृद्ध भाषा के अनुरूप होना चाहिए, कदाचित् वह नहीं है। आज कोई भी लेखक इतनी गहराई में नहीं जाता जितनी इस भाषा के साहित्यिक दृष्टि के अनुरूप लेखक को जाना चाहिए। हालांकि मुद्दे तो आज भी बहुत से हैं जिन पर कार्य होना चाहिए। किन्तु प्रश्न यह खड़ा होता है कि आज के लेखक का ध्यान, उसकी एकाग्रता, मुद्दों के प्रति उसकी उदासीनता, विषय के प्रति उसकी गहराई आज किधर है? आज रचनाएँ तो धड़ाधड़ छप रही हैं। किन्तु उनमें दिलों दिमाग में छाप छोड़ने की गहराई कदाचित् गायब है। कम्प्यूटर ने इसके प्रचार प्रसार में कोई कसर नही छोड़ी है। हजारों वैब साइट हिन्दी में कार्य कर रही हैं। प्रतिदिन ब्लॉग छप रहे हैं। इन सभी को देखकर एक बात सामने आती है कि जिस प्रकार मनुष्य की प्रवृत्ति है कि वह प्रत्येक कार्य को आसान बनाना चहाता है। इसी प्रवृति के तहत उसने भाषा में भी बदलाव किये हैं। अपनी सुविधा के अनुसार वह उसे साधारण से भी नीचे ले जा रहा है। उसे तोड़-मरोड़ कर पेश कर रहा है। एक प्रकार से उसकी गरिमा को ही खत्म करने को आतुर है। जिससे साहित्य की शैली एवं उसकी गहराई पर प्रश्नचिह्न लग रहा है।

वर्तमान समय में अखबारों, रेडियो एवं टी.वी. के विभिन्न चैनलों के माध्यम से प्रतिदिन हजारों विज्ञापनों की दौड़ अथक चल रही है। जिनमें से लगभग 90 फीसदी हिन्दी भाषा के माध्यम से हैं। 'गाँवों, शहरों, नगरों, महानगरों की सीधी, सपाट, सरल जीवन शैली से लेकर व्यस्ततम, तीव्र, गतिपूर्ण एवं याँत्रिक जीवन में प्रवेश करके स्थान-स्थान पर विज्ञापनों की वैविध्यपूर्ण दुनिया को देखा जा सकता है।' विज्ञापनों के अलावा सूचनाएँ, प्रपत्र,

पत्रिकाएँ इत्यादि हिन्दी भाषा में धड़ल्ले से परोसी जा रही हैं। किन्तु ध्यान से अवलोकन करने पर यह बात सामने आती है कि वैश्वीकरण के कारण हिन्दी भाषा को एक बाजार तो प्राप्त हुआ है। किन्तु वह केवल विज्ञापनों तक ही सीमित रह गया है और हिन्दी केवल विज्ञापनों की भाषा बन कर रह गई है। इसमें विचार विमर्श की गुजांइश किंचित मात्र ही है। विचार विमर्श, अध्ययन एवं संवाद साहित्य की जीवन रेखाएँ है। नौजवान वर्ग वैश्वीकरण से सारी दुनिया की घटनाओं से स्वयं को पल-पल अवगत करवा रहा है। जिससे नई प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। मोबाइल ने विचार विमर्श, अध्ययन एवं संवाद की सारी सम्भावनाओं को दरकिनार कर दिया है। जिससे भाषा एवं साहित्य की जीवन रेखा टूटती हुई नजर आ रही है। विज्ञापनों में भी उपभोक्ता की सुविधा के ध्यानहित अंग्रेजी प्लेट में हिन्दी व्यंजन परोसा जा रहा है। क्योंकि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के उत्पादों की क्रय-विक्रय प्रक्रिया का मात्र यही रस्ता शेष रह जाता है। जिससे सारा वातावरण प्रभावित होता है। सही अर्थों में एक साकारात्मक सोच प्रभावित होती है। जो साहित्यिक विचारधारा एवं सोच को पनपने ही नही देती। अनेक वैब साईट पर जितने भी लेख प्रकाशित होते हैं उन सभी में सैकड़ों की तादात में विज्ञापनों की लड़ी चलती रहती है जो लेख के गहन अध्ययन में एक अवरोधक का कार्य करती है जिससे पाठक विश्लेषण अथवा अलोचना करने की प्रक्रिया से तो स्वर्था दूर ही रहता है। सही अर्थों में तो भौतिकवाद के इस बदलाव से व्यक्ति ने स्वयं को इस कदर तक व्यस्त कर लिया है कि वह किताबों का अध्ययन ही नही कर पाता और न ही अध्ययन का वातावरण का जन्म हो पाता है।

पिछले 40 -45 सालों से हिन्दी के कार्य-क्षेत्र में जो फैलाव अथवा विस्तार आया है। उसे देखकर तो यह लगता है कि हिन्दी भाषा का भूमण्डलीकरण हो गया है। इस बात से इन्कार भी नही किया जा सकता कि वैश्वीकरण के कारण हिन्दी पूरे विश्व में अपनी जगह बना पाई है। विदेशों में अनेक संस्थानों में हिन्दी पढ़ाई जाती है। हिन्दी बोली जाती है। विदेशों में हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं। 'हम देख सकते हैं कि इधर हिन्दी पत्रकारिता का स्वरूप बहुत बदल गया है। अनेक पत्रिकाएँ यद्यपि बंद हुई हैं परंतु अनेक नई पत्रिकाएँ नए रूपाकार में शुरू भी हुई हैं। आज हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में हिन्दी और हिंदीत्तर राज्यों का अंतर मिटता जा रहा है। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का पाठक वर्ग तो संपूर्ण देश में है ही, उनका प्रकाशन भी देशभर में हो रहा है। डिजिटल टेकनीक और बहुरंगे चित्रों के प्रकाशन की सुविधा ने हिन्दी पत्रकारिता जगत को आमूल परिवर्तित कर दिया है।'

हिन्दी के कुछ प्रमुख संस्कृतनिष्ठ हिन्दी में लिखित रचना को ही हिन्दी साहित्य का एक अंश मानते है। वह आज की हिन्दी को छिछोरी भाषा की संज्ञा से अभिभूत करते हैं। इसमें लिखित रचनाओं को वह साहित्यिक रचना मानते ही नही। किन्तु आज की पीढ़ी ने इसे अपना लिया है। उनकी साहित्यिक रचनाएँ भी, उनके शीर्षक भी, उनकी समस्याएँ भी आधुनिकता की वजह से बदल गई हैं। आज युवा वर्ग एक दूसरे पर अपना प्रभाव जमाने हेतु टूटी फूटी हिन्दी भाषा का इस्तेमाल करता है। वार्तालाप के दौरान पंजाबी, अंग्रेजी अथवा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का हिन्दी भाषा में प्रयोग करता है। जिससे हिन्दी भाषा का स्वरूप प्रतिदिन बिगड़ता जा रहा है। विद्यालयों में बच्चों की वर्तनी पर कोई खास ध्यान नही दिया जा रहा। 'मैने यह कार्य किया है' कहने की बजाए 'मैंने यह कार्य करा है' इत्यादि जैसे वाक्यों का चलन बढ़ता जा रहा है जिससे व्याकरण पर भी प्रश्न खड़ा हो रहा है जो कि खुद भाषा को नियंत्रण करने का कार्य करती है। गलतियों में सुधार की बजाए उसी उसी रूप में बढ़ावा मिल रहा है। जिससे हमारी विचारधारा में भी परिवर्तन आ रहा है। कुछ हद तक पत्रकारिता एवं शोध-पत्रिकाओं ने हिन्दी के मानक रूप को एक वाहक के रूप में बचाकर रखा हुआ है। इस संबंध में सूद जी कहते हैं कि 'भाषा के संबंध में एक रोचक तथ्य यह भी है कि भाषा केवल विचारों के आदान-प्रदान का साधन मात्र ही नही है अपितु वह हमारे सोचने, समझने और तर्क-वितर्क का भी माध्यम है।' इसलिए भाषा से केवल विचारों के आदान प्रदान का ही संबंध नही

रह जाता। उससे हमारी सोच, हमारी मानसिकता भी जुड़ी हुई होती है जिससे हमारी विचारधारा प्रभावित होती है और विचारधारा प्रभावित होने से समाज में उसका असर गहराई तक जाता है।

वैश्वीकरण से हम सूचनाओं के स्तर पर तो पूरे विश्व में एक दूसरे के नजदीक आ रहे हैं, परस्पर सहयोगी हो रहे हैं। किन्तु सामाजिक स्तर पर दृष्टिपात करने से परिवार टूटते नजर आ रहे हैं। पारिवारिक सदस्यों का आपसी मेल-मिलाप कम हो गया है। लोग सामूहिक परिवार की बजाए एकल परिवार की परम्परा की ओर अग्रसर हुए जा रहे हैं। भारतीय परम्पराओं को तोड़ते हुए पश्चिम संस्कृति पर न्योछावर होने को आतुर हैं। विडम्बना देखिए कि साहित्यिक रचनाएँ भी उसी के अंतर्गत लिखी जा रही हैं। 'कहते, 'अंग्रेजी बोलो, अंग्रेजी ढंग के कपड़े पहनो, छुरी-काँटे से खाओ, मगर बिलकुल अंग्रेज न बनो।' तात्पर्य यह कि विकास की आड़ में भारतीय भाषा, साहित्य एवं संस्कृति पर करारी चोट हुई है।

लोगों की विचारधारा धीरे-धीरे इस ओर भी अग्रसर हो रही है कि पश्चिम में रोजगार, शिक्षा एवं जीवन यापन के पुख्ता आसार हैं, प्रबंध है बनिस्बत भारत के। जिस कारण सम्पूर्ण भारतवर्ष से प्रतिदिन सैकड़ों, हजारों लोग विदेशी उड़ाने भर रहे हैं। जिन लोगों का हिन्दी भाषा अथवा साहित्य से लगाव है। उनके कारण विदेशों में तो हिन्दी भाषा अपना अच्छा प्रभाव जमा रही है। किन्तु भारत के कुछ राज्यों में इसका धीरे-धीरे पतन हो रहा है। पंजाब जैसे राज्यों में तो स्कूल स्तर पर हिन्दी को खत्म ही कर दिया है जो कि भावी दृष्टि से पंजाब वासियों के लिए विनाशकारी साबित होगा। पंजाब के लोग हिन्दी भाषा से अनभिज्ञ ही रहेंगे। आज पंजाब राज्य में से हिन्दी साहित्य की रचना जैसे कार्यों का होना दुर्लभ कार्य प्रतीत होता है। किन्तु वैश्वीकरण से सबसे ज्यादा लोग विदेशों में जा रहे है। पंजाब में लोगों को पंजाबी भाषा की आड़ में भाषाई स्तर पर मानसिक पंगु बनाया जा रहा है। भारत में साठ फीसदी आबादी नौजवान के रूप में है जिन पर सारा दारोमदार है और विडम्बना देखिए कि वैश्वीकरण की चपेट में वही वर्ग सबसे ज्यादा है। अब किस प्रकार आस की जा सकती है कि पूर्वजों की चलाई लड़ी को वे बरकरार रख सकेंगे। आज जितने भी लोग हिन्दी साहित्य की सेवा में संलग्न हैं। वह सभी लगभग 70 की उम्र को पार कर चुके है। चिंतित होने का विषय है कि उनके बाद हिन्दी भाषा एवं साहित्य का क्या अंजाम होगा। चुनिन्दा नौजवान लोग ही है जो उनके नक्शे कदम पर चल रहे हैं।

सारांश : विभिन्न चिंतक, आलोचक एवं लेखक आज इस बात पर एक मंच पर हैं कि, वह सरकार एवं नौजवान वर्ग का ध्यान इस और आकर्षित करें कि हिन्दी भाषा एवं साहित्य भारतीय संस्कृति का एक अहम हिस्सा है। भारत बहुभाषी देश है। हिन्दी के अतिरिक्ति ब्रज भाषा, अवधी, भोजपुरी इत्यादि उपभाषाओं में भी धीरे धीरे साहित्य रचना होने लगी है अथवा हो रही है और प्रत्येक के लक्षणों एवं कर्मों में भारतीय संस्कृति निहित है। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के साथ-साथ हिन्दी भाषा एवं साहित्य को पतन की ओर ले जाने के लिए मुख्य एवं संकलित रूप में केवल वैश्वीकरण को ही जिम्मेदार नही ठहराया जा सकता। निष्पक्षता को साथ लें तो हम खुद भी इसके लिए उतने ही जिम्मेदार हैं। हम सख्त मेहनत एवं भ्रमण से परहेज करने लगें हैं। मोबाईल, कम्प्यूटर, इन्टरनेट सहित अपने ए.सी. कमरों में बैठ कर केवल पुरानी रचनाओं से नकल का सहारा ले रचनाओं को एक नया रूप देने लगे हैं। जिसमें एक प्रकार का नकलीपन एवं हल्कापन सा आ गया है। जिससे एक तरह का झूठ और फरेब ही उभर रहा है। अपनी रचनाओं से हमारा आत्मिक लगाव रहा ही नही है। हम केवल दिखावे एवं प्रसिद्धि की ओर अग्रसर हो रहे हैं। भौतिकवाद की चमक ने हमारे मन की शान्ति को खत्म कर मृगतृष्णा की ओर धकेल दिया है जिसकी प्राप्ति हेतु हम अपनी भाषा, साहित्य, संस्कृति, मूल्य इत्यादि को कुचलते हुए आगे बढ़ते तो जा रहे हैं किन्तु हमारे हाथ कुछ नही लग रहा है, बल्कि सत्य तो यह है कि जो हमारे पास था हम उसे भी खो बैठे हैं। यदि हमें भावी

पीढ़ियों हेतु कुछ देना है तो हमें सर्वप्रथम हमें अपनी भाषा को बचाना होगा। अपने बच्चों को मानक हिन्दी की शिक्षा देनी होगी। अच्छी रचनाएँ पढ़ने की ओर ललायित करना होगा। भाषाओं के प्रति पैदा हुए मानसिक द्वन्द्व को दूर करना होगा। क्योंकि भाषा है तो साहित्य है। साहित्य है तो समाज है और यदि समाज है तो मानव है।

संदर्भ:

1. अग्रवाल डॉ. मुकेश, हिन्दी साहित्य और संस्कृति, के.एल.पचौरी प्रकाशन, गाजियाबाद, 2010, पृष्ठ-135
2. गुप्त सुरेश चंद्र, कृष्ण चंद्र विद्यालंकार, आधुनिक हिन्दी निबन्ध, भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली, 1957, पृष्ठ-29
3.दिनकर रामधारी सिंह, साहित्य और समाज, लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007
4. प्रेमी नत्थूराम, साहित्य परिचय, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, 1950, पृष्ठ-01
25.10.2017 के दैनिक भास्कर के 'मधुरिमा' मैगजीन में 'भाषा की टूटती मर्यादा' आलेख की कुछ पंक्तियाँ
5. शर्मा डॉ. रामविलास, भारत की भाषा समस्या, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ-13
6. लीलाधर जगूड़ी, भय भी शक्ति देता है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ-10
7. लीलाधर जगूड़ी, भय भी शक्ति देता है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ-11
8. निराला सूर्यकांत त्रिपाठी, अनामिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2016
9. सूद, डॉ. हरमोहन लाल, हिन्दी भाषा प्रयोजनमूलकता एवं आयाम, वागीश प्रकाशन, जालंधर,2010, पृष्ठ-176
10. सूद, डॉ. हरमोहन लाल, हिन्दी भाषा प्रयोजनमूलकता एवं आयाम, वागीश प्रकाशन, जालंधर,2010, पृष्ठ-11
11. बिस्मिल्लाह अब्दुल, रावी लिखता है, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली-2010, पृष्ठ-11

दलित विमर्श चिंतन और चुनौतियां

राधा देवहंस

शोधार्थी छात्र:

प्रो. डॉ. श्री संजय नरवाडे

शोध मार्गदर्शक -- आदर्श महाविद्यालय, हिंगोली रिसर्च सेंटर -- आदर्श महाविद्यालय, हिंगोली

radhamankar@gmail.com ,Mo no 8149872917

सारांश -आज दलित विमर्श को संवैधानिक शक्ति प्राप्त है ।दलित साहित्य में जड़ रूढ़िवादी सामाजिक संरचना को बदलने की शक्ति निहित है। नि:संदेह जातिवाद की समस्या संपूर्ण समाज और राष्ट्र की समस्या है। यदि प्रकृति अपने संसाधनों की अवदान में भेद नहीं करती तो समाज में भेदभाव क्यों? नामदेव, कबीर और रविदास जैसे संतों ने दलितों की पीड़ा को अत्यंत मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है।

कबीर पूछते हैं,

तुम कत बामन हम कत सूद ।

हम कत लोहू तुम कत दूध ।।

आधुनिक हिंदी साहित्य में दलित साहित्य को चिंतन का विस्तृत फलक प्रदान किया है। इस साहित्य को डॉ बाबासाहेब अंबेडकर ने दलित साहित्य का नाम दिया था। उनकी अद्‌भुत चेतना के कारण ही दलित साहित्य प्रमुख धारा बन चुका है। दलित साहित्य उतना ही प्राचीन है जितना हिंदी साहित्य।

प्रस्तावना

प्रेमचंद पहले ऐसे साहित्यकार हैं जिनकी रचनाओं में दलित जीवन को प्रमुखता से स्थान मिला है। उनकी कहानी सद्गति, कफन, ठाकुर का कुआं आदि में दलित जीवन की त्रासदी को गहराई से अभिव्यक्त किया है। आजादी से पहले प्रेमचंद, निराला, यशपाल आदि कहानीकारों ने दलित जीवन को अपनी लेखनी से उकेरा। आजादी के बाद मार्कण्डेय, अमरकांत, राजेंद्र यादव, नैमिष राय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पुन्नी सिंह, प्रेम कपाड़िया, डॉ दयानंद बटोही, डॉ तेज सिंह, बाबूलाल खंडा, रामचंद्र चर्चित रचनाकार है। महिला साहित्यकारों में उषा चंद्रा, रमणिका गुप्ता, रजत रानी मीनू, मैत्रेयी पुष्पा, सुभद्रा कुमारी प्रमुख रचनाकार है।

वस्तु विषय

दलित शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के' दल' धातु में 'त 'प्रत्यय लगाने से हुई। शब्दकोश के अनुसार दलित शब्द का सामान्य अर्थ है रोंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनष्ट किया हुआ। दलित का शाब्दिक अर्थ' दमित 'संदर्भ में होते हुए वर्ग विशेष के लिए रूढ हो गया है। दलित शब्द जाति सूचक नहीं बल्कि वर्ग सूचक है। यह समाज के उसे वर्ग का परिचायक है जिसे दबा कुचला गया ,हर स्तर एवं हर क्षेत्र में उत्पीड़ित किया गया ।दलित शब्द आधुनिक है और इसका प्रयोग वर्तमान अर्थ में २० वी शताब्दी में आरंभ से हुआ है ।हिंदी साहित्य के मुख्य धारा में दलित विमर्श का मुद्दा ८० के दशक में उभरा जो ९० तक आते-आते हैं काफी चर्चित हो चुका था। साहित्य की बहुचर्चित पत्रिका हंस में दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा जूठन धारावाहिक के रूप में प्रकाशित हुई जो आलोचकों और पाठकों में बहुत चर्चित हुई। १९९७ में इसे राजकमल प्रकाशन ने आत्मकथा के

रूप में प्रकाशित किया ।यहीं से दलित विमर्श का मुद्दा बन गया। दलित साहित्यकार अपने जीवन के कटु अनुभव को व्यक्त करते हैं जिसका उद्देश्य पूरी दुनिया को बताना है कि के साथ क्या दुर्व्यवहार हुआ है।

विख्यात दलित चिंतक केवल भारती जी लिखते हैं, "दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिन में दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रुपायित किया है, अपने जीवन संघर्ष में जी यथार्थ को भोगा है ,दलित साहित्य उनका उसी की अभिव्यक्ति का साहित्य है ।यह कला के लिए कला का नहीं बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है।" (1)

दलित साहित्य को तीन स्तरों पर समझा जा सकता है। पहले भोगे हुए यथार्थ के आधार पर। दूसरा उनका लिखा गया जो साहित्य नहीं है।तीसरा स्तर विचारधारा का। क्या प्रगतिशील होकर दलित साहित्य लिखा जा सकता है? यह बुनियादी मगर उलझा हुआ सवाल है। दलित साहित्यकार माता प्रसाद का मानना है -" दलित साहित्य वह साहित्य है जिसमें वर्ण समाज में सामाजिक, धार्मिक ,आर्थिक ,शैक्षिक और राजनीतिक दृष्टि से दलित, शोषित, उत्पीड़ित, अपमानित, अपेक्षित, तिरस्कृत, वंचित, निराश्रित, पराश्रित ,बाधित ,अस्पृश्य और असहाय है ,पर साहित्य की रचनाएं हैं वही दलित साहित्य की श्रेणी में आती है। इसमें बंधनों में जकड़ी स्त्रियां, बंधुआ मजदूर, दास, घुमंतू जातियां, अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातिया आती हैं। दलित साहित्य वेदना चीख और छटपटाहट का साहित्य है!" (२)

दलित लेखन का आरंभ सबसे पहले मराठी भाषा में हुआ जिसका आधार डॉक्टर बाबासाहेब अंबेडकर के विचार तथा उनका जीवन संघर्ष है। मराठी भाषा में २०० से अधिक दलित आत्मकथाएं लिखी जा चुकी है। दलित साहित्य सिर्फ अभिव्यक्ति नहीं बल्कि एक आंदोलन है। दलित साहित्यकारों ने शिक्षा के बल पर समाज और साहित्य में अपना स्थान बनाया। शिक्षा द्वारा ही दलित और स्त्रियों में अपने अधिकार और अस्मिता को समझने की चेतना आई। डॉ आंबेडकर कहते थे, 'शिक्षित बनो', 'संगठित बनो' और संघर्ष करो। आप्पो दीपो भव' अर्थात अपना 'दीपक स्वयं बनो' डॉ बाबासाहेब के इन्हीं शब्दों ने सदियों से शोषित दलितों के अंदर सोई उदासीनता को तोड़कर संघर्ष करने को प्रेरित किया। डॉ आंबेडकर का मानना था कि " प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित किया जाना चाहिए। हर एक व्यक्ति में अपनी रक्षा की क्षमता होनी चाहिए। अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह बहुत जरूरी भी है। (३)

दलित समाज अभी तक मानकर चल रहा था कि शिक्षा उनके लिए नहीं है। जब उसे अपना अधिकार पता चला तो उसने असमानता का विरोध किया , "आप लोग हमारे मोहल्ले के लड़कों को इस तरह डोम कहकर अलग-अलग बैठा नहीं सकते ।(४)

लेकिन जब दलित समाज अधिकार मांगता है तो उसे गालियां ही सुनाई पड़ती है, " क्यों रे क्यों दौड़ गया था रे हरामी का पिल्ला। दो - चार हाथ कस के पड़ेंगे तो जानेगा साला की डम लोगों को अलग-अलग क्यों बैठाया जाता है।"(५) जयप्रकाश कर्दम दलित साहित्य में बड़ा नाम है जिनकी कहानियां दलित जीवन को बेहतर ढंग से समझा जाने का काम करती है।

दलित स्त्रियों को आंदोलन से जोड़े बिना ना समाज आगे बढ़ सकता है और ना ही साहित्य। दलित स्त्रियां आज भी पितृ सत्ता, जातिवाद, अशिक्षा और गरीबी में अपना जीवन बिता रही है।। समाज में उनके प्रति एक घृणा का भाव अभी भी बना हुआ है। उनकी उपेक्षा संपूर्ण दलित समाज की उपेक्षा है। " दलित और स्त्रियों के अस्मिता आंदोलन की उपेक्षा करना ना तो किसी मानव मुक्ति की कल्पना की जा सकती है ना मानव मुक्ति की वृहत्तर जीवन मूल्यों से जुड़े बिना अस्मिताओं के यह आंदोलन अपने व्यापक लक्ष्य को ही पा सकते हैं। (६)

साहित्य बीते हुए कल का आईना और भविष्य के जीवन को दिशा देने वाला है ।सच्चा साहित्य कभी पुराना नहीं होता, साहित्य जीवन के मूल्यों को प्रतिष्ठित करता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं, "दलित साहित्य में दलित जीवन का यथार्थवादी चित्रण यथार्थ की मात्र नकल नहीं है बल्कि साधारण परिस्थितियों में साधारण चरित्र का वास्तविक पुनसर्जन है। इस कार्य में दर्शन और कलात्मक पांडित्यपूर्ण प्रदर्शन की आवश्यकता कतई नहीं है। पाठक की चेतना और अनुभूति को प्रभावित करने वाली गहन संवेदना से ही यह संभव है। (७)

सदियों से प्रचलित परंपरा और विचारधारा का खुलकर विरोध करना दलित साहित्य का उद्देश्य है। दलितों की स्थिति भारत के प्रत्येक भूभाग में एक जैसी है, जाहिर है उनका स्वर भी एक जैसा ही है। चाहे वे मराठी के दया पवार हो, पंजाबी के गुरदास राम 'आलम' उड़िया के विचित्र चंद नायक, गुजराती के मंगल परमार या हिंदी के ओमप्रकाश वाल्मीकि हो।

निष्कर्ष

आज दलित विमर्श हिंदी प्रदेश की सीमाओं को लांघकर विस्तृत रूप ले चुका है। जिसका मूल उद्देश्य दलित जीवन बुनियादी समस्याओं को उजागर करना है। संपूर्ण भारतीय भाषाओं में दलित लेखन तेजी से हो रहा है। दलित लेखक समानता, सम्मान और अपनी आजादी के लिए लिख रहे हैं। जाति, नस्ल के आधार पर हो रहे हैं भेदभाव को वह खत्म करना चाहते हैं। दलित साहित्यकार चाहता है कि समाज में धर्म, सत्ता, दर्शन तथा जन्म के आधार पर किसी व्यक्ति की श्रेष्ठता घोषित न किया जाए। संपूर्ण रूप में देखे तो यह जाति से मुक्ति का साहित्य है। दलित साहित्यकारों ने समाज और साहित्य में अपना सम्मानित स्थान बनाया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

(१) दलित साहित्य की भूमिका: कंवल भारती पृष्ठ ६७

(२) कथा- क्रम,दलित विशेषांक, नवंबर २००० पृष्ठ ११५

(3) डॉ बी आर अंबेडकर, आचार्य जुगल किशोर बौद्ध (अनुवादक) 'जाति भेद का बिजनाश' सम्यक प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ ३५

(४) डॉ संजय बाग, हीरो (कहानी) दलित अस्मिता पत्रिका, अप्रैल- जून २०१३ पृष्ठ ४

(५) वही पृष्ठ ४६

(६) चौथीराम यादव, दलित चिंतन की प्रति परंपरा और कबीर, दलित अस्मिता, अक्टूबर दिसंबर २०१०, पृष्ठ ९

(७) ओम प्रकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, वाणी प्रकाशन पृष्ठ १५९

'' भारतीय आजादी आंदोलन और हिंदी कविताएं''

प्रा. डॉ. अमोल रमेश इंगले

हिंदी विभागाध्यक्ष, शिवनेरी महाविद्यालय शुरुरअनंतपाळ, जिला. लातूर-महाराष्ट्र-413544

दूरभाष क्रमांक-9423737256 ,Email-amoli6080@gmail.com

अपने देश के इतिहास में स्वतंत्रता आंदोलन सबसे बड़ी घटना मानी जाती है। स्वतंत्रता आंदोलन के इस 'महायज्ञ' में देश के छोटे, युवा, बुजुर्ग, स्त्री तथा पुरुष आदि ने बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया था। देश आजादी के लिए अपने प्राणों का बलिदान दिया है। अंग्रेजों की गुलामी के जंजीरों को तोड़ना इतना आसान नहीं था पर देश के वीर जवानों, क्रांतिकारों, महापुरुषों, सुधारकों, पत्रकारों तथा साहित्यकारों ने अपने जीवन को देश की आजादी के लिए घर, परिवार तथा जीवन की परवाह किए बिना अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए समर्पण दिखाया तब जाकर कहीं आजादी मिली। अंग्रेज हमारे देश में व्यापार के बहाने आए थे लेकिन उन्होंने देखा कि इस देश में जात-पात, धर्म, आचरण, संस्कृति, खान-पान, रहन-सहन, प्रदेश तथा भाषा आदि की विभिन्नता है। इसी का आधार लेकर 'फोडो और राज करो' की नीति को अपनाते हुए डेढ़ सौ
साल राज किया है। केवल राज नहीं किया तो मानसिक, शारीरिक और आर्थिक शोषण भी किया है।

देश आजादी को लेकर हिंदी के कवियों ने 'राष्ट्रप्रेम' को अपनी कविता का आधार बनाकर लोगों में राष्ट्रीय चेतना जगाने का काम किया है। इस काल के लेखकोंने अपनी कलम को ही तलवार बनाकर लोगों को जागते हुए अंग्रेजी शासन की जड़े हिला कर रख दी। आम जनता में राष्ट्र प्रेम की भावना जगाने तथा स्वाधीनता आंदोलन का हिस्सा बनने के लिए प्रेरित भी किया है। जिसका परिणाम लोग हंसते-हंसते मातृभूमि के लिए अपना बलिदान देने लगे। स्वतंत्रता संग्राम में जिन लेखकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है उनमें भारतेंदु हरिश्चंद्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी , मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, जयशंकर प्रसाद, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आदि कवियों ने अपनी कविताओं के द्वारा हिंदी काव्य इतिहास, परंपरा और स्वाधीनता आंदोलन को स्वर्ण अक्षरों में लिखने के लिए प्रेरित किया है।

" गगन उगलता आग हो, छिड़ा मरण का राग हो,
लहू का अपने फाग हो
अडो वही, गड़ो वही, बढे चलो बढे चलो,
चलो नई मिसाल हो, चलो नई मशाल हो,
पढ़ो नया कमाल हो,
रुको नहीं, झुको नहीं, बढ़े चलो बढ़े चलो।"1

सोहनलाल द्विवेदी जी की 'प्रयाण गीत' देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत कविता है। देश आजादी के लिए अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए देश के वीरों ने अपना बलिदान दिया था। कवि लिखते हैं कि लक्ष्य पाना आसान बात नहीं है। देश आजादी के लिए कई सारी कठिनाइयां आएगी लेकिन हमें पीछे नहीं हटाना है। हमें मुश्किलों से डरना नहीं चाहिए बल्कि उसका सामना करना चाहिए। यदि हम कोशिश करते हैं तो हमें आगे बढ़ने

का रास्ता जरूर मिल जाएगा। यदि हम दृढ़ निश्चय के साथ अपना आत्मविश्वास बनाए रखते हैं, साहस के साथ आगे बढ़ते हैं तो हमें अवश्य सफलता मिलेगी।

" सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भ्रकुटी तानी थी,
बूढे भारत में भी आई, फिर से नई जवानी थी,
गुमी हुई आज़ादी की, किमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की, सबने मन में ठानी थी,
चमक उठी सन सत्तावन में, वह तलवार पुरानी थी।"2

सुभद्रा कुमारी चौहान की 'झांसी की रानी' कविता ने भारतीय जनमानस में देशभक्ति की भावना को जगाने का काम किया है। अंग्रेजों की गुलामी सहते-सहते लोग तंग आ गए थे। देश आजादी के लिए अंग्रेजों के खिलाफ लड़ने के लिए झांसी की रानी सबसे आगे आई थी। इस लड़ाई में देश के राजाओं के सिंहासन हिल उठे थे। इस युद्ध में भारत के लोगों ने बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया जिसकी बदौलत गुलामी के कारण बूढ़े भारत में नया जोश पैदा हुआ था। देश के सभी लोग खोई हुई आज़ादी को पाने के लिए मरने मारने को तैयार हो गए थे। झांसी की रानी इस युद्ध में वीर पुरुष की भांति लड़ी थी।

" सामने देश माता का भव्य चरण है
जीव्हा पर जलता हुआ एक, बस प्रण है,
काटेंगे अरि का मुण्ड कि स्वयं कटेंगे,
पीछे, परंतु, सीमा से नहीं हटेंगे।"3

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर द्वारा रचित 'परशुराम की प्रतीक्षा' यह कविता अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने के लिए प्रेरित करती है। यह कविता भारत चीन युद्ध के पश्चात लिखी गई कविता है। दिनकर जी का कहना है कि राष्ट्र सम्मान और राष्ट्र की रक्षा के लिए युवकों को हमेशा जागृत रहना चाहिए। ब्रिटिशों की गुलामी की बेडियों को तोड़ने के लिए स्वाधीनता संग्राम जोरों पर चल रहा था। कवि देशवासियों को देश के दुश्मनों से डटकर लड़ने का आह्वान करते हैं। अपने प्रति हो रहे अन्याय और अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाना मानव का धर्म है। देश की रक्षा के लिए बलिदान देना ही पुण्य कर्म है।

" चाह नहीं मैं सुरबाला के, गहनों में गूंथा जाऊं
चाह नहीं प्रेमी माला में, बिंध प्यारी को ललचाऊं
चाह नहीं सम्राटों के शव, पर, हे हरि डाला जाऊं
चाह नहीं देवों के सिर पर, चढ़ू भाग्य पर इठलाऊ
मुझे तोड़ लेना वनमाली, उसे पथ पर देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ जावे वीर अनेक।"4

माखनलाल चतुर्वेदी की 'पुष्प की अभिलाषा' कविता भारतीयों के दिलों में राष्ट्रप्रेम की भावना जागती है। इसमें पुष्प को प्रतिक के रूप में लिया गया है। वास्तविकता में हर भारतीय नागरिक की अभिलाषा है कि वह देश और देशभक्तों के चरणों में अपने आप को मिटाकर देश को आजाद करें। हर देशवासीयों मे अपने प्राणों का बलिदान देकर मातृभूमि की रक्षा के लिए सर्वस्व त्याग कर मर मिटने की भावना जागृत करने का प्रयास किया है। जिस प्रकार फूल न सम्राटों के शव पर, न देवों के सिर पर बल्कि मातृभूमि की रक्षा के लिए जा रहे वीरों के पैरों तले

कुचलकर अपना समर्पण भाव दिखाना चाहते हैं। उसी प्रकार भारतवासी भी मातृभूमि के लिए अपना सब कुछ त्याग कर देश भक्ति का परिचय देना चाहते हैं।

" अस्त्रहीन निर्दोष जनों पर
अंध हिस्त्र बल का प्रहार कर
सौम्य सजग अनुशिष्ट मनोहर
वह था अत्याचार भयंकर।"5

सुमित्रानंदन पंत की 'मुक्तियज्ञ' इस काव्य संग्रह में स्वाधीनता आंदोलन की घटना का वर्णन है। जब दूसरे महायुद्ध में कई सारे भयंकर शस्त्रों का प्रयोग हो रहा था जिससे विश्व को हानि हो रही थी इसीलिए दुनिया भयभीत हो रही थी। ऐसे में भारत अंग्रेजों की खिलाफ अहिंसात्मक आंदोलन चला रहा था। अस्त्रहीन भारतवासियों पर अंग्रेज शस्त्र चला रहे थे। अंग्रेज निर्मम अस्त्रहीनों पर अन्य अत्याचार कर रहे थे। देश के युवकों में ब्रिटिश सरकार के दमन चक्र के खिलाफ क्रांति की आग सुलग रही थी। जिसका परिणाम सत्याग्रह ,हड़ताल, बहिष्कार, जेलभरो आंदोलन आदि का प्रयोग किया जा रहा था। तो दूसरी ओर अंग्रेजों का दमन चक्र दिन-ब-दिन बढ़ता ही जा रहा था जिसके खिलाफ भारतवासियों का आक्रोश दिन-ब-दिन बढ़ रहा था।जिसका परिणाम भारतीय मर मिटने को तैयार हो गए।

इस प्रकार हिंदी कविता में राष्ट्रीयता की भावना प्रखर तथा प्रमुख रही है। अंग्रेजों की गुलामी के बंधन को तोड़ना आसान नहीं था लेकिन तत्कालीन कवियों ने अपनी कलम से देशभक्ति की भावना को लोगों के दिलों में जगाई जिसका परिणाम जन मानस में आंदोलन करने की भावना को जाग उठी।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1) रावत अंजीव- राष्ट्रभक्ति गान,वैभव बुक डिस्ट्रीब्युटर्स,जयपूर, तृतीय संस्करण 2017, पृष्ठ संख्या 37।

2) चौहान सुधा -भारतीय साहित्य के निर्माता सुभद्रा कुमारी चौहान, साहित्य अकादमी, दिल्ली. प्रथम संस्करण 1981, पृष्ठ संख्या 80।

3) रामधारी सिंह दिनकर- परशुराम की प्रतीक्षा, उदयांचल प्रकाशन पटना, 1956, पृष्ठ संख्या -13।

4) सुशीलकुमार परीट- माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राष्ट्रीय चेतना।

5) सुमित्रानंदन पंत- मुक्तियज्ञ, राधा कृष्ण प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या -33।